शिक्षा के विविध आयाम

बचपन के दिन

वसीली सुखोम्लीन्स्की

बच्चों को प्रकृति से जो भी गुण मिले हैं, उन्हें मुखरित करना, उनके नैतिक गुणों को पहचानना और संवारना, उन्हें सच्चा, ईमानदार और उच्च आदर्शों के प्रति निष्ठावान व्यक्ति, सच्चा मनुष्य और योग्य नागरिक बनाना—इसे ही सुखोम्लीन्स्की अपना ध्येय समझते थे।

अपने जीवन के अंतिम बीस वर्षों में सुखोम्लीन्स्की अपने शैक्षणिक अनुभवों और विचारों को डायरी में नोट करते रहे। इस तरह बाल-शिक्षा पर वे कुछ महत्वूर्ण पुस्तकें और कई लेख लिख पाये। उनकी पुस्तकों में विलक्षण शिक्षण का समृद्ध अनुभव प्रतिबिंबित हुआ है।

समय बीतने के साथ-साथ न केवल सोवियत संघ में, बल्कि संसार के दूसरे देशों में भी अधिकाधिक माता-पिता तथा अध्यापकों का ध्यान सुखोम्लीन्स्की के अनुभव, उनकी शैक्षिणक धरोहर की ओर आकर्षित हो रहा है।

बचपन के दिन

वसीली सुखोम्लीन्स्की

अरुण प्रकाशन, दिल्ली-110032

प्रकाशकीय

सोवियत संघ के विश्व प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री सुखोम्लीन्स्की ने 52 साल की अपनी छोटी-सी जिंदगी में 35 वर्ष बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में लगाये। अपने जीवन के अंतिम 29 वर्षों के दौरान वे शहर से दूर स्थित उक्राइनी गांव पाव्लिश के स्कूल में प्रिंसिपल रहे।

स्कूल में सराहनीय कार्य के लिए उन्हें अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया। सोवियत शिक्षाशास्त्र अकादमी ने उन्हें अपना सह-सदस्य चुना।

प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक 23 वर्षीय सुखोम्लीन्स्की को जर्मनी के साथ सोवियत संघ के युद्ध (1941-45) के पहले दिनों में ही मोर्चे पर लड़ने जाना पड़ा। उनका गांव दुश्मनों के कब्जे में लड़ने जाना पड़ा। उनका गांव दुश्मनों के कब्जे में आ गया था। उनकी पत्नी और नवजात पुत्र को दुश्मनों ने मार डाला था। मास्को के निकट दुश्मनों से लोहा ले रहे सुखोम्लीन्स्की युद्ध में बुरी तरह घायल हो गये थे और उन्हें सेना से वापस लौटना पड़ा।

हृदय में परिवार की त्रासदी का गहरा शोक लिये सुखोम्लीन्स्की अपने जीवन के अंतिम दिन 2 सितंबर, 1970 तक बच्चों के लिए ही जिये। तब पाव्लिश गांव के बच्चों को यह नहीं पता था कि उन्हें जो व्यक्ति पढ़ाता है, जो उन्हें जंगलों-मैदानों में घुमाने ले जाता है, उसकी छाती में युद्ध ने कभी न भरने वाला घाव छोड़ा है।

सुखोम्लीन्स्की अपने को प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री माकारेन्को का शिष्य मानते थे। उन्होंने अपने शिक्षणकार्य में माकारेन्को द्वारा निरूपित नियमों का ही अनुसरण किया। इसका सार यह है कि शिक्षा एवं चरित्र-निर्माण के साधनों में से प्रत्येक को यदि एक-दूसरे से अलग प्रयुक्त किया जाता

है तो इसका परिणाम सकारात्मक भी हो सकता है और नकारात्मक भी। इस कार्य में साधनों की सारी सुव्यवस्थित, समन्वित प्रणाली ही कारगर सिद्ध होती है।

माकारेन्को जिस बात को सबसे महत्वपूर्ण मानते थे, वही—छात्रों और शिक्षकों के हृदयों का मिलन, सद्भावना और विश्वास का वातावरण—सुखोम्लीन्स्की के विद्यालय में भी वास्तविकता बनी। दोनों शिक्षक यह मानते थे कि छात्रों का चरित्र-निर्माण करने का अर्थ है उन्हें सबसे पहले संसार को एक नागरिक की दृष्टि से देखना सिखाना तथा मातृभूमि की और लोगों की सेवा में ही मानव-सौंदर्य को समझना-सिखाना। युवाओं को जीना सिखाने का मतलब उन्हें भलाई और बुराई में भेद करना भर सिखाना ही नहीं है, बल्कि उन्हें सामाजिक बुराई के प्रति, अन्याय के प्रति असहनशील होना, उससे सक्रिय संघर्ष करना भी सिखाना चाहिए।

अपने जीवन के अंतिम बीस वर्षों में सुखोम्लीन्स्की अपने शैक्षणिक अनुभवों और विचारों को डायरी में नोट करते रहे। इस तरह बाल-शिक्षा पर वे कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें लिख पाये। प्रस्तुत पुस्तक में एक विलक्षण शिक्षक का समृद्ध अनुभव प्रतिबिंबित हुआ है।

समय बीतने के साथ-साथ न केवल सोवियत संघ में, बल्कि संसार के दूसरे देशों में भी अधिकाधिक माता-पिता तथा अध्यापकों का ध्यान सुखोम्लीन्स्की के अनुभव, उनकी शैक्षिक धरोहर की ओर आकर्षित हो रहा है।

विषय-सूची

आमुख

तैंतीस साल तक मैंने ग्रामीण स्कूल में काम किया। इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूं। इन वर्षों में मैंने बहुत कुछ देखा, सोचा-विचारा, जाना-समझा, कई बातों को लेकर मेरा मन चिन्तित, व्यथित, उद्वेलित हुआ। इन्हीं अनुभवों, इसी चिन्तन और मनन का परिणाम है प्रस्तुत पुस्तक।

बहुत सोच-विचार के बाद मैंने पुस्तक का नाम रखा, 'बचपन के दिन'। मेरा सारा जीवन बच्चों के शिक्षण में ही लगा है, इसलिए सोचता हूं कि मुझे पुस्तक का यह नाम रखने का अधिकार है। मैं अध्यापकों को, उनको भी जो आजकल पढ़ा रहे हैं और उनको भी जो हमारे बाद स्कूल में आएंगे—जीवन के एक लम्बे चरण के बारे में बताना चाहता हूं। यह चरण एक पूरे दशक के बराबर है। उस दिन से लेकर, जब नन्हे-नासमझ बच्चे स्कूल में आते हैं, उस हर्षमय क्षण तक, जब युवक-युवतियों को माध्यमिक शिक्षा पूरी करने का प्रमाणपत्र मिलता है और वे अपने जीवन-पथ पर पदार्पण करते हैं। यह वह काल है, जिसके दौरान नादान बच्चा इन्सान बनता है, उसके व्यक्तित्व का, व्यापकतम अर्थों में उसके चरित्र का निर्माण होता है। शिक्षक के लिए यह उसके जीवन का एक बहुत बड़ा चरण होता है। अगर मुझसे कोई पूछे कि मेरे जीवन में सबसे महत्वपूर्ण क्या रहा है ? तो बिना सोचे ही उत्तर दूंगा—बच्चों से प्रेम।

पाठक पुस्तक की किन्हीं बातों से शायद असहमत हों, हो सकता है उन्हें कोई बात अजीब लगे। मेरा आप से एक अनुरोध है—इस पुस्तक को बच्चों, किशोरों, युवक-युवतियों के शिक्षण का गुटका न समझें। शिक्षाशास्त्र के अनुसार इस पुस्तक का विषय है—अध्यापक का छात्रों के साथ पाठों के अलावा कार्य। यहां बच्चों को विभिन्न विषयों की बुनियादी शिक्षा देने की प्रक्रिया के अलग-अलग पहलुओं और ब्योरों पर गौर करना मेरा उद्देश्य नहीं था। मैंने तो यह बताने का यत्न किया है कि नन्हे इन्सान को अपने चारों ओर की दुनिया को जानना-समझना कैसे सिखाया जाए, कैसे शिक्षा पाने में उसकी सहायता की जाए, उसके दिमागी काम को आसान बनाया जाए, कैसे उसके मन में श्रेष्ठ भावनाएं और अनुभूतियां जगाई और पोषित की जाएं, कैसे उसमें मानव-गरिमा की चेतना, इन्सान की नेकी में विश्वास और मातृभूमि से

[illegible] भावनाएं विकसित की जाएं, कैसे बच्चे की सूक्ष्म बुद्धि और संवेदनशील हृदय में उदात्त आदर्शों के प्रति आस्था और निष्ठा के पहले बीज बोए जाएं। यही वह कार्य है, जो एक अध्यापक छात्रों को अपने विषय का ज्ञान देने के साथ साथ उनके चरित्र-निर्माण के लिए करता है।

यह पुस्तक, जो इस वक्त आपके हाथों में है, प्राथमिक कक्षाओं में मेरे काम के बारे में है। दूसरे शब्दों में यह बचपन की दुनिया को समर्पित है। बचपन, बाल-जगत एक विशिष्ट संसार है। भलाई और बुराई, मान-अपमान और मानव-गरिमा के बारे में बच्चों के अपने ही विचार होते हैं, सुन्दरता की उनकी अपनी कसौटी होती है, यहां तक कि समय की माप भी उनकी अलग होती है—बचपन में दिन साल जितना लगता है और साल अनन्त काल लगता है। बचपन नाम के जादुई महल के द्वारा मेरे लिए खुले थे। लेकिन मैं भली-भांति समझता था कि इस महल में प्रवेश करने के लिए मुझे भी कुछ हद तक बच्चा बनना चाहिए। तभी बच्चे तुम्हें ऐसे नहीं देखेंगे, मानो तुम उनकी जादुई दुनिया में भूले-भटके घुस आये हो, या तुम इस महल के पहरेदार हो, जिसे इस बात से कोई वास्ता नहीं कि महल के अन्दर क्या हो रहा है।

यहां एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूं। प्राथमिक कक्षाओं में सबसे पहले एक अकेले शिक्षक का ही सृजनात्मक श्रम महत्व रखता है। इसीलिए मैंने पूरे शिक्षक-समुदाय के और माता-पिता के कार्यों का उल्लेख नहीं किया।

बच्चों के बारे में यह न बताना तो असम्भव ही है कि वे किस परिवार से आए हैं, उनके माता-पिता कौन हैं। अगर मैं बच्चों के पारिवारिक वातावरण की पूरी-पूरी और सच्ची तस्वीर न खींचता, तो बच्चों के चरित्र-निर्माण के लिए मैंने जो कार्य-प्रणाली अपनाई, उसकी दिशा, उसका लक्ष्य पाठकों के लिए स्पष्ट न होते। मुझे चरित्र-निर्माण के इस कार्य की प्रबल शक्ति में दृढ़ विश्वास है। नदेज्दा क्रूप्स्काया, अन्तोन माकारेन्को और दूसरे महान शिक्षकों ने भी हमें इस शक्ति में विश्वास रखना सिखाया है।

—वसीली सुखोम्लीन्स्की

प्राथमिक विद्यालय क्या है ?

अगस्त, 1952 का आखिरी दिन था। शान्त सुहावनी सुबह को स्कूल के सामने हरे-भरे मैदान में सारे छात्र, अध्यापक और माता-पिता इकट्ठे हुए। नया शैक्षिक वर्ष शुरू होने से एक दिन पहले हमारे यहां स्कूल और पुस्तक का समारोह मनाने की परम्परा थी। इस बात यह समारोह विशेषतः हर्षमय था।

दूर-दराज के अनजाने देशों की यात्रा पर चलने से पहले, जिस प्रकार यात्री अपने साथियों और सहयात्रियों की आंखों में आंखें डालकर देखता है, वैसे ही मैं भी अपने बच्चों की आंखों में झांकता हूं। मेरे सामने 16 लड़के और 15 लड़कियां हैं। बच्चों के माता-पिता और बहुतों के नाना-नानी, दादी भी आए हैं। कोल्या और तोल्या की माताएं यहां हैं। गाल्या की सौतेली मां उसके कंधे पर हाथ रखती है और इस बार सालभर पहले की भांति बच्ची की भौंहें नहीं तन जातीं। सब हमें बधाइयां देते हैं, सफलता की कामना करते हैं। दसवीं कक्षा के छात्र बच्चों के पास आते हैं और सबको उपहारस्वरूप एक-एक पुस्तक देते हैं। इस पर लिखा है, 'नन्हे दोस्त, ज्ञान-पथ पर तुम्हारी यात्रा सफल हो। इस पुस्तक को संभालकर रखना। यह जीवनभर तुम्हें स्कूल के इस समारोह की, उस दिन की याद दिलाएगी, जब तुम छात्र बने थे। अपने परिवार के पुस्तकालय में इस पुस्तक को रखना।' (कितने बरस बीत गए हैं, मेरे छात्र अब वयस्क हो गए हैं। उन सबने अपनी-अपनी पुस्तक को सुनहरे बचपन की पावन स्मृति के रूप में संजोकर रखा हुआ है)।

नन्हे बच्चे और उनके माता-पिता, अध्यापक और दसवीं के छात्र—हम सब स्कूल के बाग में जाते हैं। युवक-युवतियां ध्यान से सेब के एक छोटे से पेड़ को जड़ समेत खोदते हैं, जमीन के ढेर के साथ उसे एक दूसरे गड्ढे में लगाते हैं। सब बच्चे मुट्ठीभर मिट्टी गड्ढे में डालते हैं, गड्ढा भर जाता है। बच्चे पेड़ को पानी देते हैं और अपने-अपने घर चले जाते हैं।

कल बच्चे स्कूल आएंगे, उनका पहला पाठ होगा। चार साल तक के प्राथमिक विद्यालय के छात्र होंगे, चार साल तक मैं उन्हें पढ़ाऊंगा। उनका चरित्र-निर्माण करूंगा। इस दिन की पूर्ववेला में मेरे मस्तिष्क में एक ही प्रश्न था, 'प्राथमिक विद्यालय क्या है ?' प्राथमिक विद्यालय की विशाल निर्णायक भूमिका के बारे में बहुत कुछ

कहा जाता है। 'ज्ञान की सुदृढ़ नींव प्राथमिक कक्षाओं में रखी जाती है', 'प्राथमिक कक्षाएं सभी आधारों का आधार हैं', बिचली (5-8) और वड़ी (9-10) कक्षाओं में शिक्षा की कमियों और त्रुटियों की, छात्रों की सतही ज्ञान की चर्चा चलने पर अक्सर यह सुनने में आता है। प्राथमिक विद्यालय पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि उसने बच्चों को वह ज्ञान नहीं दिया, वह सब काम करना नहीं सिखाया, जो आगे कि शिक्षा के लिए अनिवार्य है।

हां, हमारा अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि प्राथमिक विद्यालय को सर्वप्रथम बच्चों को पढ़ना, शिक्षा पाना सिखाना चाहिए। चेकोस्लोवाकिया के यान कोमेंस्की (1952-1670), रूप के उशीन्स्की (1824-1870) जर्मनी के ए॰ डीस्टेर्वेग (1790-1866) जैसे सभी महान शिक्षकों ने भी यही कहा है। व्यवहार से, शिक्षकों के अनुभव से भी इस बात की पुष्टि होती है। प्राथमिक विद्यालय का सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार यह है कि वह बच्चों को एक निश्चित दायरे के अन्दर ठोस ज्ञान और योग्यता प्रदान करे। पढ़ने, लिखने, अपने चारों ओर के संसार की परिघटनाओं का प्रेक्षण करने, सोचने और अपने विचारों को शब्दों में व्यक्त करने की योग्यताएं ही शिक्षा पाना सीखने के लिए नितांत आवश्यक है यह ज्ञान-प्राप्ति के उपकरणों के समान हैं।

प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों को पढ़ाने की तैयारी करते हुए मैंने यह तय करने की कोशिश की कि बच्चों को इन वर्षों में क्या कुछ अच्छी तरह याद कर लेना चाहिए और सदा के लिए स्मृति में रखना चाहिए तथा उन्हें क्या-क्या काम करने आने चाहिए।

परन्तु प्राथमिक विद्यालय का कार्यभार यहां तक ही सीमित नहीं हैं। क्षणभर को भी यह नहीं भूलना चाहिए कि प्राथमिक कक्षाओं में अध्यापक का वास्ता बच्चों से ही होता है।

पहली से चौथी कक्षा तक के वर्ष—7 से 11 साल तक की उम्र—वे वर्ष हैं, जब बच्चा इन्सान के रूप में ढलता है। बेशक यह प्रक्रिया इस काल में ही पूरी नहीं हो जाती, पर हां, इन चार बरसों में ही मानव-व्यक्तित्व का बुनियादी ढांचा बन जाता है, इस ढांचे में संवार-निखार होकर ही पूर्णतः विकसित व्यक्तित्व बनेगा। इस अवधि में बच्चे को केवल आगे की शिक्षा के लिए तैयार नहीं होना चाहिए, उसे केवल आगे भी सफलतापूर्वक शिक्षा पाने के लिए आवश्यक ज्ञान और योग्यताओं का भण्डार ही नहीं बनाना चाहिए। बच्चे का एक समृद्ध, चहुंमुखी आत्मिक जीवन भी जीना चाहिए ! प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षा के वर्ष बच्चे के नैतिक, बौद्धिक, भावनात्मक, शारीरिक और सौन्दर्यबोधात्मक विकास का एक पूरा काल है। यह विकास कोरी बातें न होकर

यथार्थ कार्य केवल तभी होगा, जबकि बच्चा आज भी समृद्ध जीवन जी रहा हो, केवल भावी जीवन में ज्ञान-प्राप्ति की ही तैयारी न कर रहा हो।

हमारे देश में प्राथमिक कक्षाओं के हजारों-हजार श्रेष्ठ शिक्षक हैं। इनमें से प्रत्येक बच्चों के लिए केवल ज्ञान-दीप ही नहीं है, बल्कि सच्चे अर्थों में जीवन गुरु भी है। सोवियत देश में प्राथमिक विद्यालय सार्विक माध्यमिक शिक्षा का ठोस आधार है। परन्तु यह भी कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि हमारे बहुत से प्राथमिक विद्यालयों में और विशेषतः माध्यमिक विद्यालयों की प्राथमिक कक्षाओं में कई गम्भीर कमियां भी हैं। कुछ स्कूलों में प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों की स्थिति मुझे दयनीय लगती है—बच्चे की पीठ पर मानो बोरा लदा हुआ है, जिसमें मास्टरजी ज्यादा से ज्यादा बोझ ठूंसने की कोशिश करते हैं और बच्चे के सारे जीवन की, उसके कार्यकलापों की सार्थकता उनके ख्याल में बस यही है कि वह इस बोझ को निश्चित सीमा तक—बिचली और बड़ी क्लासों तक—ढो ले।

प्राथमिक विद्यालय को छात्र को एक निश्चित परिधि के अन्दर ठोस ज्ञान प्रदान करना चाहिए। इस प्रश्न में कोई अस्पष्टता और अनिश्चितता न केवल प्राथमिक विद्यालय को ही, बल्कि शिक्षा की अगली कड़ियों को भी कमजोर बनाती है। अगर यह तय नहीं कि बच्चे को क्या ज्ञान, क्या व्यावहारिक शिक्षा देनी है, क्या कुछ करना सिखाना है, तो फिर स्कूल स्कूल ही नहीं। शिक्षा की प्राथमिक कड़ी की एक सबसे गम्भीर कमी यही है कि प्रायः अध्यापक को इस बात का ख्याल नहीं रहता कि पढ़ाई के पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे बरस में छात्रों को कौन-कौन-से नियमों और परिभाषाओं को खूब अच्छी तरह समझ लेना और याद कर लेना चाहिए, कौन-से शब्द उन्हें ठीक-ठीक लिखने आने चाहिए और फिर कभी यह नहीं भूलना चाहिए कि वे कैसे लिखे जाते हैं। ब्रच्चों के बौद्धिक श्रम को अधिक से अधिक सरल बनाने के प्रयत्न में कुछ अध्यापक यह भूल जाते हैं कि बच्चे के लिए कुछ जानना, किसी बात में रुचि लेना ही नहीं, बल्कि उस बात को अच्छी तरह याद करना और सदा के लिए स्मृति में बनाए रखना भी आवश्यक है। आजकल प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों के सामान्य विकास के विषय पर बहुत कुछ कहा जा रहा है। निस्संदेह, सामान्य विकास शिक्षा और चरित्र-निर्माण का अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है, जिसे अच्छी तरह याद रखे बिना, स्मृति में सदा बनाए रखे बिना सामान्य विकास भी नहीं हो सकता, क्योंकि सामान्य विकास का अर्थ है निरन्तर ज्ञान प्राप्ति और इसके लिए शिक्षा पाना, अध्ययन करना आना चाहिए।

प्राथमिक विद्यालय के कार्यभारों के असाधारण महत्व के बावजूद यह नहीं भूलना चाहिए कि वहां अध्यापक का वास्ता बच्चों से होता है, जिनके तंत्रिकातंत्र

का इन बरसों में तीव्र विकास हो रहा होता है। बच्चे के मस्तिष्क को ऐसा सजीव यंत्र नहीं समझना चाहिए, जो बस ज्ञान को 'पचाने', याद करने और स्मृति में बनाए रखने के लिए ही तैयार रूप में उपलब्ध है। 7 से 11 साल की उम्र में बच्चे के मस्तिष्क का तीव्र विकास होता है और अगर अध्यापक यह भूल जाता है कि बच्चे के तंत्रिकातंत्र के विकास की, कार्टेक्स की कोशिकाओं को सुदृढ़ करने की चिन्ता करनी चाहिए, तो पढ़ाई बच्चे को मन्दबुद्धि ही बनाएगी।

निरन्तर ज्ञान संचय, स्मरण शक्ति का अभ्यास और रट्टेबाजी—यही पढ़ाई नहीं है। रट्टेबाजी तो बच्चे के स्वास्थ्य के लिए भी और बौद्धिक विकास के लिए भी हानिकर है। मैंने अपना लक्ष्य यह रखा कि पढ़ाई, शिक्षा बच्चे के समृद्ध आत्मिक जीवन का ऐसा अंश हो, जो बच्चे के विकास में, उसकी बुद्धि को समृद्ध बनाने में सहायक हो। रट्टेबाजी नहीं, बल्कि खेलों, कहानियों, सौन्दर्य, संगीत, कल्पना और सृजन के संसार में झरने-सा बहता बौद्धिक जीवन--ऐसी होगी मेरे छात्रों की शिक्षा। मैं चाहता हूं कि बच्चे इस संसार में अपने नए-नए ज्ञान की खोज कर रहा अन्वेषक और सृजनकर्त्ता अनुभव करें। प्रेक्षण करना, सोचना, चिन्तन-मनन करना, श्रम से खुशी पाना और अपने कार्य पर गर्व करना, लोगों के लिए सुन्दरता और खुशी की रचना करना और उसमें सुख पाना, प्रकृति, संगीत और कला के सौन्दर्य पर विमुग्ध होना और इस सौन्दर्य से अपने आत्मिक जगत को समृद्ध बनाना, लोगों के दुख-सुख में हाथ बंटाना—यही है चरित्र-निर्माण का मेरा आदर्श। परन्तु इसके साथ ही सुस्पष्ट रूप से निर्धारित लक्ष्य को भी नहीं भूलना चाहिए—बच्चों को क्या कुछ जानना है, कौन-कौन-से शब्द लिखने सीखने हैं और उन्हें कभी नहीं भुलाना है, अंकगणित के कौन-से नियम उन्हें सदा के लिए याद करने हैं। 'खुशियों के स्कूल' में ही मैंने उन शब्दों की सूची बना ली थी, जो बच्चों को पहली से चौथी कक्षा तक सीखने होंगे।

मेरे विचार में प्राथमिक विद्यालय का एक सबसे बड़ा कार्यभार यह है कि बच्चों को बौद्धिक श्रम की विधियों, रूपों और साधनों से लैस किया जाए। कई स्कूलों के प्रिंसिपल और इंस्पेक्टर प्राथमिक कक्षाओं को महत्व नहीं देते। उनके इस रुख पर मुझे बड़ी परेशानी होती है। इंस्पेक्टर स्कूल में आते हैं और सबसे पहले यही जानना चाहते हैं कि बिचली और बड़ी क्लासों में पढ़ाई कैसे होती है, प्राथमिक कक्षाओं की ओर तो वह ऐसे देखते हैं, मानो वहां असली पढ़ाई न होकर, पढ़ाई का खेल ही होता हो। इस खेल पर सब गद्‌गद् होते हैं, लेकिन जब बच्चे पांचवीं कक्षा में पहुंचते हैं, तब उनके अधूरे ज्ञान पर सब परेशान होने लगते हैं।

अपने बच्चों की शिक्षा आरम्भ करते हुए मैंने यह दृढ़ निश्चय किया कि ऐसा गद्‌गद् होने का कोई भाव नहीं होगा। दूसरी कक्षा के अन्त तक बच्चों को इस तरह

धाराप्रवाह और सचेत ढंग से पढ़ना सिखा देना चाहिए कि वे छोटे-छोटे वाक्यों को और बड़े वाक्यों के अंशों को अपनी नजरों से एक पूर्ण 'इकाई' के रूप में ग्रहण करें। पठन-पाठन चिन्तन और बौद्धिक विकास का एक स्रोत है। मैंने बच्चों को इस तरह पढ़ना सिखाने का लक्ष्य रखा कि वे बढ़ते हुए सोचें। पठन-पाठन बच्चे के लिए ज्ञान-प्राप्ति का एक सूक्ष्म उपकरण और उसके साथ ही समृद्ध आत्मिक जीवन का स्रोत हो जाना चाहिए।

इस अध्याय में मैं यह बताना चाहता हूं कि किस प्रकार 1952 के शरद से लेकर 1956 के वसंत तक प्राथमिक विद्यालय के दो महत्वपूर्ण कार्यभारों को एक साथ निभाया—एक ओर, बच्चों को गहन, सुदृढ़ ज्ञान प्रदान किया, दूसरी ओर, उन्हें रट्टेबाजी से बचाते हुए, उनके समृद्ध आत्मिक जीवन और स्वास्थ्य की चिन्ता की।

स्वास्थ्य

मैं बार-बार यह दोहराते हुए नहीं डरता कि बच्चों के स्वास्थ्य की हित- चिन्ता शिक्षक का एक सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार है। बच्चों की प्रसन्नचित्तता और उनकी स्फूर्ति पर ही उनका आत्मिक जीवन, विश्वदृष्टिकोण, बौद्धिक विकास, ज्ञान की सुदृढ़ता और अपनी शक्ति, अपनी क्षमता में विश्वास निर्भर होता है। शिक्षा के पहले चार वर्षों में बच्चों के बारे में मेरी सारी चिन्ताओं और उद्विग्नताओं को अगर देखा जाए, सो इनमें से आधी बच्चों के स्वास्थ्य के बारे में होगी।

परिवार के साथ निरन्तर सम्पर्क बनाए रखे बिना तो स्वास्थ्य की चिन्ता की ही नहीं जा सकती। माता-पिताओं के साथ मेरी अधिकांश बातचीतों का (खासतौर पर पहले दो बरसों में) विषय बच्चों का स्वास्थ्य ही था। मैंने माता-पिताओं को बताया कि सभी नियम और परिभाषाएं बच्चे पाठ में सीखेंगे, याद करेंगे। घर पर बच्चों को मुख्यतः ऐसे अभ्यास करने होंगे, जिनका ध्येय यह होगा कि बच्चों ने अपने पाठों में जो कुछ सीखा है उसे वे अच्छी तरह, गहराई में समझ लें। इसके अलावा बच्चे घर पर अपनी मनपसन्द किताबें पढ़ेंगे, चित्र बनाएंगे, प्राकृतिक परिघटनाओं का प्रेक्षण करेंगे, अपने चारों ओर के संसार की वस्तुओं और परिघटनाओं के बारे में छोटी-छोटी रचनाएं लिखेंगे और अपनी पसन्द की कविताएं याद करेंगे। घर पर बच्चे का बौद्धिक श्रम ऐसा नहीं होना चाहिए, जिससे वह थक जाए, पर हां, इसके बिना भी काम नहीं चल सकता। मैं इन सब बातों को गंभीरतापूर्वक नहीं लेता कि पाठों में शिक्षण विधियों को ऐसे सुधारा जा सकता है कि घर पर बच्चों को कुछ करना ही न पड़े। ये सब बातें शिक्षा के सच्चे लक्ष्यों और नियमसंगतियों को प्रतिबिंबत नहीं करती हैं, क्योंकि और तो और इनमें छोटी-सी बात को ही ध्यान में नहीं रखा जाता कि बच्चे के

सारे बौद्धिक श्रम को लगातार 3-4 घंटों में ही केन्द्रित नहीं किया जा सकता।

माता-पिता ने इस बात का ख्याल रखने का वायदा किया कि बच्चे ज्यादा से ज्यादा समय तक खुली हवा में रहेंगे, जल्दी सोएंगे और जल्दी उठेंगे, खिड़की खुली रखकर सोएंगे। सारी गर्मियां और शरद तथा वसंत में अच्छा मौसम होने पर बच्चे बाहर आंगन में सोएंगे—यह भी हमने तय कर लिया। माता-पिताओं के आंगन तले सायवान तले सूखी घास बिछाकर बच्चों के लिए सोने की जगह बनाई। बच्चों को यह बड़ा अच्छा लगा। हर परिवार में, जहां बच्चे स्कूल जाते हैं, घर के बगीचे में ऐसा लतामण्डप होना चाहिए, जिसमें बैठकर बच्चे वसंत के पहले दिनों से लेकर शरद के अन्तिम दिनों तक पढ़ सकें, चित्रकारी कर सकें और आराम कर सकें—यह तो मैंने कुछ साल पहले ही माताओं के साथ तय कर लिया था। जिन बच्चों की माताएं अकेली यह काम नहीं कर सकती थीं, उनकी मदद बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने की।

'खुशियों के स्कूल' में ही मैंने बच्चों को सुबह कसरत करने की आदत डलवा दी थी। अब यह देखना था कि आदत बनी रहे। मैंने यह पाया कि सुबह कसरत करने की आदत छोटी उम्र में ही पड़ती है। माता-पिता यह कोशिश करते थे कि बच्चे रोजाना एक ही वक्त पर उठें। ताजी हवा में कसरत करने के बाद वे हाथ-मुंह धोते थे। गर्मियों में वे तालाब में नहाते थे, इसके अलावा बहुत-से घरों में माता-पिताओं ने आंगन में फौवारे लगा दिए थे और बच्चे साल में छह महीने (मई से सितम्बर तक) फौवारे तले नहाते थे। उनकी यह आदत इतनी पक्की हो गई कि जाड़ों में भी रोजाना ठण्डे पानी से हाथ-पैर और धड़ भी धोते थे। बेशक, जाड़ों में तो घर के अन्दर ही ऐसा किया जा सकता है।

कुछ माता-पिताओं की सहायता से हमने खुले आंगन में छह फौवारे लगाए। तीना, तोल्या, कोस्त्या, लरीसा, नीना, साशा और स्लावा जैसे बच्चे, जिनके लिए यह खासतौर पर जरूरी था, जहां नहाते थे। जो बच्चे जन्म से ही किसी विकृति के शिकार होते हैं, जैसे कि कंधे आगे झुका होना या धड़ अथवा चेहरे के गठन में वैषम्य आदि, उनके लिए तो सुबह कसरत करना और फौवारे तले नहाना नितान्त आवश्यक है। मनुष्य को केवल स्वस्थ ही नहीं, सुन्दर भी होना चाहिए; और सुन्दरता का स्वास्थ्य के साथ, शरीर के सन्तुलित विकास के साथ अटूट सम्पर्क है।

बचपन में बच्चे को कैसी खुराक मिलती है, इस पर शरीर के अंगों का सन्तुलित विकास निर्भर होता है, अस्थि ऊतकों और वक्ष के विकास के लिए यह विशेषतः महत्वपूर्ण है। बरसों के प्रेक्षणों से यह पता चलता है कि भोजन में खनिज पदार्थों और सूक्ष्म तत्वों की कमी होने पर शरीर के विभिन्न अंगों का विकास असन्तुलित होता है और इसका प्रभाव जीवनभर के लिए बच्चे की चाल-ढाल पर पड़ता है। मेरे बच्चों के

साथ ऐसा न होने पाए इसके लिए भी मैं यह देखता था कि उनकी खुराक में विटामिनों और खनिज पदार्थों की उचित मात्रा हो।

इससे पहले के कुछ वर्षों के दौरान किए गए प्रेक्षणों और विशेष अध्ययनों से एक चिन्ताजनक बात का पता चला था—स्कूल जाने से पहले 25% बच्चे नाश्ता नहीं करते—सुबह उन्हें भूख नहीं लगती, 30% बच्चे सुबह आवश्यक मात्रा से आधे से भी कम खाना खाते हैं; 23% बच्चे पौष्टिक नाश्ते का केवल आधा खाते हैं और केवल 22% बच्चे उतना खाते हैं जितना आवश्यक है। क्लास में कुछ घण्टे बैठे रहने के बाद उन बच्चों को, जो नाश्ता करके नहीं आए, चक्कर आने लगते हैं, आंतों में खिंचाव-सा होता है। बच्चे स्कूल से घर लौटते हैं, कई घण्टों से उन्होंने कुछ खाया नहीं, पर फिर भी उन्हें भूख नहीं लगी होती (माता-पिता अक्सर शिकायत करते हैं कि बच्चे सादा, पौष्टिक खाना नहीं खाना चाहते, कोई मजेदार चीज मांगते हैं)।

भूख न लगना स्वास्थ्य के लिए सबसे बड़ा खतरा है, बीमारियों, तकलीफों का स्रोत है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि बच्चे कई घंटों तक क्लास में बैठे रहते हैं, सिर्फ बौद्धिक श्रम में ही लगे रहते हैं, ताजी हवा में तरह-तरह का काम नहीं किया जाता। कुल जमा यह आक्सीजन की कमी का नतीजा होता है, क्योंकि बच्चा सारा दिन स्कूल में या घर पर कमरे के अन्दर रहता है, जहां कार्बन डाइ-ऑक्साइड ज्यादा होती है। कई वर्षों के प्रेक्षणों से मैं एक और चिन्ताजनक निष्कर्ष पर पहुंचा—देर तक बन्द जगह में रहने से जहां कार्बन डाइ-ऑक्साइड ज्यादा हो, पाचन-प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाली ग्रन्थियां रोग-ग्रस्त हो जाती हैं। यही नहीं, ये रोग लगातार बने रहते हैं और फिर इनका कोई इलाज ही नहीं हो पाता। पाचन-प्रणाली के गम्भीर रोगों का एक कारण यह भी है कि माता-पिता बच्चों की भूख जगाने के लिए उन्हें मजेदार चीजें, मिठाइयां आदि देते हैं। बच्चों को ऑक्सीजन की कमी का शिकार न होने देना ताजी हवा में रहने की उनकी दिनचर्या का ध्यान रखना —स्वास्थ्य चिन्ता का यह एक महत्वपूर्ण पूर्वाधार है।

मैं माताओं-पिताओं को सलाह देता था कि वे बच्चों के लिए स्वादिष्ट और पौष्टिक खाना बनाएं, जाड़ों के लिए विटामिनों से समृद्ध फल तैयार कर रखें। उन दिनों स्कूल में मधुमक्खियों के कुछ छत्ते थे, सो जाड़ों में हम बच्चों को स्कूल के भोजनालय में शहद देते थे।

बच्चे दिन में ज्यादा समय खुली हवा में बिताते थे, खूब चलते-फिरते थे, शारीरिक श्रम करते थे और स्कूल से लौटते ही किताबें लेकर नहीं बैठ जाते थे—इस सबके फलस्वरूप उन्हें अच्छी भूख लगने लगी। सुबह सब बच्चे पूरा नाश्ता करते थे; घर से जाने के तीन घण्टे बाद (पढ़ाई शुरू होने को कोई ढाई घण्टे बाद) वे स्कूल के

भोजनालय में खाना खाते थे [illegible] गरम सूप, कटलेट, एक गिलास दूध और डबलरोटी का मक्खन मिला [illegible] था। स्कूल से लौटकर (स्कूल के खाने के कोई तीन-साढ़े तीन घण्टे बाद) वे घर पर खाना खाते थे।

दिन का दूसरा हिस्सा वे घर पर या स्कूल में खुली जगह पर बिताते थे। सिर्फ जब बारिश हो रही होती या वर्फीली आंधी चल रही होती, तब वे घर के अन्दर रहते थे।

बच्चे के सन्तुलित विकास में बस कुछ परस्पर सम्बन्धित है। स्वास्थ्य इस बात पर भी निर्भर होता है कि बच्चे को घर पर करने के लिए कैसा काम दिया जाता है और वह उसे कैसे करता है। घर पर स्वावलम्बी बौद्धिक श्रम का भावनात्मक पहलू बहुत माने रखता है। अगर बच्चा अनिच्छापूर्वक किताब हाथ में लेता है, तो इससे न केवल उसकी आत्मिक शक्ति कुंठित होती है, बल्कि शरीर के आन्तरिक अवयवों के परस्पर सम्बन्धों की जटिल प्रणाली पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। मैंने कई ऐसे मामले देखे हैं, जब बच्चे को पढ़ाई-लिखाई से नफरत होने की वजह से उसकी पाचन प्रणाली बिगड़ गई, पेट की बीमारी हो गई।

शरद, जाड़ों और वसंत की छुट्टियां हम सदा खुली हवा में, प्रकृति के आंचल में बिताते थे। हम जंगल में घूमने जाते, वहां कैम्प लगाते और खेलते थे। पहले जाड़े की छुट्टियों में ही सब बच्चे स्कीइंग करने लगे। 'खुशियों के स्कूल' के दिनों की ही भांति हमने हिम-नगरी बनाई, बर्फ की चकफेरी बनाई। जब बच्चे पायोनियर बने, तो वे जंगल में अपनी टोली की दिलचस्प रैलियां करने लगे।

जाड़ों में ताजी हवा में श्रम हमारे स्वास्थ्य का बड़ा महत्वपूर्ण स्रोत था। पाला तेज न होने पर (शून्य से दस डिग्री सेंटीग्रेड नीचे तक) 8 साल के बच्चे हफ्ते में एक बार दो घण्टे, 9-10 साल के बच्चे तीन घण्टे और 11 साल के बच्चे चार घण्टे काम करते थे। बच्चे पेड़ों के तनों पर सरकंडे बांधते थे, उन्हें पाले से बचाने के लिए हिम ला-लाकर उनके चारों ओर उसका ढेर लगाते थे। ताजी हवा में यह श्रम शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने और सर्दी लगने से होने वाले रोगों से बचने के लिए सबसे अच्छा साधन है।

गर्मियों की छुट्टियों में बच्चे पैदल यात्राओं पर जाते थे, जंगल में, खेतों-मैदानों में घूमते थे। प्रकृति के संसर्ग में बिताए ये दिन बच्चों के स्वास्थ्य और बौद्धिक विकास के लिए बहुत उपयोगी होते थे। पहली कक्षा के पश्चात अगस्त के महीने में बच्चे सामूहिक फार्म के फलों के बाग और मधु-वाटिका में रहे। दूसरी कक्षा के बाद खरबूजों-तरबूजों के खेतों अर्थात् पालेज पर।

हमारे यहां अगस्त वह महीना है, जब प्रकृति दोनों हाथों से अपनी सम्पदा

लुटाती है। इस समय प्रकृति का सौन्दर्य अपने निखार के शिखर पर होता है। यह श्रम की विजय का मास है, इन दिनों हवा बिल्कुल निर्मल और पारदर्शी होती है, कटे गेहूं, पकते हुए खरबूजों, सेबों और अंगूर की सुगंध लिए हवा अत्यंत स्फूर्तिदायक होती है। ग्रीष्म और शरद ऋतुओं के संगम पर ग्रामीण क्षेत्र में वायु में रोगाणुनाशक तत्वों की बहुतायत होती है। अगर कोई बच्चा सहज ही ठंड से होने वाली तकलीफों या वात रोगों का शिकार हो जाता है, उसे ऐसे दिनों में चौबीसों घण्टे ताजी हवा में रखिए, फिर कभी बीमारी उसके पास तक न फटकेगी।

एक बार बच्चों ने सारा दिन फार्म के पालेज पर बिताया। वहां उन्होंने खूब सारे खरबूजे, तरबूजे खाए। उदास मन से बच्चे वहां से चले। उसी दिन शाम को फार्म के अध्यक्ष ने आदेश दिया कि पालेज पर टहनियों और फूस की चार नई झोंपड़ियां बना दी जाएं। ऐसी झोंपड़ियों में इन खेतों के रखवाले सारी गर्मियां रहते हैं। एक दिन बाद ही झोंपड़ियों तैयार हो गई थीं। जब मैंने बच्चों से कहा कि हम पालेज पर आराम करेंगे, तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ, 'क्या हमें वहां रहने देंगे?'

झोंपड़ियां देखकर ही उन्हें विश्वास हुआ। मैंने बच्चों को बताया कि हम रात को भी यहीं रहेंगे। यह सुनकर तो बच्चे खुशी ने नाचने ही लगे। झोंपड़ियों के अन्दर घास-फूस बिछा दिया, जिससे भीनी-भीनी महक आ रही थी। हम चादरें और कम्बल ले आए, बाहर हाथ-मुंह धोने का इन्तजाम कर दिया गया, माता-पिताओं ने रसोई बना दी और बच्चों के लिए खाने का प्रबन्ध कर दिया। दो झोंपड़ियों में दो लड़के रहने लगे और दो में लड़कियां। पालेज पर बिताया यह मास जीवनभर के लिए बच्चों की स्मृति में नीले आकाश और खिली धूप के मनोहारी गीत के रूप में अंकित हो गया।

हम सबुह तड़के उठते थे, नींद से जागती प्रकृति के अनुपम सौंदर्य का रसपान करते थे, ओस पर चलते थे और चश्मे के ठण्डे पानी में हाथ-मुंह धोते थे। यह पानी लकड़ी के ड्रमों में भरकर यहां लाया जाता था। यहां हर बात में बच्चों को आनन्द मिलता था—सुबह की कसरत और ठण्डे पानी से हाथ-पैर और धड़ धोने में भी और टमाटरों के साथ उबले आलू और तरबूज खाने में भी। नाश्ते के बाद हम काम करते थे—खरबूजे और तरबूज तोड़ने में फार्म के किसानों का हाथ बंटाते थे।

कभी-कभी शहर के बच्चे और उनके माता-पिता हमारे यहां आते थे। हम उन्हें बड़े गर्व से पालेज दिखाते थे। तरबूजे और खरबूजे खिलाते थे। पालेज के पास ही एक बहुत बड़े मैदान में ऐसी बूटियां उगाई गई थीं, जिनके फूलों पर मधुमक्खियां शहद बटोरती हैं। अगस्त में फार्म की मधुवाटिका से छत्तों को यहां लाया जाता है। हम हर रोज आन्द्रेई दादा के पास जाते थे, उनके लिए तरबूजे, खरबूजे और गरम-गरम

खाना लेकर जाते थे, जो बावर्चिन पाशा मौसी बच्चों के लिए बनाती थीं। आन्द्रेई दादा ने हमारी क्लास को मधुमक्खियों का एक छत्ता दिया। 'लो, इसे अपने स्कूल के बाग में रखना,' उन्होंने कहा। बच्चे बड़े कौतूहल से मधुमक्खियों के जीवन का प्रेक्षण करते थे।

बच्चे रोजाना तालाब में नहाते थे, जंगल में घूमने जाते थे, फूल इकट्ठे करते थे और आन्द्रेई दादा व पाशा मौसी को लाकर देते थे। दोपहर को जब धूप तेज होती थी, बच्चे झोंपड़ियों में सोने चले जाते थे। झोंपड़ियों की दीवारों में हम कुछ 'खिड़कियां' खोल देते थे और उन पर ऐसे घास-पात डाल देते थे, जिनकी गंध मच्छर-मक्खियां नहीं सह सकते। बाहर गर्मी होती थी और झोंपड़ियों के अन्दर ठण्डक। हमारी झोंपड़ियों में हवा आर-पार आती-जाती थी। आमतौर पर लोग डरते हैं कि बन्द जगह में अगर ऐसे आर-पार हवा होगी, तो सर्दी लग सकती है। हमारा अनुभव यह बताता है कि अगर बचपन से ही इसकी आदत डाली जाए, तो फिर उन्हें सर्दी लगने का कोई खतरा नहीं। बच्चों को बन्द जगह की उमस के प्रति असहनशील बनाना भी मेरे विचार में उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि उन्हें साफ-सथुरा रहने की आदत सिखाना।

जब गर्मी कम हो जाती है, तो बच्चे काम करने जाते थे। अक्सर तीसरे पहर में ही पालेज से खरबूजे, तरबूज ले जाने के लिए गाड़ियां आती थीं। जब सूरज डूब जाता और खेत-मैदान, टीले सब नीले-नीले धुंधलके में डूबने लगते और आसमान पर एक के बाद एक तारे निकलने लगते, तब हम सब किसी एक झोंपड़ी के पास इकट्ठे होते। रात्रि और सन्ध्या की इस मिलन वेला में अजीबोगरीब यात्राओं और वीरतापूर्ण कारनामों की कहानियां सुनने को खासतौर पर जी चाहता है। मैं बच्चों को जलपरियों और चुड़ैलों की लोक-कथाएं सुनता था। शरद-सुन्दरी की कहानी भी मैंने उन्हें सुनाई। कहते हैं कि अगस्त की शान्त रा[illegible] खेतों-खलियानों, बाग-बगीचों में घूमती हुई उन्हें समृद्धि का वरदान देती है।

रात्रि की निस्तब्धता में हमने कई बार एक आश्चर्यजनक धुन सुनी—खेतों पर, जहां हाल ही में गेहूं की फसल काटी गई थी, मधुर स्वर गूंज उठता था, जो बांसुरी के गीत-सा लगता था। प्रत्यक्षतः, यह किसी निशाचर पक्षी का गीत था, किन्तु बच्चों की कल्पना ने एक भले जीव की रचना की। उनकी कल्पना में यह एक छोटी-सी बालिका था, जिसके सिर पर गेहूं की बालियों का मुकुट है। वह बांसुरी बजाकर, लोगों को खुश करती है। बच्चों ने उसका नाम रखा सूरजबाली। उनकी कल्पना में सूरजबाली सूरज और उर्वरा धरती की सन्तान थी। जहां गेहूं की बालियां आती हैं, वहीं सूरजबाली का जन्म होता है। जब फसल काटी जाती है, तो सूरजबाली महकते

पुआल के ढेर में छिप जाती है। सांझ ढलने पर वह हर्षमय और साथ ही उदासी भरा गीत गाती है—जाड़ा आ रहा है, सूरजबाली को धरती माता की गोद में शरण लेनी होगी, जहां उर्वरता का जीवनदायी रस निद्रामग्न है। वसंत आएगा, तो यह रस जागेगा पेड़-पौधों में, बीजों में प्राणों का संचार करेगा, खेत हरे-भरे हो जाएंगे और फिर सूरजबाली धरती के गर्भ से निकल आएगी, अपने अनूठे गीत गाएगी।

किसी को यह लग सकता है कि बच्चों में निर्जीव वस्तुओं को सजीव करने की प्रवृत्ति आवश्यकता से अधिक ही है और यह उन्हें जीवन की वास्तविकता से दूर ले जा सकती है। मैं हजार बार कहूंगा कि नहीं, ऐसा नहीं है। जीवन, उर्वरता और मनुष्य की ये कहानियां प्रेरणा का सशक्त स्रोत हैं। बच्चों की कल्पना में यह जीवन, सौन्दर्य, उर्वरता और समृद्धि का मूर्तरूप था। उसके बिंब से प्रेरित होकर उन्होंने सूरजबाली के बारे में एक गीत रचा। यह है वह सीधा-सरल गीत—

सूरज ने धरती जगाई, गेहूं की बाली भर आई।
कौन बजाता बांसुरी ? सूरजबाली, सूरजबाली।
हरे शूक की घनी भौंहें; और बरौनियां मस्तानी;
पहनावा बालियों का पहले है जादू की रानी।

बच्चे जब कथा-कहानियां के बिंबों के प्रभाव में होते हैं, तो आश्चर्यजनक बात घटती है—वह शब्द, जिसे उन्होंने कभी सुना या पढ़ा था, उनकी चेतना के किसी कोने में जाग उठता है, शोख रंगों से चमचमाता है—और बच्चा काव्यमय बिंबों का सृजन करता है।

पाठक पूछ सकते हैं—बात तो स्वास्थ्य की हो रही थी और बीच में यह कहानियों, कल्पनाजनित बिंबों और बच्चों के सृजनात्मक कार्य की चर्चा क्यों आ गई ? क्योंकि यह सब बच्चों की खुशी है और खुशी के बिना स्वास्थ्य शरीर और स्वस्थ आत्मा का तारतम्य नहीं हो सकता। अगर बच्चा खेतों की छवि से, तारों की आंख-मिचौनी से, चिड़ियों के अनवरत गीत और फूलों की सुरभि से मंत्रमुग्ध होकर गीत रचता है, तो उसका अर्थ यह है कि वह शरीर और आत्मा के इस तारतम्य के शिखर पर है। मनुष्य के स्वास्थ्य की, और वह भी बच्चों के स्वास्थ्य की चिन्ता का अर्थ केवल साफ-सुथरा भोजन की, दिनचर्या, आहार, श्रम और विश्राम के नियमों का पालन करने की आदत डालना ही नहीं है। यह तो सर्वप्रथम शारीरिक और आत्मिक शक्तियों के तारतम्य की चिन्ता है और इस तारतम्य का चरम शिखर है सृजन का हर्ष।

तीसरी कक्षा के बाद भी हमने गर्मियों की छुट्टियां पालेज पर बिताईं। इस बार हमारी झोंपड़ियां अंगूर-वाटिका के पास थीं। बच्चे यहां भी बड़ों की मदद करते थे—अंगूर के गुच्छे टोकरियों में लगाते थे। सांझ को बच्चे तालाब में नहाते थे। यहां

बच्चों को एक दिलचस्प खेल सूझा—तीन नावें उनकी कल्पना में ह्वेलमार बेड़ा बन गईं, तालाब महासागर हो गया, हम अपने बेड़े पर ह्वेलों की खोज में निकलते थे। ....यहां हमने बांसुरियां बनाईं; शाम को हमारी संगीत मण्डली लगती थी। हम लोक-गीतों की धुनें बजाते थे। बच्चे खुद भी संगीत रचते थे—ग्रीष्म सन्ध्याओं, बादलों का गर्जन और लोहित गगनमण्डल के बारे में, दूर देशों से आने वाले पक्षियों के बारे में और झील पर बने बांध के पास पानी में पड़ने वाले रहस्यमयी भंवर के बारे में। दिन-पर-दिन संगीत बच्चों के आत्मिक जीवन में अधिकाधिक गहरा स्थान बनता जा रहा था। बच्चे जहां कहीं भी आराम करते थे, हर जगह वे टेप-रिकार्डर पर महान संगीतकारों की रचनाएं और लोक-गीत सुनते थे।

पढ़ाई का चौथा साल खत्म हुआ। 1956 की गर्मियों आईं। इस बार हमने अपनी क्लास का कैम्प चरागाह में बलूत उपवन के पास, झील के तट पर लगाया। टहनियों से झोंपड़ियां बनाईं और उन्हें फूस से छा दिया। माता-पिताओं ने रसोई और गुसलखाना बना दिया। अब बच्चे खाना बनाने में बावर्ची का हाथ बंटाते थे, वे रोटी, आलू, मछली, दूध, सब्जियां वगैरह लाने गांव जाते थे। हमें 20 बछड़े और 2 घोड़े सौंपे गए थे। दिन को बच्चे बछड़ों को चराते थे, शाम को उन्हें झील के तट पर बने छोटे से बाड़े में हांक देते थे। सब बच्चों ने घुड़सवारी सीख ली और वे बारी-बारी से खाने-पीने का सामान लाने गांव जाते थे। बारी का पक्का ध्यान रखा जाता था, क्योंकि हर कोई घोड़े की सवारी करना चाहता था। मुझे यह देखकर बहुत खुशी थी कि वोलोद्या, सान्या और तीना अच्छी घुड़सवारी कर लेते थे, इससे उनका स्वास्थ्य सुदृढ़ हुआ।

इसी वर्ष गहरी झील में नहाते हुए सब बच्चे अच्छी तरह तैरना सीख गए। नहाने के लिए मैंने एक ऐसी जगह ढूंढी थी, जहां कोई खतरा नहीं था, यहां सब बच्चे नहाते थे और मैं बारी-बारी से एक-एक बच्चे को लेकर तैरने निकलता था।

गर्मियों के वे दिन, जब जाड़ों के लिए घास काटकर रखी जाती है, बच्चों के लिए विशेषतः हर्षमय थे। हम घास सुखाने और गांज बनाने में बड़ों की मदद करते थे, और शाम को ऊंचे से गांज पर चढ़ बैठते थे। इन घड़ियों में बच्चों के लिए विशेष आकर्षण था—वे तारों की, दूसरे ब्रह्माण्डों की कहानियां सुनना चाहते थे। तारामण्डल को देखते हुए बच्चे पूछते थे, 'ये तारे, सूरज, पृथ्वी यह सब कहां से आया ?' मैंने पाया कि बच्चों के मन में ऐसे प्रश्न उठते हैं, जब वे प्रकृति के सौन्दर्य और भव्यता से विस्मय-विमुग्ध हो उठते हैं।

मैं वह शाम कभी नहीं भूलूंगा, जब तारों की कहानी सुनने के बाद बच्चों ने पूछा था, 'तारों के आगे क्या है ?' यह सुनकर कि तारों के आगे भी तारे हैं, असंख्य

ब्रह्माण्ड हैं, बच्चे स्तब्ध रह गए, 'तो फिर संसार का अन्त कहां है ?' उनके लिए यह समझ पाना अत्यंत कठिन था कि संसार का कोई आदि-अन्त नहीं है। मुझे याद है कैसे वे संसार की असीमता पर स्तब्ध होकर चुप हो गए थे, वे असीमता की कल्पना करने की कोशिश कर रहे थे, परन्तु कर नहीं पा रहे थे। उस रात को बच्चे देर तक सो नहीं सके; कइयों ने दूर-दराज के सूर्यों और ग्रहों के सपने देखे होंगे। अगले दिन कई बार उनका मस्तिष्क इस प्रश्न में उलझा कि यह असीमता, अनन्तता क्या है ? स्कूल के सभी वर्षों में मेरे छात्रों के लिए यह प्रश्न सदा एक नवीन और रहस्यमय प्रश्न बना रहा।

....'खुशियों के स्कूल' के पहले दिनों से ही बच्चों की क्रीड़ाओं को बहुत महत्व देता था। बड़ी कक्षाओं के छात्रों की सहायता से हमने खेलकूद का मैदान तैयार किया, झूले लगाए। हमारे पास फुटबाल, वालीबाल खेलने के लिए सदा काफी गेंदें थीं, दूसरी कक्षा में ही बच्चे टेबल-टेनिस खेलने लगे। बहुत से बच्चों को चक्का और गेंद फेंकने, बांस और रस्से पर चढ़ने के खेल पसन्द थे।

सारी गर्मियां बच्चे नंगे पैर घूमते थे, बारिश से नहीं डरते थे। मैं इस शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने का एक सबसे महत्वपूर्ण साधन समझता था। पहली और दूसरी कक्षाओं में केवल तीन बच्चों को सर्दी लगी, तीसरी-चौथी में किसी को भी नहीं।

तरह-तरह के जुकामों के प्रति रोधक्षमता विकसित करने को मैं बहुत महत्वपूर्ण समझता था। कई बरसों से मुझे यह मुसीबत चैन नहीं लेने दे रही थी—जैसे ही मौसम तेजी से बदलता, आधे बच्चे छींकने लगते थे। बच्चे को अगर बुखार न हो, तो भी वह ऐसी हालत में ठीक तरह से काम नहीं कर सकता। जुकाम का कोई इलाज तो है नहीं। चिकित्सा-विज्ञानी यह सिद्ध कर चुके हैं कि जुकाम की बहुत-सी किस्में संक्रामक नहीं हैं, बल्कि यह पर्यावरण में परिवर्तन पर संवेदनशील शरीर की प्रतिक्रिया है। कई साल का अनुभव यह बताता है कि पैर विशेषतः संवेदनशील होते हैं। अगर कोई व्यक्ति पैरों के जरा से भी ठण्डा होने से डरता है, तो उसे अक्सर असंक्रामक जुकाम होता है। हम शरीर के सुदृढ़ीकरण का काम पैरों से ही शुरू करते थे; बेशक ऐसा करते हुए शरीर की सामान्य अवस्था को भी ध्यान में रखा जाता था। पैरों को मजबूत और रोधक्षम बनाने के लिए निश्चित अवधि के लिए निर्धारित कोई विशेष अभ्यास नहीं है। आम दिनचर्या का पालन करना, बच्चों की जरूरत से ज्यादा रक्षा न करना, उन्हें ऐसे वातावरण में न रखना कि शरीर की रोधक्षमता कम हो जाए—यही सबसे बड़ी बात है। अगर बच्चा गर्मियों में नंगे पैर नहीं घूमता, तो नहलाना और गीले तौलिये से बदन रगड़ना यह सब किसी काम न आएगा।

...था, बच्चों ने प्राथमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी कर ली थी। गर्मियों की छुट्टियों का आखिरी दिन था। झील में नहाने के बाद वे सब हरे-भरे मैदान में इकट्ठे हुए थे—हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर। वे सब 11 साल के थे, पर देखने में 12-13 साल के लगते थे। नन्हे दान्को को बहुत दिनों तक सब मुन्ना कहते रहे थे, अब उसका कद भी पांचवीं के बच्चों जितना था।

साल में कुछ बार बच्चों की नजर, हृदय और फेफड़ों की डॉक्टरी जांच होती थी। पहली कक्षा में चार बच्चों की नजर कमजोर थी, दूसरी में दो और तीसरी में किसी की भी नहीं। जीवन से इस बात की पुष्टि हुई थी कि नजर कमजोर पड़ना आंखों का रोग नहीं है, बल्कि इस बात का परिणाम है कि बच्चे के शारीरिक और आत्मिक विकास में सामंजस्य नहीं है। पहले दो बरसों में डॉक्टरी जांच-पड़ताल से यह पता चला था कि 3 बच्चों में हृदय-वाहिका-तंत्र की कमजोरी के लक्षण हैं, दो बच्चों में प्लूराइटिस के अवशेष, दो बच्चों में श्वासनली शोथ (ब्रांकाइटिस) के लक्षण दिखे थे और एक बच्चे के क्षय रोग के गुप्त रूप का शक हुआ था। चौथी कक्षा के अन्त में केवल एक बच्चे में हृदय-वाहिका-तंत्र की कमजोरी के लक्षण दिखे थे और वे भी पढ़ाई के पहले दो सालों की अपेक्षा कहीं अधिक क्षीण थे।

शिक्षा : आत्मिक जीवन का एक अंश

यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि स्कूल से पहले बच्चे के चारों ओर प्रकृति, खेलों, सौन्दर्य, संगीत, कल्पना और सृजन का जो आश्चर्यजनक संसार होता है, वह क्लास के दरवाजे के बाहर ही न रह जाए। स्कूल के पहले महीनों और वर्षों में शिक्षा को ही बच्चों का एकमात्र कार्यकलाप नहीं होना चाहिए। बच्चे को स्कूल तभी अच्छा लगेगा, जबकि शिक्षक उसे वही खुशियां प्रदान करेगा, जो उसके पास पहले थीं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि शिक्षा बच्चे की खुशियों के अनुकूल ढाला जाए, जान-बूझकर सरल किया जाए, ताकि बच्चा बोर न हो। बच्चे को धीरे-धीरे मानव जीवन के सबसे बड़े कार्य—डटकर, गम्भीरतापूर्वक श्रम करने के लिए तैयार करना चाहिए, और ऐसा श्रम मस्तिष्क पर जोर डाले बिना नहीं हो सकता।

बच्चों को धीरे-धीरे तन्मय होकर सृजनात्मक बौद्धिक श्रम करने की आदत डालना मेरे विचार में शिक्षण का एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्यभार है। बच्चे को यह सिखाना चाहिए कि वह बौद्धिक श्रम करते हुए चारों ओर से ध्यान हटा सके और एकाग्र होकर अपने सारे बौद्धिक प्रयास निर्धारित लक्ष्य की प्राप्त में लगा सके। मेरी चेष्टा यही थी कि बच्चे ऐसी एकाग्रचित्तता के अभ्यस्त हो जाएं। ऐसा होने पर ही बौद्धिक श्रम उनके लिए प्रिय कार्य होगा।

प्राथमिक विद्यालय का कार्यभार है बच्चों को न केवल शारीरिक, बल्कि बौद्धिक श्रम में धीरे-धीरे कठिनाइयों पर विजय पाना सिखाना। बच्चों को बौद्धिक श्रम के सार को समझना चाहिए, जो इस बात में है कि वस्तुओं, तथ्यों, परिघटनाओं की विविधतम जटिलताओं और बारीकियों में, ब्योरों और अन्तर्विरोधों में पैठने, उन्हें समझने के लिए दिमाग पर जोर डाला जाए। ऐसा कभी भी नहीं होने देना चाहिए कि छात्रों के लिए सब कुछ बाएं हाथ के खेल जैसा हो, उन्हें पता ही न हो कि कठिनाई क्या होती है। ज्ञान-प्राप्ति के साथ-साथ बच्चों में बौद्धिक श्रम का तौर-तरीका, उसकी संस्कृति और आत्मानुशासन की चेतना विकसित होती है। बौद्धिक शिक्षा आत्मिक जीवन का एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें शिक्षक का प्रभाव छात्र की आत्मशिक्षा के साथ पूरी तरह से मिला होता है। इच्छा-बल का विकास उस क्षण से आरम्भ होता है, जब बच्चा स्वयं अपने,लिए कोई लक्ष्य निर्धारित करता है, बौद्धिक शक्ति को इस लक्ष्य की पूर्ति पर केन्द्रित करता है, अपने कार्यों को समझता है और स्वयं अपने पर नियंत्रण रखता है। बच्चे बौद्धिक श्रम में ही यह जान पाएं कि कठिनाई क्या होती है—यह भी मेरे विचार में शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्यभार है।

अगर बच्चे को पढ़ाई में किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता, सब कुछ उसे आसानी से ही आ जाता है, तो इससे धीरे-धीरे उसमें बौद्धिक आलस्य विकसित होता है, जो इन्सान को बिगाड़ देता है, वह जिन्दगी को खेल समझने लगता है। बात तो अजीब है, पर यह बौद्धिक आलस्य ज्यादातर होशियार बच्चों में विकसित होता है और ऐसा तब होता है, जब पढ़ाई में उन्हें ऐसी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता। ज्यादातर छोटी कक्षाओं में ही यह दिमागी आलस पैदा होता है, जब होशियार बच्चा वह सब आसानी से ही सीख लेता है, जिसके लिए दूसरे बच्चों को दिमाग लड़ाना पड़ता है और फिर वस्तुतः निठल्ला बैठा रहता है। बच्चों को निठल्ला न रहने देना भी अध्यापक के लिए बहुत बड़ा काम है।

हमारी पहली कक्षा एक छोटी-सी इमारत में लगती थी। हमारा कमरा काफी बड़ा और रोशनदार था, उसकी खिड़कियां पूर्व और दक्षिण की ओर खुलती थीं। खिड़कियों के सामने हेजलनट की झाड़ियां, उनके पीछे सेब, बबूगोशे, खूबानियों के पेड़ थे और उनसे आगे बलूत उपवन। हमारी इमारत ही नहीं, बल्कि स्कूल की दूसरी इमारतें भी हरियाली से घिरी हुई थीं। पेड़ों की पत्तियां खूब आक्सीजन देती थीं। स्कूल के अहाते में सदा शान्ति रहती थी। हमारी कक्षा के बाहर बड़ा-सा गलियारा था और उसके दूसरे सिरे पर एक और कमरा था। यहां हम कथा-कहनियों का कमरा बनाना चाहते थे।

हमारी इमारत के ओसारे के सामने छोटा-सा पक्का आंगन था। आंगन से चारों

ओर को पगडंडियां जाती थीं, जिनके दोनों ओर आड़ू के और लिंडन तथा चेस्टनट के पेड़ लगे हुए थे। एक पगडंडी बड़ी अंगूर-वाटिका को जाती थी, जो स्कूल के अहाते के बीचोंबीच स्थित थी, दूसरी हमारे सबसे पास वाली इमारत को, जहां पांचवीं की दो क्लासें लगती थीं, तीसरी हरे-भरे मैदानों और उपवनों को तथा चौथी झाड़ियों से भरे खड्ड को जाती थी।

मैं तब भी यही सोचता था कि पहली और दूसरी कक्षाओं के पाठ अलग इमारत में होने चाहिए। इन कक्षाओं में, खासतौर पर पहली में बच्चों की पढ़ाई, श्रम और विश्राम की विशेष दिनचर्या होती है। जहां बहुत सारे बच्चे हों, वहां पर जो शोर-गुल और हंगामा होता है, वह छोटे बच्चों के लिए बिल्कुल अवांछनीय है। चहुंमुखी बौद्धिक विकास के लिए शान्तिमय वातावरण बहुत आवश्यक है, बच्चों को यथासंभव अधिक समय तक ऐसे वातावरण में रहने दीजिए। बरसों के प्रेक्षणों से इस बात की पुष्टि हुई है कि स्कूली जीवन के पहले दिनों में बच्चा अपने को जिस वातावरण में पाता है, उससे वह सकपका जाता है। बच्चे बौद्धिक श्रम से इतना नहीं थकते जितना कि पाठों के पहले और पाठों के बीच छुट्टियों में होने वाले शोर-गुल और हंगामे के कारण उत्पन्न उत्तेजना से। पांच साल तक मैंने आधी छुट्टी के बाद पहली कक्षा के बच्चों के व्यवहार का प्रेक्षण किया। आधे घण्टे तक बच्चे स्कूल के विशाल बाल-समुदाय में हो-हल्ले, धक्का-मुक्की, शोर-शराबे के वातावरण में रहते हैं। आधी छुट्टी खत्म होती है, बच्चे अपनी क्लास में जाते हैं, और वहां अनुभवी शिक्षक उन्हें शान्त करने में, उनकी उत्तेजना कम करने में दस मिनट लगाते हैं। जहां पर पहली कक्षा के छात्र अलग से अपने छोटे से समुदाय में आराम करते थे, वहां पर बच्चों को शान्त करने में दो मिनट से ज्यादा नहीं लगते थे।

अनियंत्रित शोर-गुल और भाग-दौड़ स्कूल के अच्छे लक्षण नहीं हैं। बच्चों की खुशियों की नदी कितनी भी भरी-पूरी क्यों न हो, उसके अपने किनारे होने चाहिए, जो उनकी इच्छाओं और आवेगों को नियंत्रित करें।

आजकल हमारे स्कूल में पहली और दूसरी कक्षा की पढ़ाई एक छोटे-से मकान में होती है, जो हरियाली से घिरा हुआ है। बच्चों के लिए ऐसा वातावरण बनाया गया है कि वे बारी-बारी से काम और आराम कर सकें।

पहले हफ्तों में मैंने बच्चों को धीरे-धीरे नए जीवन का आदी बनाया। फिलहाल उनकी शिक्षा 'खुशियों के स्कूल' से कोई खास भिन्न नहीं थी, और यही मेरी कोशिश भी थी। सितम्बर में हम 40 मिनट से ज्यादा क्लास में नहीं बैठते थे और अक्तूबर में ज्यादा से ज्यादा 2 घण्टे। यह हमारा लिखाई और अंकगणित के पाठों का समय होता था। बाकी 2 घण्टे हम ताजी हवा में बिताते थे। बच्चे बड़ी उत्सुकता से असली

पाठ का इन्तजार करते थे। क्लास में पढ़ाई को ही वे असली पाठ कहते थे। मुझे उनकी इस इच्छा पर खुशी होती थी और साथ ही ख्याल आता था, 'बच्चो, तुम्हें क्या पता कि तुम्हारे हमउम्र उमसभरी क्लास में बैठे-बैठे कितनी उतावली से छुट्टी की घण्टी का इन्तजार करते हैं....'

क्लास में पढ़ाई के लिए बच्चों को धीरे-धीरे तैयार करना उसकी सर्वांगीण नैतिक, शारीरिक, बौद्धिक और श्रर्म शिक्षा का आवश्यक पूर्वाधार है। इसका अन्तिम ध्येय है इन्सान को विभिन्न परिस्थितियों में काम करने के लिए तैयार करना। क्लास में पाठ कोई मजबूरी नहीं, जिसे चाहो न चाहो, मानना पड़ता है। उल्टे, इन पाठों में ही बौद्धिक श्रम के लिए सबसे अनुकूल वातावरण होता है, परन्तु इसके लिए बच्चों को धीरे-धीरे तैयार करना चाहिए—यही छोटी कक्षाओं के पाठों की विशिष्टता है। अगर बच्चे को एकदम ही रोजाना चार घण्टे क्लास में काम करने पर विवश किया जाए, तो वह वातावरण, जो भविष्य में बौद्धिक श्रम के लिए अनुकूल होता, अब स्वास्थ्य के लिए हानिकर होगा।

क्लास में हम 'अक्षरमाला' पढ़ाते थे, अक्षर लिखते थे और अंकगणित के सवाल बनाकर उन्हें हल करते थे—यह सब धीरे-धीरे बच्चों के बहुमुखी आत्मिक जीवन में अपना स्थान बना रहा था और उन्हें अपनी एकरसता से थकाता नहीं था। हमें 'अक्षरमाला' में एक ही पाठ को बार-बार नहीं पढ़ना पड़ता था—सब बच्चों को अक्षरों की पहचान तो थी ही, उन्हें अच्छी तरह पढ़ना सिखाने के लिए मैं तरह-तरह के सक्रिय अभ्यासों से काम लेता था। बच्चे प्रकृति के बारे में छोटी-छोटी रचनाएं सोचते और लिखते थे। किताब में बार-बार एक ही पाठ पढ़ने के बजाय इन अभ्यासों से बच्चों की पठन योग्यता कहीं अधिक विकसित होती थी।

मैं इस बात का ध्यान रखता था कि हर बच्चे में पठन-पाठन की योग्यता विकसित हो। अभ्यासों के बिना, पठन-पाठन की निश्चित मात्रा के बिना कुछ नहीं हो सकता। अक्षर पढ़ पाना, अक्षर जोड़कर शब्द पढ़ पाना ही काफी नहीं है। पठन-पाठन वह 'खिड़की' है, जिसमें से संसार दिखता है, यह शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। जब बच्चा तेजी से और धाराप्रवाह पढ़ सकेगा केवल तभी यह उपकरण इस्तेमाल के लिए तैयार होगा। मेरी चेष्टा यह थी कि तरह-तरह के सक्रिय कार्यकलापों—अभिव्यंजनात्मक पठन-पाठन, लिखाई और चित्रकारी—की सहायता से पढ़ने की प्रक्रिया 'अर्द्धस्वचालित' हो जाए, ताकि बच्चे दूसरी कक्षा में ही बड़े-बड़े शब्दों को भी एक नजर से देखकर ही पढ़ लें। बच्चों से प्रकृति के बारे में छोटी-छोटी रचनाएं बनवाना और ऐसे कार्य में बच्चों की रुचि जगाना यह सब 'शैक्षिक विधियां' ही थीं, जिनका लक्ष्य एक ही था— बच्चों को अच्छी तरह पढ़ना सिखा देना।

पाठों में बच्चों के श्रम में विविधता लाने को भी मैं ऐसी ही एक विधि समझता था। हमारा अनुभव यह बताता है कि पहली कक्षा के आरम्भ में कोई भी पाठ किसी एक विषय का नहीं होना चाहिए। एकरसता से बच्चे बड़ी जल्दी थक जाते हैं। जैसे ही मैं देखता था कि बच्चे थक रहे हैं, मैं किसी नए काम में उन्हें लगाने की कोशिश करता था। पाठों में विविधता लाने का एक सबसे अच्छा रास्ता था चित्रकारी। मैं जब देखता कि बच्चे पढ़ते-पढ़ते थक गए हैं, तो कहता, 'चलो, बच्चो, अब अपनी कापी और पेन्सिलें निकालो। जो कहानी हम पढ़ रहे हैं, उसके चित्र बनाएंगे।' थकावट के पहले लक्षण तुरन्त दूर हो जाते, बच्चों की आंखों में चमक आ जाती— एकरस कार्य का स्थान सृजनात्मक कार्य ले लेता। अंकगणित के पाठ में भी ऐसा ही होता था—जब मैं देखता कि बच्चों को स्वयं हल करने के लिए जो सवाल दिया गया है, वे उसे नहीं समझ पा रहे, तो यहां भी चित्रकारी उनकी मदद को आती। बच्चे बार-बार सवाल पढ़ते और उसका 'चित्र' बनाते। अब तक सवाल की जो बातें उन्हें बिल्कुल समझ में नहीं आ रही थीं, वे अब एकदम स्पष्ट हो जातीं।....लगातार सुनते-सुनते भी बच्चे थक जाते हैं। जब मैं देखता कि बच्चों की नजर धुंधली पड़ रही है, मैं कहानी वहीं पर खत्म कर देता और फिर हम चित्र बनाने लगते।

पढ़ाई शुरू होने के तीन हफ्ते बाद ही मेरे छात्र प्रकृति के बारे में 'चित्र पुस्तकें' बनाने लगे। बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने हर बच्चे के लिए मोटे कागज के बीस-बीस पन्नों की गत्ते की जिल्द वाली एक-एक कापी बना दी। जिल्द के साथ पेन्सिल जोड़ दी। हफ्ते में एक बार हम शब्दों और विचारों के स्रोत की यात्रा पर जाते थे और चित्र बनाते थे। यह बच्चों के चारों ओर के संसार की कहानी होती थी। पहली 'यात्रा' पर हम फलों के बाग में गए, सेब के पेड़ के पास। उन दिनों वहां सेब पक रहे थे। बच्चों की कहानियां बनाईं, जिनमें हर किसी के विचारों और भावनाओं का व्यक्तिगत जगत प्रतिबिंबित हुआ।

'सेब धरती पर झुक गए हैं', 'सेब धूप सेंक रहे हैं', 'हरी-हरी पत्तियों में लाल-लाल सेब', 'सूरज सेब को सहलाता है, डाली उसे झुलाती हैं,' 'वसंत में थे सफेद-सफेद फूल और शरद में बने सुनहरे सेब', 'हम सेबों के घर गए'—बच्चों ने अपनी चित्र-पुस्तकों में लिखा। ये लघु रचनाएं बच्चों ने क्लास में पढ़ीं, जिससे उन्हें बड़ी खुशी हुई। बाग में पढ़ाई अपने आप में अन्तिम ध्येय नहीं थी। लघु रचनाएं रचवाना भविष्य में डटकर बौद्धिक श्रम करने के लिए बच्चों को तैयार करने का बहुत अच्छा साधन है। पहली कक्षा में ही और विशेषतः दूसरी कक्षा में मैं यह प्रयत्न करता था कि हर बच्चे को अपना अलग काम मिले और वह उसे अन्त तक पूरा करे। यह बौद्धिक श्रम का अनुशासन विकसित करने के लिए नितांत आवश्यक है।

पढ़ाई के पहले साल में सभी चित्र-पुस्तिकाएं चित्र-रचनाओं से भर गईं। इनके विषय अनेक थे—पेड़ पर लटकते लाल-लाल बेरियों के गुच्छे; फसल की कटाई; सपनों में खोई झील (बच्चों ने शायद उसे 'सपनों में खोई' इसलिए कहा कि जब भी हम झील पर गए उसका जल सदा दर्पण-सा लगता था, निर्मल और शान्त); स्कूल के बाग में बच्चों का श्रम; सूर्यास्त के समय लाल आसमान; शरद ऋतु में पहला हल्का पाला; महान अक्तूबर क्रांति की वर्षगांठ का त्यौहार; हमारे गांव का जीवन; पहला हिमपात; जनवरी की बर्फीली आंधियां; जादूगर हिम बाबा, जो नदियों और झीलों को जमा देता है; फरवरी में बर्फ का टपाटप पिघलना; मार्च में हिम पर पड़ती नीली परछाइयां; बर्फ के नीचे से निकला पहला फूल; गरम देशों से जल्दी ही लौट आईं और मार्च की बर्फीली आंधी में फंस गईं मैनाएं; दूर देशों से आई चिड़ियों के खुशियों भरे वसंती झुण्ड('खुशियों भरे वसंती झुण्ड'—बच्चों के ही शब्द हैं); मधुमक्खियां, जो शरद के अन्तिम सुहावने दिनों में फूलों से विदाई ले रही हैं।

प्रकृति के बारे में ये चित्र-पुस्तकें एक तरह से हमारे बाल-समुदाय का 'कविता संग्रह' थीं, जिसमें प्रकृति के रंगों की सूक्ष्मतम छटाएं, शब्द की सुरभि तथा धरती और आकाश का संगीत प्रतिबिंबित हुए थे। ये चित्र-रचनाएं बच्चों के लिए वह खुशीं थी, जिसके बिना शिक्षा आत्मिक जीवन में स्थान नहीं पा सकती।

बच्चों द्वारा क्लास में बिताए गए समय को अगर पाठों (पीरियडों) में मापा जाए, तो पहले दो महीनों में हमारा रोजाना एक पाठ होता था, तीसरे-चौथे महीने में दो पाठ, पांचवें—छठे महीने में ढाई पाठ और सातवें —आठवें महीने में तीन पाठ होते थे। पहले दो महीनों में हम क्लस में आधा घण्टा पढ़ाई करने के बाद छुट्टी करते थे और फिर अगले महीनों में 45 मिनट बाद छुट्टी से पहले क्लास से बाहर जाना होता था, तो वे इजाजत लेकर बाहर चले जाते थे। अगर वे देखते थे कि अध्यापक कुछ बता रहा है और उसे बीच में नहीं टोकना चाहिए, तो वे चुपके से बाहर चले जाते थे—अध्यापक देखता है कि बच्चे को बाहर जाना है, सो मौन अनुमति दे देता है। कुछ बच्चों के लिए इस दिनचर्या का आदी होना कठिन था, जिसे अधिकांश बच्चे सहज ही निभा लेते थे। तोल्या, कात्या और शूरा जल्दी ही थक जाते थे। उनके थकने का शायद सबसे बड़ा कारण यही था कि क्लास में बैठे हुए वे यह मसूसक करते थे कि अब उनकी आजादी निश्चित दिनचर्या के कारण पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सीमित है। कहना न होगा कि बच्चों की सभी इच्छाएं पूरी करने की कोई जरूरत नहीं; सभी छात्रों को धीरे-धीरे टिककर बैठना और गम्भीरतापूर्वक श्रम करना सिखाना चाहिए, परन्तु साथ ही एक ही झटके में बच्चों की इच्छाओं और आदतों को बदलने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। कुछ सप्ताह तक मैं इन बच्चों को क्लास से बाहर

जाने देता रहा और उन्हें धीरे-धीरे टिककर काम करने की आदत डालता रहा। 3-4 महीने गुजरते न गुजरते सभी बच्चे स्कूल की दिनचर्या का सहज ही पालन करने लगे।

शरद के धुपहले दिनों में हम अपनी एक 'हरी कक्षा' में पढ़ाई करते थे, जो सेब के ऊंचे-ऊंचे पेड़ों के बीच छोटे से मैदान में थी। कुछ साल पहले हमने बड़े छात्रों के साथ मिलाकर लोहे के सींखचों और तारों से भावी 'हरी कक्षा' का ढांचा बना दिया था और उसके चारों ओर बेलें लगा दी थीं। दो साल बाद हरा कमरा तैयार हो गया था—बेलें छत पर भी छा गई थीं। कुछ 'खिड़कियों' की मदद से यहां रोशनी भी रहती थी। गरम दिनों में यहां शीतलता होती थी और शरद के दिनों में गरमाहट। बेलों की टहनियों से 'खिड़कियां' बन्द भी की जाती थीं और तब यहां हरा झुटपुटा छा जाता था, पत्तियों से छनकर आती धूप अजीबोगरीब चित्र बनाती थी। बच्चे इसको 'कहानियों के लिए खिड़कियां बन्द करना' कहते थे। हरी कक्षा में छोटी-छोटी मेजों और स्टूल थे, यहां बच्चे लिखते, पढ़ते और सवाल हल करते थे।

दूसरी 'हरी कक्षा' एक छोटा-सा हरा-भरा मैदान थी, जिसके तीन ओर अंगूर की बेलें लगी हुई थीं। गरम दिनों में यहां ठण्डक होती थी।

खड्ड के पास ही पेड़ों के घने कुंज में घास पर हमारी एक और 'हरी कक्षा' थी। यहां पर हम कभी-कभी अन्तिम पाठ के लिए आते थे, जब स्कूल नहीं लौटना होता था। पहले साल में हमारे 40% पाठ 'हरी कक्षाओं' में हुए। 60% पाठों में से अधिकांश 'हरी प्रयोगशाला' और स्कूल के तापघर में हुए। 'हरी प्रयोगशाला' एक अलग इमारत थी, जिसके चारों ओर पेड़ और अंगूर की बेलें थीं। यहां पर पढ़ाई के लिए कमरा था, जिसमें बहुत से पौधे और फूल थे।

बच्चों के लिए यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण थी कि हमारे अधिकांश पाठ प्रकृति की गोद में, नीले आकाश तले, ताजी हवा में होते थे। पाठों के दौरान बच्चे अपने आपको चुस्त महसूस करते थे, वे कभी भी भारी सिर लिए स्कूल से नहीं लौटते थे।

पाठों के बाद बच्चे घर पर आराम करते थे। इस बात की कितनी भी कोशिश क्यों न की जाए कि पाठों में श्रम से थकावट न हो, तो भी बच्चा काफी थक जाता है और पाठों के बाद उसे आराम करना चाहिए। कई वर्षों के अनुभव से मेरा यह विश्वास बन गया है कि दिन के उत्तरार्ध में बच्चों को इतना सक्रिय बौद्धिक श्रम नहीं करना चाहिए, जितना कि वे स्कूल में करते हैं। छोटे बच्चों पर पढ़ाई का अत्यधिक बोझ डालना तो बिल्कुल ही अवांछनीय है। अगर स्कूल में 3-4 घण्टे के बौद्धिक श्रम के बाद बच्चे को घर पर भी इतना ही श्रम करने पर विवश किया जाए, तो यह शीघ्र ही बच्चे को बिल्कुल थका डालेगा।

घर पर करने के लिए काम दिए बिना भी बात नहीं बन सकती। बच्चे को अपने दिमाग पर जोर लगाना, ध्यान केन्द्रित करना सिखाना चाहिए। लेकिन ऐसा सर्वप्रथम पाठों में ही धीरे-धीरे स्वावलम्बी बौद्धिक श्रम की आदत डालते हुए करना चाहिए। बच्चों के लिए ध्यान से और एकाग्रचित होकर काम करना आसान नहीं है। अनुभवी शिक्षक बच्चों को कुछ सुनाते, समझाते और बताते हुए उनका ध्यान किन्हीं विशेष साधनों से नहीं बांधते, बल्कि स्वयं पाठ के अन्तर्य से ही ऐसा करते हैं। छोटी उम्र के बच्चों के लिए मानसिक श्रम को आयोजित करने का कौशल इसी में है कि बच्चा ध्यान से अध्यापक की बातें सुने, याद करे, सोचे और उसे आरम्भ में इसका आभास ही न हो कि उसे इसके लिए कोई विशेष यत्न करना पड़ रहा है।

अगर शिक्षक ऐसा करने में सफल रहेगा, तो बच्चे की स्मृति में वह सब कुछ बना रहेगा, जिसमें उसकी रुचि जागी थी, और विशेषतः जिस बात पर वह विस्मित हुआ था। मेरे बच्चों ने इतनी आसानी से अक्षर कैसे याद कर लिए और वे पढ़ना-लिखना कैसे सीख गए ? क्योंकि बच्चों के लिए हर अक्षर एक सजीव बिंब का मूर्तरूप था, जिस पर बच्चे का मन विमुग्ध हुआ था। अगर मैं बच्चों को रोजाना 'ज्ञान का एक पोर्शन' देता—अक्षर दिखाता और कहता कि इसे याद कर लो, तो कोई बात न बनती। बेशक, इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चों से लक्ष्य को छिपाना चाहिए। बच्चों को ऐसे पढ़ाना चाहिए कि वे लक्ष्य के बारे में न सोचें—इससे उनका मानसिक श्रम सरल हो जाएगा। यह बस इतना आसान नहीं, जितना कि पहली नजर में लगता है। यहां चर्चा बच्चे के बौद्धिक विकास के लिए एक निश्चित चरण की है, जिसे वैज्ञानिक मनुष्य के तंत्रिका-तंत्र की बालावस्था कहते हैं। इस काल में—छोटी कक्षाओं में, खासतौर पर पहली कक्षा में—बच्चे को अभी अपना ध्यान केन्द्रित करना नहीं आता। शिक्षक को बच्चों का ध्यान 'जीतना' चाहिए, उनमें ऐसी अवस्था जगानी चाहिए, जिसे मनोविज्ञान में अचेतन ध्यान कहा जाता है।

बच्चों का ध्यान बड़ी 'नाजुक' चीज है। मुझे यह डरपोक चिड़िया जैसा लगता है, जिसके घोंसले के पास पहुंचने की कोशिश करते ही वह उड़ जाती है और जब चिड़िया अन्ततः पकड़ ली जाए, तो उसे केवल हाथों में या पिंजड़े में रखा जा सकता है। पर अगर चिड़िया अपने आपको बन्दी महसूस करती है, तो फिर उससे गाने की उम्मीद मत कीजिए। ऐसे ही छोटे बच्चे का ध्यान है—अगर आप उसे बन्दी पंछी की तरह रखते हैं, तो वह आपका अच्छा सहायक नहीं होगा।

कुछ अध्यापक कक्षा में ऐसा वातावरण बनाने की ही अपनी उपलब्धि समझते हैं, जिसमें बच्चे 'निरन्तर दिमाग लड़ाएं'। अक्सर ऐसा बाहरी कारकों की सहायता से किया जाता है, जो बच्चों का ध्यान बांधे रखने के लिए लगाम का काम करते

हैं—बच्चों को बार-बार कहा जाता है—ध्यान से सुनो; जल्दी-जल्दी एक तरह के काम की जगह दूसरी तरह का काम करवाया जाने लगता है, बच्चों के मन में यह डर बनाए रखा जाता है कि अध्यापक जो बात समझा रहा है, उसके फौरन बाद ही उनसे उस पर सवाल पूछेगा और अगर बच्चा ध्यान से नहीं सुनता रहा है, तो उसकी रिपोर्ट बुक में फेल लिख दिया जाएगा; या फिर किसी नियम को समझाने के तुरन्त बाद ही व्यावहारिक अभ्यास करने को कहा जाता है।

वाकई, यों देखने में लगता है कि बच्चे बड़े सक्रिय तौर पर अपने दिमाग से काम कर रहे हैं—कक्षा में अलग-अलग तरह के काम किए जाते हैं, बच्चे अपना सारा ध्यान केन्द्रित करके अध्यापक का एक-एक शब्द सुनते हैं, कक्षा में तनावपूर्ण खामोशी छाई रहती है। लेकिन किस कीमत पर यह सब किया जाता है और इसके क्या परिणाम होते हैं ? छात्र इस उम्र में अभी अपना ध्यान केन्द्रित किए रखने में असमर्थ होते हैं और उन्हें अध्यापक का एक-एक शब्द सुनते रहने के लिए दिमाग पर जोर डालना पड़ता है—यह सब बच्चे की तंत्रिका-तंत्र को बुरी तरह से थका डालता है। पाठ में सक्रिय बौद्धिक श्रम के बिना एक मिनट भी, एक क्षण भी न खोने पाए—शिक्षा के, चरित्र-निर्माण के अत्यंत सूक्ष्म कार्य में भला इससे अधिक बेतुकी बात और क्या हो सकती है। अध्यापक के कार्य में ऐसी लक्ष्य प्राप्ति की चेष्टा का सीधे-सीधे यही अर्थ निकलता है कि बच्चों को 'आखिरी बूंद तक' अपना सारा जोर लगाने के लिए विवश किया जाता है। ऐसे 'कारगर' पाठों के बाद बच्चा थका-मांदा घर लौटता है। उसे अब आराम ही आराम की जरूरत होती है, लेकिन उसे घर के लिए दिया गया काम भी करना होता है, और कापियों, किताबों से भरे बस्ते को देखते ही उसका मन बुझ जाता है।

यह अकारण ही नहीं कि स्कूलों में अनुशासन भंग करने के कई मामले होते हैं, बच्चे अध्यापकों से और एक दूसरे से बदतमीजी से पेश आते हैं। पाठों में बच्चे अत्यधिक मानसिक तनाव की अवस्था में रहते हैं और अध्यापक भी कोई इलैक्ट्रोनिक मशीन नहीं है—पूरे आठ में एक के बाद एक कई तरह के कामों की 'उच्च कारगरता' बनाए रखने के साथ-साथ बच्चों का ध्यान केन्द्रित किए रहना कोई खेल नहीं है। यह अकारण ही नहीं कि बच्चे अक्सर स्कूल से लौटने पर खोए-खोए से रहते हैं, किसी भी बात में वे रुचि नहीं लेते या फिर जरा-जरा-सी बात पर झुंझला उठते हैं।

नहीं, ऐसी कीमत पर बच्चों का ध्यान केन्द्रित करना, उन्हें एकाग्रचित्त करना और उनमें बौद्धिक सक्रियता लाना ठीक नहीं। छात्रों की, विशेषतः छोटी उम्र के छात्रों की बौद्धिक शक्ति और तान्त्रिक ऊर्जा कोई अथाह कुआं नहीं है, जिसमें से जितना चाहो पानी निकालते रहो। बहुत सोच-समझकर और सावधानी से इस कुएं से जल

लेना चाहिए और सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चे की तान्त्रिक ऊर्जा के स्रोत में निरन्तर वृद्धि का ध्यान रखना चाहिए। इस वृद्धि का स्रोत है—चारों ओर से संसार की वस्तुओं और परिघटनाओं का प्रेक्षण करना, प्रकृति की गोद में रहना, पठन-पाठन करना, लेकिन ऐसा पठन-पाठन, जो कुछ जानने की इच्छा से, रुचि से प्रेरित हो, इस डर से नहीं कि कुछ पूछा जाएगा। सजीव विचारों और शब्दों के स्रोतों की 'यात्राएं' बच्चों में बौद्धिक सक्रियता लाने का अच्छा साधन हैं।

स्कूल के जीवन में एक ऐसी चीज है, जिसका कोई प्रत्यक्ष आभास नहीं होता। इसे आत्मिक सन्तुलन कहा जा सकता है। इस अवधारणा का अन्तर्य मेरे विचार में यह है—बच्चों को अपने भरे-पूरे जीवन की अनुभूति, विचारों की सुस्पष्टता, अपनी क्षमता में, कठिनाइयों पर विजय पा सकने की सम्भावना में विश्वास। बाल-समुदाय में मित्रता की भावना होना, एक दूसरे से चिढ़ना, खीझना, झुंझलाना नहीं और सोद्देश्य श्रम का शान्तिपूर्ण वातावरण होना—यही आत्मिक सन्तुलन की लाक्षणिक विशिष्टता है। आत्मिक सन्तुलन के बिना ठीक तरह से काम नहीं किया जा सकता। जहां यह सन्तुलन नहीं रहता, वहां समुदाय का जीवन नरक हो जाता है— छात्र एक दूसरे से बदतमीजी करते हैं, स्कूल में तनावमय वातावरण बना रहता है। आत्मिक सन्तुलन कैसे स्थापित किया जाए और सबसे बड़ी बात कैसे इसे बनाया रखा जाए? श्रेष्ठ शिक्षकों के अनुभव से मैं यह देख रहा था कि शिक्षा के इस अत्यंत सूक्ष्म क्षेत्र में सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चे सदा सोचें-विचारें, दिमाग से काम लें, परन्तु इस बौद्धिक कार्य में कोई जल्दबाजी न हो, कि यह कार्य 'झटकों' के साथ न किया जाए, बच्चों को ज्यादा थकाने वाला न हो और इससे उनकी मानसिक शक्ति पर आवश्यकता से अधिक जोर न पड़े।

जहां आत्मिक सन्तुलन होता है, वहां सद्भावना और परस्पर सहायता का वातावरण होता है, प्रत्येक छात्र की बौद्धिक क्षमताओं और यथाशक्ति श्रम में तारतम्य होता है। मैंने प्राथमिक कक्षाओं के कई शिक्षकों के, जो आत्मिक सन्तुलन लाने में दक्ष थे, शिक्षण-कौशल का बड़े ध्यान से अध्ययन किया। मैं एक सबसे बुद्धिमतापूर्ण और साथ ही बिल्कुल स्वाभाविक बात का 'रहस्य' खोजने की चेष्टा कर रहा था—इन अध्यापकों का हर छात्र अपनी पूरी क्षमता के अनुसार पढ़ता था; ऐसा कोई बच्चा नहीं था, जो बहुत अच्छी तरह पढ़ सकता हो, लेकिन पढ़ता साधारण स्तर पर ही हो और जो बच्चे पढ़ाई में साधारण स्तर पर थे वे अपने को बदकिस्मत नहीं समझते थे और उनके साथी उनकी ओर बड़प्पन भरे तरस की दृष्टि से नहीं देखते थे।

मुझे यह देखकर बड़ी परेशानी होती थी कि कैसे छात्रों और अध्यापकों पर सर्वश्रेष्ठ अंकों का भूत सवार रहता है—यह प्रवृत्ति परिवार में जन्म लेती है और फिर

अध्यापक भी इसके शिकार हो जाते हैं, बाल- आत्माओं पर यह भारी बोझ के समान होती है, उन्हें विकृत करती है। बच्चे में अभी ऐसी क्षमता नहीं है कि वे सर्वश्रेष्ठ अंक पाए, लेकिन माता-पिता यही चाहते हैं कि वह 'पांच' ही लाए, हद से हद वे 'चार' पर सन्तोष कर लेते हैं और बेचारे छात्र को अगर 'तीन' मिल जाते हैं, तो उसे लगता है मानो उससे कोई बड़ा भारी अपराध हो गया। अनुभवी अध्यापकों के पाठों में ऐसा कभी नहीं होता। वहां 'पांच' पाने वाले अपने आपको खुशकिस्मत नहीं समझते और 'तीन' पाकर किसी में हीन भावना नहीं पैदा होती। मैंने इस सच्चे शिक्षकों से बौद्धिक श्रम का कौशल सीखा। मैंने उनकी शिक्षण कला में एक विलक्षण बात पाई—वे बच्चों के मनोमस्तिष्क के ज्ञान प्राप्ति की खुशी की भावना जगाते थे। इन अध्यापकों के पाठों में हर बच्चे की छोटी से छोटी सफलता भी इस हर्षमय आवेग के साथ जुड़ी होती थी, कि उन्होंने कोई नई बात जानी है, खोजी है। इन अध्यापकों के अनुभव के मोतियों को पिरोते हुए मैं यह चेष्टा करता था कि बच्चे अंक पाने के लिए नहीं, बल्कि ज्ञान-प्राप्ति की खुशी अनुभव करने के लिए मेहनत करें। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती थी कि हमारी कक्षा में बच्चे सर्वश्रेष्ठ अंकों के पीछे नहीं भागते फिरते और न ही 'तीन' अंक पाकर कोई अपने आपको अभागा समझता है, जो कि उतना ही हानिकर है।

....हर हफ्ते हमारे कुछ पाठ विचार और शब्दों के स्रोतों की 'यात्राओं' के, प्रेक्षण के होते थे। यह प्रकृति से सीधा संसर्ग था, जिसके बिना बच्चों की बौद्धिक शक्ति और तान्त्रिक ऊर्जा का कुआं जल्दी ही सूख जाता है। शरद ऋतु के सुहावने दिनों में, वसंत और गर्मियों में हम सूरज निकलने से काफी पहले ही इन 'यात्राओं' पर निकलते थे—गांवों में तो बच्चे जल्दी उठ ही जाते हैं। प्रकृति के बारे में, चारों ओर के संसार की वस्तुओं और परिघटनाओं के बारे में कहानियों ने बच्चों की जिज्ञासा और कौतूहल को जगा दिया था, मुझे कई प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता था। यह देखिए कुछ प्रश्न—सुबह तड़के सूरज लाल क्यों होता है और दोपहर को तपे सफेद गोले-सा क्यों होता है ? बादल कहां से आते हैं ? कुकरौंधे के फूल क्यों सुबह खिल जाते हैं और दोपहर को बन्द हो जाते हैं ? बादल क्यों गरजते हैं और बिजली क्यों चमकती है ? पश्चिम से चलने वाली हवा बारिश क्यों लाती है और पूरब से चलने वाली—सूखा? लोहे को जंग क्यों लगता है ? कबूतर कभी भी पेड़ पर क्यों नहीं बैठते ? गर्मियों में जब पेड़ पर पत्तियां होती हैं, तब उसे एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह क्यों नहीं रोपा जा सकता ? आकाश से तारे कहां गिरते हैं? हिम कण इतने सुन्दर क्यों होते हैं, मानो उन्हें किसी ने तराशा हो ? दूर देशों को जाने वाली चिड़ियों को रास्ते का कैसे पता चलता है ? चांद के चारों ओर सफेद घेरा क्यों बना होता है ? बारिश से पहले

दिन सूरज डूबते समय लाल क्यों होता है ? शहद बटोरने जाने से पहले मुधुमक्खी 'नाचती' क्यों है ? जब फूलों के पेड़ों पर फूल खिलते हैं, तो बागों में पुआल क्यों जलाते हैं ? जंगल में प्रतिध्वनि क्यों होती है ? इन्द्रधनुष क्या है? जाड़ों में बादल क्यों नहीं गरजते और बिजली नहीं चमकती? नमकीन पानी बहुत तेज पाला पड़ने पर ही क्यों जमता है ? गर्मियों में मिट्टी की हांडी में दूध रखकर हांडी को गीले तौलिये से लपेट दो, तो सख्त गर्मी पड़ने पर भी दूध गरम क्यों नहीं होता ? बारिश से पहले अबाबीलें जमीन के पास-पास क्यों उड़ती हैं ? भरत पक्षी क्यों खेत में घोंसला बनाता है और मैना, टोमटिट पेड़ पर बनाते हैं ? बत्तखें तैरती हैं, तो मुर्गियां क्यों नहीं तैरतीं? आज तो हवाई जहाज के पीछे आसमान में धुएं की पट्टी छूटती जा रही है, कल क्यों नहीं छूट रही थी ? आसमान में तारे क्यों टूटते हैं, वे कहां गिरते हैं ? हवा से कभी-कभी धूल ऐसे क्यों उठती है, जैसे नदी में भंवर बनता है ? जुगनूं क्यों चमकता है ? गाय के तो एक ही बछड़ा होता है और सूअरनी के कई सारे बच्चे—ऐसा क्यों है? क्यों गर्मियों में सूरज आसमान में बहुत ऊपर होता है और जाड़ों में नीचे ? ठण्ड से जम गए शीशों पर बर्फ से तरह-तरह के बेल-बूटे क्यों बन जाते हैं ? शारद ऋतु में पेड़ों पर पत्तियां पीली क्यों पड़ जाती हैं ?

मैं हर प्रश्न का उत्तर इस तरह से देने की कोशिश करता था कि बच्चों को प्राकृतिक परिघटनाओं का सार ही न समझ में आए, बल्कि उनकी जिज्ञासा और भी बढ़े। बच्चों के प्रश्नों के उत्तर, चारों ओर केसंसार के बारे में बातचीत—यह चिन्तन का पहला पाठ है। कभी-कभी तो मेरी समझ में नहीं आता था कि किसी सवाल का जवाब कैसे दूं। सवाल देखने में जितना आसान लगता था, उनका जवाब देना उतना ही मुश्किल होता था। हम प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक खासतौर पर बैठकर इस बात पर सोच-विचार करते थे कि बच्चों के 'दार्शनिक' प्रश्नों के उत्तर कैसे दिए जाएं। कभी-कभी बच्चों के चिन्तन की जटिल 'भूलभूलैया' को समझने में हमें सारी-सारी शाम लग जाती थी। बाल-चिन्तन को खूब अच्छी तरह से समझने वाले प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों के अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि बाहरी सरलता और स्पष्टता के पीछे प्रायः भारी जटिलता छिपी होती है। मैं इस बात को अपना एक बहुत बड़ा कार्यभार मानता था कि प्राकृतिक जगत की 'यात्राओं' के समय बच्चे वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच कार्य-कारण सम्बन्धों की ओर ध्यान दें, वे यह देखना सीखें कि कैसे संसार में एक बात दूसरी पर निर्भर है, उससे जुड़ी हुई है।

अगर प्रकृति की 'यात्रा' पर हम अन्तिम पाठ में जाते थे, तो इसके बाद हम खेलते थे। बच्चे खुद ही कोई खेल सोचते थे। इन खेलों में प्राकृतिक परिघटनाएं कथा-कहानियों के साथ गुंथी होती थीं। बच्चों को एक खेल बहुत अच्छा लगता था।

उसका नाम उन्होंने रखा था,‘रहस्यमयी द्वीप की खोज’। हम सब दो दलों में बंट जाते थे। एक दल जंगल मेंकहीं जा बैठता था। खेल की जगह के चारों ओर हम निशानियां बनाते थे—यह द्वीप की ऊंची-ऊंची चट्टानों और खूंखार जानवरों से भरा तट होता था। रहस्यमयी द्वीप पर बैठे बच्चे—वे यात्री थे, जिनका जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। वे कुछ स्थानों पर अच्छी तरह छिपाकर ऐसी निशानियां बनाते थे, जो द्वीप पर जाने का संकरा रास्ता दिखाती थीं। निशानियां पहले से ही दोनों दल तय कर लेते थे। दूसरे दल को इन ‘अभागे यात्रियों’ को बचाना होता था। बच्चे जंगल में फैल जाते थे। और चप्पा-चप्पा करके कई किलोमीटर लम्बे ‘तट’ की छानबीन करते थे, ऐसे स्थान ढूंढते थे, जिनसे होकर ‘द्वीप’ पर पहुंचा जा सकता हो। इसके लिए तीखी नजर और साहस की ही आवश्यकता नहीं, बल्कि प्रकृति की कई परिघटनाओं की भी समझ होनी चाहिए, तर्कसंगत ढंग से सोचना आना चाहिए। ऐसे खेल में ईमानदारी और सच्चाई की भी भावना विकसित होती है। बच्चे ‘द्वीप’ के गुप्त रास्ते खोजते, यात्रियों की सहायता करते, बीमारों को अस्पताल ले जाया जाता, खेल में कोई विमान-चालक बन जाता और कोई डॉक्टर। खेल का अन्त यह होता कि ‘दुर्घटनाग्रस्त यात्री’ और उनके ‘रक्षक’ सभी मिलकर खिचड़ी पकाते; हम सब अलाव के पास बैठ जाते और मैं बच्चों को कोई कहानी सुनाता। कई बच्चे कहानी पर चित्र बनाते—उनके दिमाग में कहानी के काल्पनिक जीवों की जो तस्वीर उभरती, उसे वे कागज से उतारते।

प्रकृति की ‘यात्राओं’ के समय पशु-पक्षियों के जीवन का प्रेक्षणकरने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। हम हर बार एक नये, आश्चर्यजनक संसार का दर्शन करते। शरद के सुहावने दिन को हमने देखा कि कैसे एक बूढ़ी साही अपने बच्चों के घोंसले में से पानी पीने ले जा रही है, कैसे वह बच्चों की रक्षा करती है। वसंत के दिनों में हम खरगोशों के जीवन का प्रेक्षण करते थे। बच्चों ने देखा कि मां-खरगोश छोटे से बच्चे को, जिसका अभी-अभी जन्म हुआ है, खेत में छोड़कर चली जाती है और फिर कभी उसके पास नहीं लौटती। छोटा-सा बच्चा वहीं पड़ा रहता है, जब तक कि उधर से गुजरती हुई कोई दूसरी खरगोशनी उसे खाना नहीं खिला देती। जुलाई में बच्चों ने मेंढकों के जीवन का प्रेक्षण किया। एक बार जंगल के वीरान कोने में हमें लोमड़ी की मांद मिली। बच्चों ने देखा कैसे लोमड़ी अपने छोटे-छोटे बच्चों को घुमाने ले जाती है, उन्हें दौड़ना सिखाती है और उनके साथ खेलती है। घने जंगल में हमें ऊदबिलावों को भी देखा।

हमारी ये यात्राएं और प्रेक्षण विचारों को समृद्ध बनाते थे, कल्पना और वाणी को विकसित करते थे। घूमते, सैर करते हुए बच्चे जितने अधिक प्रश्न पूछते और उतना अधिक कक्षा में प्राकृतिक परिघटनाओं, श्रम और दूसरे देशों की चर्चा होने पर

वे जिज्ञासा और कौतूहल दिखाते थे। प्रकृति की 'यात्राओं' के बाद बच्चों की भावनात्मक अवस्था को देखते हुए हर बार मुझे इस प्राचीन सूक्ति की सच्चाई का प्रमाण मिलता कि चिन्तन आश्चर्य से ही आरम्भ होता है।

मैं यह चेष्टा करता था कि प्रकृति के रहस्यों के सम्मुख आश्चर्य की, विस्मय की भावना तथा कुछ नया जानने से, संज्ञान से होने वाली खुशी बच्चों के लिए ऐसी प्रेरक शक्ति के समान हों, जो उन्हें जगाए, सक्रिय बनाए। हमारी कक्षा में कुछ छात्र (वाल्या, पेत्रिक, नीना) ऐसे थे, जिन्हें सीधे-सादे सवाल को समझने में भी काफी समय लगता था। हर छात्र के लिए इसका अपना कारण था, लेकिन परिणाम एक ही था—इन बच्चों के कार्टेक्स की कोशिकाएं निष्क्रियता की स्थिति में होती थीं। क्लास में जो बात समझाई जा रही होती थी, उसके प्रति ये बच्चे उदासीन रहते थे।

प्रेक्षणों से पता चला कि इन बच्चों की चिन्तन-प्रक्रिया में कुछ दोष है। इस दोष का मैंने जो कारण पाया उससे भी इस निष्कर्ष की पुष्टि होती थी कि उनके कार्टेक्स की कोशिकाएं निष्क्रियता की अवस्था में हैं। दोष इस बात में था—बच्चों के लिए कुछेक वस्तुओं या परिघटनाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करना और विशेषतः उसे स्मृति में बनाए रखना कठिन था। उदाहरण के लिए, छात्रों को सेबों, टोकरियों और बच्चों का सवाल दिया जाता है। जब तक छात्र सेबों और टोकरियों के बारे में सोचता है, बच्चों को भूल जाता है। बच्चों के बारे में याद दिलाया, तो सेबों और टोकरियों को भूल गया। और अब, जब बच्चे अपने परिवेश लें वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच कार्य-करण सम्बन्धों को देखते और समझने की कोशिश करते थे, तो इन छोटी-छोटी 'खोजों' से, सत्य के सम्मुख विस्मय-विमुग्धता की भावना से वाल्या, पेत्रिक और नीना का मन हर्ष से ओत-प्रोत हो उठता था। हर्षावेग से उनकी आंखें चमकने लगती थीं, उदासीनता का कहीं नामोनिशान नहीं रहता था, अध्ययन के विषय में उनकी रुचि जाग उठती थी। अगर बाल-चेतना में कोई ऐसा प्रश्न जगाया जा सकता था, जिसमें स्पष्टतः भावनात्मक रंगत होती थी, तब मानो बाल-मस्तिष्क से सोई पड़ी शक्तियों सक्रिय हो उठती थीं। मैं बड़ी खुशी से यह देख रहा था कि जिन बच्चों का बौद्धिक विकास काफी कठिनाई से हो रहा था, वे भी धीरे-धीरे मानो जाग रहे थे—कक्षा में ध्यान लगाकर अध्यापक की बातें सुनते थे, सवालों को अधिक अच्छी तरह समझने लगे थे। बेशक, अभी इस दिशा में काफी कठिन और सूक्ष्म कार्य करने की जरूरत थी। मैंने प्राथमिक कक्षाओं के अनुभवी शिक्षकों को अपने प्रेक्षणों के बारे में बताया और हमने इस कार्य का नाम रखा—बुद्धि की भावनात्मक जागरण।

मैं यह समझने का प्रयत्न कर रहा था कि जब अध्यापक संज्ञान के विषय में

वाल्या, पेत्रिक, नीना जैसे बच्चों की रुचि जगाने में सफल होता है, तो उस वक्त इन बच्चों के मस्तिष्क में कैसी प्रक्रियाएं होती हैं। मैंने जीववैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाशास्त्रियों, तंत्रिका-तंत्र विशेषज्ञों की पुस्तकें पढ़ीं। आस्ट्रियाई वैज्ञानिक फ्रायड (1856-1939) की रचनाओं में मैंने कार्टेक्स की कोशिकाओं तथा सबकार्टिकल केन्द्रों के परस्पर सम्बन्ध के बारे में रोचक विचार पाए। फ्रायड यह मानते हैं कि चिन्तन में निर्णायक भूमिका सबकार्टिकल केन्द्रों की है। अनेक वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि ये केन्द्र मनुष्य की भावनाओं का संचालन करते हैं। फ्रायड भावनाओं और बुद्धि की तुलना घोड़े और घुड़सवार से करते हैं; उनके मत से घोड़ा ही रास्ता तय करता है (अर्थात् भावनाएं—सबकार्टिकल केन्द्र)। वह जिधर चाहता है, उधर ही चलता है, लेकिन इतनी चालाकी से ऐसा करता है कि घुड़सवार को लगता है, मानो वह स्वयं घोड़े को चला रहा है। अतः, फ्रायड के अनुसार कार्टेक्स नहीं, सबकार्टेक्स ही प्रधान है।

महान रूसी शरीरक्रियाशास्त्री इवान पाव्लोव फ्रायड से तो सहमत नहीं थे, परन्तु सबकार्टेक्स की भूमिका को वह भी काफी महत्वपूर्ण समझते थे। वह लिखते हैं, 'कार्टेक्स के कार्य के लिए प्रेरणा मुख्यतः सबकार्टेक्स से ही मिलती है। इगर इन भावनाओं को निकाल दिया जाए, तो कार्टेक्स शक्ति के प्रमुख स्रोत से वंचित हो जाएगा।' पर हां, पाव्लोव के मत में कार्टेक्स ही मानव-चिन्तन और व्यवहार का प्रधान संचालनकर्त्ता हैं (घुड़सवार घोड़े को रोक भी सकता है तथा दूसरी ओर भी मोड़ सकता है)।

बच्चों के बौद्धिक श्रम का प्रेक्षण करते हुए मैं इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण पा रहा था कि सबकार्टेक्स से कार्टेक्स को जाने वाले भावनात्मक आवेग (हर्षमय उत्तेजना, आश्चर्य, विस्यम की भावना) मानो कार्टेक्स की सोई पड़ी कोशिकाओं को जगाते हैं, उन्हें सक्रिय बनाते हैं। हमारा अनुभव यह बताता था कि छोटे बच्चों का बौद्धिक विकास उनमें संज्ञान की भूख—जिज्ञासा और कौतूहल—के विकास के जरिए किया जाना चाहिए।

प्रकृति की 'यात्राएं' प्राथमिक कक्षाओं के एक अच्छी परम्परा बन गईं। बच्चे सदा उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा करते थे, जब वे जंगल या खेत में या झील के तट पर जाएंगे। वे पहले से ही खेल सोचने में लगे रहते थे। बच्चों को ऐसे खेल सबसे ज्यादा अच्छे लगते थे, जिनमें उन्हें कठिनाइयों पर विजय पानी होती थी, जिनमें कथा-कहानियों के या यथार्थ जीवन के नायक होते थे। दूसरी कक्षा में मैंने बच्चों को रॉबिनसन क्रूजा की कहानी सुनाई और तब कई महीनों तक वे इसका खेल खेलते रहे। स्पार्टकस की कहानी सुनकर बच्चों ने ऊंचे टीले पर, गहरे खड्ड के ऊपर

विद्रोही दासों का शिविर बनाया। मैंने उन्हें शकों के बारे में बताया, जो सदियों पहले हमारे इलाकों में बसते थे; इन शिकारियों, मछेरों और पशुपालकों के बारे में कहानियों ने बच्चों को इतना प्रभावित किया कि वे प्राचीन लोगों के रहन-सहन पर अपने खेल बनाने लगे।

शिक्षा का शारीरिक और बौद्धिक शक्तियों के बहुविध अभ्यास के साथ घनिष्ठ सम्पर्क होना चाहिए, ताकि ये अभ्यास बच्चों के मनों में भावनाओं का आवेग जगाएं और अपने चारों ओर की दुनिया उन्हें ऐसी रोचक पुस्तक लगे, जिसे पढ़ने को जी चाहता है। प्रकृति की 'यात्राओं' और खेलों के अलावा, शारीरिक और बौद्धिक शक्तियों के विकास की व्यापक संभावनाएं निहित हैं। बच्चों का श्रम अगर हर्षमय भावनाओं से उत्प्रेरित नहीं है, अगर बच्चे को उत्तेजित करने वाली भावनाएं उसके श्रम का सार्थक नहीं बनातीं, तो इसके बिना भरे-पूरे सुखी बचपन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हमारा अनुभव इस बात की पुष्टि करता है और छोटे बच्चे के लिए शारीरिक श्रम का अर्थ कोई काम करना सीखना ही नहीं है, केवल नैतिक शिक्षा ही नहीं है, यह श्रम तो उसके लिए विचारों के असीम, आश्चर्यजनक विविधता वाले संसार के समान है। यह संसार नैतिक, बौद्धिक, सौन्दर्यबोधात्मक अनुभूतियों को जन्म देता है, जिनके बिना अपने चारों ओर की दुनिया का संज्ञान नहीं हो सकता, अर्थात् शिक्षा भी नहीं हो सकती। पढ़ाई के साथ-साथ शारीरिक श्रम बच्चों के लिए सपनों और सृजन के संसार की यात्रा के समान है। शारीरिक श्रम करते हुए ही मेरे छात्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बौद्धिक गुण विकसित हुए थे। ये हैं—जिज्ञासा, कौतूहल, चिन्तन-तीव्रता तथा जीवन्त कल्पना-शक्ति।

अगर बच्चा अपने जीवन में ऐसा शारीरिक श्रम करता है, जिसकी प्रेरणा उसे स्वयं अपने विचारों से मिलती है, तो ऐसी स्थिति में ही पाठों में बौद्धिक श्रम भी उसके लिए रोचक होगा, उसे अच्छा लगेगा। दूसरी कक्षा में ही सप्ताह में एक बार बच्चों के लिए एक पीरियड ऐसा रखा गया था, जिसमें वे अपना मनपसन्द काम करते थे। तीसरी और चौथी कक्षाओं में हर सप्ताह में ऐसे दो पीरियड होते थे।

बच्चों के मनपसन्द काम का अर्थ यह नहीं कि अध्यापक बैठा यह देखता रहे कि कब तक बच्चों में किसी काम को प्रति रुचि जागेगी। शिक्षा के, चरित्र-निर्माण के सारे कार्य की ही भांति श्रम-शिक्षा में भी किसी भी बात को अपने आप ही होने देने के लिए नहीं छोड़ना चाहिए। बच्चों के लिए चारों ओर श्रम का वातावरण होना चाहिए। मेरे छात्र स्कूल के किशारों, युवकों को काम करते देखते थे। स्कूल के सभी छात्र अपने मनपसन्द के दसियों काम करते थे। वे पेड़ लगाते थे, अनाज उगाते थे, मशीनों और कल-पुर्जों के नमूने बनाते थे, तरह-तरह से मिट्टी और खाद मिलाकर

उसका परिणाम देखते थे, पशुओं की देखभाल करते थे, नया तापघर, वर्कशॉप बनाने में, नल लगाने में हाथ बंटाते थे।

खोज, जिज्ञासा और कौतूहल की भावना ही बच्चे में श्रम के प्रति रुचि जगाती है। मैं सदा यही मानता था कि श्रम ही अन्तिम लक्ष्य नहीं है, बल्कि यह तो चरित्र-निर्माण प्रक्रिया के अन्य बहुमुखी लक्ष्यों—सामाजिक, वैचारिक, नैतिक, बौद्धिक, सृजनात्मक, सौन्दर्यबोधात्मक और भावनात्मक लक्ष्यों—की प्राप्ति का साधन मात्र है।

शिक्षा बच्चों के लिए रोचक और मनपसन्द काम तभी हो सकती है, जबकि वह विचारों, भावनाओं, सृजन, सौन्दर्य और खेलों की उज्ज्वल किरणों से आलोकित हो। पढ़ाई में सफलता में मेरी चिन्ता इस चिन्ता से आरम्भ होती थी कि बच्चा क्या खाता-पीता है, कैसे सोता है, उसका स्वास्थ्य कैसा है, कैसे वह खेलता है, वह दिन में कितने घण्टे ताजी हवा में रहता है, कौन-सी पुस्तक पढ़ता है और कौन-सी कथा-कहानी सुनता है, कैसे चित्र बनाता है और चित्रों में अपने विचारों, अपनी भावनाओं को कैसे व्यक्त करता है, प्रकृति का संगीत तथा संगीतकारों द्वारा रचित संगीत और लोक संगीत उसके मन में कैसी भावनाएं जगाता है, कौन-सा काम उसे पसन्द है, लोगों के दुख-सुख के प्रति कितना संवेदनशील है, उसे दूसरों के लिए क्या कुछ किया है और ऐसा करते हुए उसके मन में क्या भाव उठे हैं।

शिक्षा केवल तभी बच्चों के आत्मिक जीवन का एक अंश बनती है, जबकि ज्ञान सक्रिय कार्यों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ हो। बच्चों से यह आशा नहीं की जा सकती कि पहाड़े या समकोण चतुर्भुज का क्षेत्रफल निकालने का नियम आप से आप उन्हें आकर्षित करेंगे। जब बच्चा यह देखता है कि ज्ञान सृजन के या श्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन है, तभी यह ज्ञान पाने की इच्छा उसके मन में जागती है। मैं यह चेष्टा करता था कि छोटी उम्र में ही शारीरिक श्रम में बच्चों को अपनी होशियारी और कुशाग्र बुद्धि का परिचय देने का अवसर मिले। स्कूल का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यभार है—बच्चों को ज्ञान का प्रयोग करना सिखाना। छोटी कक्षाओं में ही यह खतरा सबसे ज्यादा होता है कि ज्ञान निरर्थक बोझ बनकर रह जाएगा, क्योंकि इस उम्र में बौद्धिक श्रम नई-नई बातें सीखने से ही सम्बन्धित होता है। अगर ये नई-नई बातें केवल सीखी ही जाती हैं और उन्हें व्यवहार में नहीं लाया जाता, तो धीरे-धीरे शिक्षा बच्चे के आत्मिक जीवन की परिधि से बाहर होती जाती है, वह उसकी रुचियों और शोकों से कट जाती है। ऐसा न होने देने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक हर बच्चे को अपने ज्ञान और कौशल को सृजनात्मक कार्य में लगाना सिखाए।

'प्रकृति पुस्तक' के तीन सौ पृष्ठ

सुविख्यात जर्मन गणितज्ञ फेलिक्स क्लाइन (1849-1925) स्कूल छात्र की तुलना तोप से करते थे, जिसमें दस वर्षों तक ज्ञान ठूंसा जाता है और फिर दाग दिया जाता है, जिसके बाद उसमें कुछ भी नहीं बचा रहता। यह कटु व्यंग्य मुझे तब याद आता था, जब मैं किसी बच्चे को वह सब याद करते देखता था, जिसे वह समझता नहीं था, जिससे उसकी चेतना में कोई भी सजीव बिंब, चित्र नहीं बनते थे, उस विषय से सम्बन्धित कोई बात, कोई विचार नहीं उभरते थे। विचारों के स्थान पर स्मृति को रखना, परिघटनाओं के सार का प्रेक्षण करने, उनका प्रत्यक्ष बोध पाने के स्थान पर उनके बारे में जानकारी को रटना—यह एक बहुत बड़ी बुराई है, जो बच्चे को मन्दबुद्धि बनाती है और अन्ततः पढ़ाई में उसकी सारी रुचि जाती रहती है।

छोटे बच्चों को तीव्र स्मरण शक्ति देखकर हममें से भला कौन आश्चर्यचकित नहीं हुआ है। पांच साल का बच्चा माता-पिता के साथ जंगल की सैर करके लौटा है। अभी तक उसकी आंखों के सामने सुन्दर-सुन्दर दृश्य घूम रहे हैं। महीना बीतता है, साल बीतता है, माता-पिता फिर जंगल में घूमने जाने की सोचते हैं, बेटा बड़ी अधीरता से शान्त सुहावनी सुबह का इन्तजार करता है, वह दिन याद करता है, जब वह बहुत पहले पापा और अम्मा के साथ जंगल में घूमने गया था। माता-पिता यह देखकर हैरान हैं कि बच्चे की स्मृति में कैसे सजीव चित्र उभर रहे हैं, कितनी छोटी-छोटी बातें भी उसे याद आती हैं—वह दो अलग-अलग रंगों की पंखुड़ियों वाले फूल को याद करता है। पापा आश्चर्यचकित होकर बेटे के मुंह से भाई-बहन की कहानी सुनते हैं, जो फूल बन गए थे। यह कहानी सालभर पहले उन्होंने बच्चे की मां को सुनाई थी। उस वक्त तो लगता था कि बेटा कहानी नहीं सुन रहा, वह तो तितली के पीछे भाग रहा था—उसकी स्मृति में यह छोटी-सी घटना कैसे अंकित हो गई?

यही तो बात है कि बच्चे रंगों और ध्वनियों की विविधतम छटाओं वाले बिंबों को सहज ही ग्रहण कर लेते हैं और अपनी स्मृति में संजोए रखते हैं। अपने चारों ओर के संसार के बिंबों को ग्रहण करते हुए बच्चे की चेतना में कई अनोखे सवाल उठते हैं, जिन्हें सुनकर बड़े हैरान रह जाते हैं। वह बेटा भी अब पापा से पूछता है, 'भाई-बहन एक दूसरे को देखते हैं कि नहीं ? आपने कहा था पेड़-पौधों में भी जान होती है, तो क्या वे भी देखते-सुनते हैं ? एक दूसरे से बातें भी करते हैं ? हम भी उनकी बातें सुन कसते हैं ?' विचारों की धारा फूट निकली है, पापा विस्मित हैं— सालभर पहले बच्चे ने यह सब क्यों नहीं पूछा था ? इतनी देर तक उसकी स्मृति में न केवल फूल का उज्ज्वल बिंब ही, बल्कि उन क्षणों का भावनात्मक रंग भी उसकी स्मृति में कैसे बना रहा ? पापा देखते हैं कि बेटे को वह फूलों से भरा मैदान और नीला आकाश और दूर

कहीं उड़ते हवाई जहाज की आवाज भी अच्छी तरह याद है।

इन सब बातों पर सोचते, मनन करते हुए, मैं अपने आप से एक सवाल पूछता था—क्या कारण है कि स्कूल में 2-3 साल पढ़ने के बाद ऐसी सजीव कल्पना शक्ति और तीक्ष्ण स्मृति वाला बच्चा भी व्याकरण का साधारण-सा नियम याद नहीं कर सकता, वह नहीं जानता कि छह अट्ठे कितना होगा ? मेरा निष्कर्ष भी जर्मन वैज्ञानिक के निष्कर्ष से कम दुखद नहीं था—स्कूल में ज्ञान-प्राप्ति की प्रक्रिया प्रायः बच्चे के आत्मिक जीवन से कट जाती है। बच्चों की स्मरण-शक्ति इसीलिए इतनी तीव्र होती है कि ज्वलंत बिंबों, चित्रों, कल्पनाओं और प्रत्यक्ष बोध की निर्मल धारा उसे सींचती है। बाल-चिन्तन इसीलिए हमें अपने इतने सूक्ष्म, अप्रत्याशित, 'दार्शनिक' प्रश्नों से विस्मित करता है, क्योंकि वह इस धारा केजीवनदायी स्रोत से पोषित होता है। यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि स्कूल बच्चों को उनके चारों ओर की दुनिया से अलग न कर दे। मैं यही चेष्टा करता था कि बचपन के सभी वर्षों में बाल-चेतना प्रकृति से, चारों ओर के संसार से सजीव बिंबों, चित्रों को ग्रहण करे, कि चिन्तन के नियमों को बच्चे एक सुघड़ भवन के रूप में देखें, समझें, जिसकी वास्तुकला और भी अधिक सुघड़ भवन—स्वयं प्रकृति—से ही ली गई है। बच्चे को ज्ञान का, तथ्यों, नियमों और सूत्रों का भंडार बनने से बचाने के लिए उन्हें सोचना सिखाना चाहिए। बाल-चेतना और बाल-स्मृति की प्रकृति की ही यह मांग है कि क्षणभर के लिए भी बच्चा अपने उज्ज्वल परिवेश और उसकी नियम बद्धताओं से न कट जाए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि बाल-स्मृति की तीव्रता और विचारों, की स्पष्टता स्कूल में पढ़ते हुए न केवल धुंधली ही नहीं होगी, बल्कि और भी प्रखर हो जाएगी, बशर्ते जिस माध्यम में बच्चा सोचना, याद करना और विचार करना सीखेगा, वह स्वयं प्रकृति ही हो, बच्चे के चारों ओर की दुनिया ही हो।

बौद्धिक विकास, बौद्धिक शिक्षा में प्रकृति की भूमिका का अतिमूल्यांकन भी नहीं करना चाहिए। कुछ अध्यापकों का यह सोचना बिल्कुल गलत है कि अगर बच्चे प्रकृति के आंचल में हैं, तो इस तथ्य में ही बौद्धिक विकास की प्रबल प्रेरक शक्ति निहित है। प्रकृति में ऐसी कोई जादुई शक्ति नहीं है, जो बुद्धि, भावनाओं और इच्छा-बल पर सीधे-सीधे प्रभाव डालती हो। प्रकृति केवल तभी चरित्र-निर्माणकारी शक्ति बनती है, जबकि मनुष्य उसका बोध पाता है, अपनी बुद्धि से उसके कार्य-कारण सम्बन्धों को समझने का प्रयत्न करता है। किसी चीज को देखकर उसे जानने, समझने की क्षमता का अतिमूल्यांकन करने का अर्थ है बाल-चिन्तन की कुछ विशिष्टताओं को ही सब कुछ मानना, ज्ञान-प्राप्ति के कार्य को ऐन्द्रिय ज्ञान के क्षेत्र तक ही सीमित करना। बाल-चिन्तन की विशिष्टताओं को ऐसे नहीं लेना चाहिए कि यही सब कुछ

है। खासतौर पर इस विशिष्टता को कि बच्चा बिंबों, रंगों, ध्वनियों के माध्यम से सोचता है। यह विशिष्टता एक वस्तुगत सत्य है, जिसका महत्व उशीन्स्की ने बड़ी अच्छी तरह सिद्ध किया था। परन्तु बच्चा बिंबों, रंगों और ध्वनियों के माध्यम से सोचता है, तो इससे यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकलता कि बच्चे को अमूर्त चिन्तन नहीं सिखाना चाहिए। बौद्धिक विकास में प्रकृति की विशाल भूमिका देखकर तथा ज्ञान पाने की क्षमता के महत्व पर जोर देते हुए अनुभवी शिक्षक इन कारकों को अमूर्त चिन्तन के विकास तथा लक्ष्यबद्ध शिक्षा के साधनों के रूप में ही देखता है।

मैंने खूब सोच-विचारकर यह तय कर लिया था कि मेरे बच्चों के लिए विचारों का स्रोत क्या होगा, कि चार बरस के दौरान दिन-प्रतिदिन बच्चे किन बातों का प्रेक्षण करेंगे, चारों ओर के संसार की कौन-सी परिघटनाएं उनके चिन्तन का स्रोत होंगी। इस तरह 'प्रकृति पुस्तक' के तीन सौ पृष्ठ बने। यह 300 प्रेक्षण, 300 उज्ज्वल चित्र थे, जो बच्चों की चेतना में अंकित हुए। हफ्ते में दो बार हम प्रकृति को आंचल में जाते थे—सूचना सीखने के लिए। केवल प्रेक्षण करने के लिए नहीं, बल्कि सोचना सीखने के लिए। वस्तुतः ये चिन्तन के पाठ थे। जी हां, यह मन बहलाव के लिए सैर-सपाटा नहीं था, बल्कि पाठ ही होता था। बेशक, पाठ भी अत्यंत रोचक हो सकता है, मन भी बहला सकता है—और ऐसा होने पर वह बच्चों के आत्मिक जगत को और अधिक समृद्ध बनाता है।

मैंने यह लक्ष्य रखा था कि बच्चों की चेतना में यथार्थ जीवन के ज्वलंत चित्र अंकित हों। मेरा प्रयत्न यही था कि सजीव, बिंबात्मक कल्पनाओं के आधार पर ही चिन्तन प्रक्रिया हो, कि बच्चे अपने परिवेश का प्रेक्षण करते हुए परिघटनाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करें, वस्तुओं के गुणों और लक्षणों की तुलना करें। मेरे प्रेक्षणों से बच्चों के बौद्धिक विकास की एक महत्वपूर्ण नियमसंगति की पुष्टि हुई—पाठ में बच्चों को जितने अधिक अमूर्त सत्यों, सामान्य निष्कर्षों को समझना होता है, यह बौद्धिक श्रम जितना अधिक कठिन होता है, उतना ही अधिक छात्रों को ज्ञान के आदि स्रोत—प्रकृति—की ओर उन्मुख होना चाहिए,अपने चारों ओर के संसार के बिंब और चित्र उनकी चेतना में उतनी ही अधिक स्पष्टता से अंकित होने चाहिए। परन्तु उज्ज्वल बिंब बच्चे की चेतना में ऐसे अंकित नहीं होते, माना वह फोटो की रील हो। बिंब और चित्रकितने ही सजीव, कितने ही उज्ज्वल क्यों न हों, तो भी वे स्वयं ही लक्ष्य नहीं हैं, शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य नहीं हैं। बौद्धिक शिक्षा अर्थात् बुद्धि का विकास वहीं आरम्भ होता है, जहां सैद्धान्तिक चिन्तन है, जहां प्रकृति का प्रत्यक्ष बोध पाना अन्तिम लक्ष्य नहीं, बल्कि केवल माध्यम है—परिवेश का सजीव बिंब शिक्षक के लिए ऐसा स्रोत है, जिसके विभिन्न रूपों, रंगों और ध्वनियों में हजारों प्रश्न छिपे हुए

हैं। इन प्रश्नों के अन्तर्य को उजागर करते हुए शिक्षक मानो 'प्रकृति पुस्तक' के पन्ने पलटता है।

हमारी 'प्रकृति पुस्तक' के पहले पृष्ठ का नाम है, 'सजीव और निर्जीव'। शरद ऋतु के आरम्भ में धुपहली दुपहरी को हम नदी तट पर पहुंचते हैं, घास पर बैठ जाते हैं। हमारे सामने चरागाह है, जिसमें शरद पुष्प खिल रहे हैं। नदी के पारदर्शी जल में मछलियां तैर रही हैं। तितलियां उड़ रही हैं और नीले आकाश में अबाबीलें उड़ान भर रही हैं। हम ऊंचे कगार की ओर जाते हैं, जहां कई बरसों के दौरान धरती इस तरह कट गई है कि नदी के किनारे खड़े होकर उसकी अलग-अलग परतें देखी जा सकती हैं। बच्चे बड़े कौतूहल से अलग-अलग रंगों की मिट्टी और रेत की परतें देखते हैं—पीली, लाल, नारंगी, सफेद। सफेद मिट्टी की पतली परत के नीचे पीली रेत है, और नीचे घनाकार क्रिस्टल दिखाई देते हैं। बच्चे धरती की काली मिट्टी वाली ऊपरी परत की तुलना गहराई की परतों से करते हैं।

'जमीन की ऊपरी परत में हम क्या देखते हैं ?'

'पौधों की जड़ें। गहराई में जड़ें नहीं हैं,' बच्चे उत्तर देते हैं।

'बच्चो, कगार के ऐन सिरे पर उग रही घास को देखो और पीली रेत की इस परत को। घास और रेत में क्या फर्क है ?'

'घास गर्मियों में उगती है, शरद में मुरझा जाती है और वसंत में फिर जी उठती है,' बच्चे कहते हैं। 'घास के छोटे-छोटे बीज हैं, वे जमीन पर गिरते हैं और उनसे नए डण्ठल उग आते हैं।'

'और रेत ?' मैं चाहता हूं कि अपने परिवेश की वस्तुओं की तुलना सभी बच्चे करें, खासतौर पर मन्दबुद्धि बच्चे—पेत्रिक, दाल्या, नीना। जैसाकि मैं पहले कह चुका हूं क्लास में ऐसे बच्चे भी हैं, जिनके विचारों की धारा की तुलना मंथर गति से बहती भरी-पूरी नदी से की जा सकती है। मीशा और साश्को ऐसे ही हैं। एक और बच्ची है—ल्यूदा, जिसका चिन्तन अभी मेरे लिए सात तालों में बन्द रहस्य ही है। पहले तो मैं यह सोचता था कि बच्ची के बौद्धिक विकास की गति धीमी है और उसके लिए वह सब समझना कठिन है, जो दूसरे बच्चे सहज ही समझ लेते हैं। परन्तु बच्ची की आंखों में मुझे विचारों की चमक दीख पड़ती थी, जिसे मानो कोई आन्तरिक शक्ति रोके रहती थी; बच्ची मानो जान-बूझकर वह सब कहने से अपने आपको रोकती थी, जो खुद अच्छी तरह जानती थी।

'बच्चो, यह देखो—यह रही पीली रेत और यह रही हरी घास। या यह और भी अच्छा होगा—यह है हरी रेत और यह है हरी घास। ये दोनों एक दूसरी से किस बात में भिन्न हैं, इनमें क्या फर्क है ?'

बच्चे सोचने लगते हैं, वे हरी घास को और कगार में जमीन की परतों को देखते हैं। ल्यूदा की आंखें विचारमग्न हैं, पेत्रिक ने भौंहें सिकोड़ ली हैं, वाल्या एक मुट्ठी से दूसरी में रेत डाल रही है।

'रेत पर फूल नहीं हैं, और घास पर हैं,' ल्यूदा कहती है।

'घास को गाएं चरती हैं, रेत को कोई चरके देखे तो !' पेत्रिक सहसा बोल उठता है।

'घास तो बारिश होने पर बढ़ती है, पर रेत क्या बढ़ती है ?' मीशा विचार-मग्न-सा कहता है।

'रेत तो जमीन में गहराई पर है और घास ऊपर-ऊपर,' यूरा कहता है।

लेकिन सेर्योझा उसकी बात काटता है, 'किनारे पर क्या रेत नहीं है ? घास सूरज की ओर बढ़ती है, और रेत तो बस धूप में गरम ही होती है....'

फिर हम एक कंकड़ और हरी पत्ती की, लाल कांच के टुकड़े और फूल की, नदी में तैरती मछली और बत्तख के पर की, पुल की लोहे की रेलिंग और पेड़ पर चढ़ती बेल की तुलना करते हैं। बच्चों के विचारों की धारा कलकल करती बह निकलती है, लड़के-लड़कियां वस्तुओं और परिघटनाओं में ऐसे परस्पर सम्बन्धों की ओर ध्यान देते हैं, जो पहली नज़र में ही दिख जाते हैं, फिर वे उन सम्बन्धों को भी देखते हैं, जो इतने प्रत्यक्ष नहीं हैं। धीरे-धीरे बच्चों को सजीव और निर्जीव की अवधारणा समझ में आने लगती है। कुछ वस्तुएं सजीव हैं और कुछ निर्जीव—यह तो बच्चे बहुत से तथ्यों से देखते हैं, लेकिन जब मैं पूछता हूं, 'परन्तु सजीव और निर्जीव में अन्तर क्या है ?'—तो वे उत्तर नहीं दे पाते। उत्तर धीरे-धीरे ही मिलता है और इसकी खोज से उनका विचार उन्हीं चीजों की ओर उन्मुख होता है, जिन्हें वे अपने आस-पास देखते हैं। कई लक्षण तो वे ठीक ही देखते हैं, लेकिन साथ ही कुछ गलतियां भी करते हैं, जिन्हें यहीं, प्रेक्षणों की प्रक्रिया में ठीक करते जाते हैं। जब कोस्त्या कहता है—

'सजीव चीज चलती है, निर्जीव नहीं चलती', तो प्रायः सभी बच्चे उसकी बात से सहमत हो जाते हैं, परन्तु फिर खामोशी छा जाती है, बच्चे अपने चारों ओर देखते हैं, कोई आपत्ति करता है।

'छड़ी को नदी में फेंक दो तो वह बहती चलती है, पर क्या सजीव है ?'

'ट्रैक्टर भी चलता है, पर वह तो निर्जीव है न ?'

'मकड़ी का तार हवा में उड़ता है, पर क्या वह सजीव है ?'

'और रेत ? वह भी तो चलती है। हम एक बार खुली खदान में गए थे, वहां रेत की धाराओं को चलते देखा था।'

'नहीं, सब समझते हैं कि बात चलने की, गति की नहीं है तो फिर सजीव और निर्जीव में क्या भेद है ? बच्चे बार-बार अपने चारों ओर की वस्तुओं की तुलना करते हैं। शूरा खुशी से चिल्लाकर कहता है–

'सजीव चीजें बढ़ती हैं, निर्जीव नहीं बढ़तीं।'

बच्चे इन शब्दों पर गौर करते हैं और फिर उनकी नजरें अपने चारों ओर दौड़ती हैं। वे बोलते हैं–घास सजीव है, घास बढ़ती है; पेड़ सजीव है, वह भी बढ़ता है; जंगली गुलाब की झाड़ी सजीव है, गुलाब बढ़ता है; पत्थर निर्जीव है–वह नहीं बढ़ता; रेत भी निर्जीव है, क्योंकि वह नहीं बढ़ती। हां, यही बात है–सभी सजीव चीजें बढ़ती हैं; निर्जीव चीजें नहीं बढ़तीं। मीशा दूर कहीं नजरें गड़ाए अपनी सोच में डूबा हुआ है। क्या वह अपने साथियों की बातें सुन रहा है ? जब बच्चे अपने चारों ओर की सभी और निर्जीव वस्तुओं के नाम ले चुकते हैं, तब वह बोलता है–

'जो सजीव है, वह सूरज के बिना नहीं रह सकता,' और हाथ से जंगल, खेत, चरागाह की ओर दिखाता है।

ये शब्द सुनकर एक बार फिर मेरा यह विश्वास सुदृढ़ हो जाता है कि प्रायः मन्दबुद्धि बच्चे बड़े ध्यान से सब कुछ देखते हैं और उनकी नजर पैनी होती है। मीशा के शब्दों से बच्चों की चेतना में मानो सारी बात एकदम स्पष्ट हो जाती है। 'मैंने पहले क्यों नहीं यह सोचा ?' मन ही मन वे अपने आपसे पूछते हैं। वे एक बार फिर अपने मस्तिष्क से चारों ओर के पदार्थ को मानो टोहते हैं, वे सोचते हुए बोलते हैं, 'घास, फूल, पेड़, गेहूं कुछ भी सूरज के बिना नहीं उग सकता। आदमी भी सूरज के बिना नहीं जी सकता....या क्या वह जी सकता है ? नहीं, क्या हम यह कल्पना कर सकते हैं कि लोग कहीं गहरे तहखाने में रहें ? हम अच्छी तरह जानते हैं कि घने छतनार पेड़ की छाया में घास मुरझा जाती है, सूख जाती है। पापा कहते हैं, 'बारिश के बाद अगर सूरज गर्मी दे दे, तो फसल तुरन्त हरी-भरी हो जाए, धूप न निकली, तो बुरी बात होगी....' और पत्थर तो धूप में हो या तहखाने में एक-सा ही रहता है। नहीं, एक-सा नहीं रहता। तहखाने में उस पर काई जम जाती है....काई क्या है ? यह जीवन है या नहीं ? सूरज से केवल लाभ ही नहीं होता, अगर देर तक बारिश न हो, तो वह फसल को सुखा भी सकता है तो इसका मतलब यह हुआ कि जो सजीव है उसे केवल धूप ही नहीं, पानी भी चाहिए।

ऐसी छोटी-छोटी धाराओं में बच्चों के विचार बहते चलते हैं, फिर वे मिलकर एक बड़ी नदी बन जाते हैं, बच्चों के लिए यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती है कि जो कुछ भी जीवित है, उसमें कुछ ऐसी परिघटनाएं होती हैं, तो उनकी समझ से परे हैं, और ये परिघटनाएं सूरज, पानी तथा प्रकृति में हमारे चारों ओर जो कुछ है, उस

पर निर्भर करती हैं। इस तरह बच्चे 'प्रकृति पुस्तक' की पहली पंक्तियां पढ़ लेते हैं। वह समझ गए हैं कि सारा संसार दो तत्वों से बना है—सजीव और निर्जीव। इन दो तत्वों के बारे में उनकी चेतना में जो बात बैठती है, उससे बहुत से प्रश्न उठते हैं। घर लौटते हुए बच्चे अपने चारों ओर उन सब चीजों को ध्यान से देखते हैं, जो उन्हें जानी-पहचानी लगती थीं और बहुत-सी ऐसी बातें पाते हैं, जिनकी ओर पहले कभी उनका ध्यान नहीं गया था, और जितनी अधिक नई बातें वे देखते हैं, उतने ही सवाल पूछते हैं, 'बीच में से निकला छोटा-सा अंकुर इतना बड़ा पेड़ कैसे बन जाता है? पत्तियां, टहनियां, मोटा तना—यह सब कहां से आता है ? शरद में पेड़ों की पत्तियां क्यों झड़ जाती हैं ? जाड़ों में पेड़ बढ़ते हैं या नहीं बढ़ते ? इन सब प्रश्नों का उत्तर एकदम नहीं दिया जा सकता और न ही इसकी कोई आवश्यकता भी है। यही बहुत अच्छा है कि बच्चों के मन में सब प्रश्न उठे हैं। यही बहुत अच्छा है कि बच्चा सोचते समय ज्ञान, विचार के आदिस्रोत—अपने चारों ओर के संसार—की ओर उन्मुख होना सीखता है। यही बहुत अच्छा है कि अपने विचार को व्यक्त करने के लिए वह ठीक-ठीक, सही शब्द ढूंढ लेता है। विचारों की सुस्पष्टता चिन्तन का एक सबसे महत्वपूर्ण गुण है और यह गुण अपने चारों ओर के संसार के साथ सीधे सम्पर्क में ही पाया जा सकता है।

बच्चा बिंबों, रंगों और ध्वनियों के माध्यम से ही सोचता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसे ठोस चिन्तन पर ही रुक जाना चाहिए। बिंबात्मक चिन्तन अवधारणाओं के माध्यम से चिन्तन की ओर संक्रमण का एक अनिवार्य चरण है। मैं यह प्रयत्न कर रहा था कि बच्चे धीरे-धीरे परिघटना, कारण, परिणाम, घटना, अन्योन्याश्रयता, निर्भरता, भेद, सामान्यता, संगतता, असंगतता, संभव, असंभव आदि अवधारणाओं से काम लेना सीखें। कई वर्षों के अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि ये अवधारणाएं अमूर्त चिन्तन के गठन और विकास में बहुत बड़ी भूमिका अदा करती हैं। इन अवधारणाओं से काम लेना तब तक नहीं आ सकता, जब तक कि बच्चा स्वयं सजीव तथ्यों और परिघटनाओं का विश्लेषण नहीं करता, अपनी आंखों से वह जो कुछ देखता है, उसे पूरी तरहसमझता नहीं, जब तक कि बच्चा ठोस वस्तु, तथ्य, परिघटना से शनैः-शनैः अमूर्त सामान्यीकरण करना नहीं सीख लेता। प्रकृति का प्रेक्षण करते हुए बच्चों के मन में जो सवाल उठते हैं, वे ही ठोस चिन्तन से अमूर्त चिन्तन की ओर संक्रमण करने में सहायक होते हैं। मैं अपने छात्रों की प्रकृति की ठोस परिघटनाओं का प्रेक्षण करना, कार्य-कारण सम्बन्ध खोजना सिखाता था। चिन्तन के ठोस बिंबों के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होने का फलस्वरूप बच्चे धीरे-धीरे अमूर्त अवधारणाओं से काम लेना सीख रहे थे। कहना न होगा कि यह

एक लम्बी, कई साल तक चलने वाली प्रक्रिया थी।

'प्रकृति पुस्तक' पढ़ना बच्चों के लिए बहुत ही रोचक कार्य था। लेकिन उनकी यह रुचि ही अपने आप में एक लक्ष्य नहीं थी। सोवियत शिक्षाशास्त्री शिक्षा में बच्चों की रुचि को ही सब कुछ नहीं मानते, वे यह भी स्वीकार नहीं करते कि बच्चों के कार्यकलाप, उनकी गतिविधियां ही शिक्षण प्रक्रिया का अन्तिम लक्ष्य हैं। 19वीं सदी में ही उशीन्स्की ने लिखा था, 'बच्चे को जो अच्छा लगता वह सब करना तो सिखाइए ही, लेकिन साथ ही वह सब करना भी सिखाइए, जिसमें उसका जी नहीं लगता। उसे सिखाइए कि वह अपना कर्त्तव्य निभाने का सन्तोष पाने के लिए यह करे—आप बच्चे को जीवन के लिए तैयार करते हैं और जीवन में सभी कर्तव्य रोचक नहीं होते।' सोवियत शिक्षाशास्त्र में वह प्रवृत्ति कदापि नहीं है जो कुछ बुर्जुआ वैज्ञानिकों में पाई जाती है—वे छात्रों की निजी आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से ही शिक्षा के अन्तर्य, रूपों और विधियों को देखते हैं। सोवियत शिक्षाशास्त्र में बच्चे की व्यक्तिगत रुचि को स्कूल के शैक्षिक और चरित्र-निर्माणात्मक कार्यभारों की पूर्ति का साधन ही माना जाता है। ये कार्यभार हैं—बच्चों को निश्चित वैज्ञानिक ज्ञान देना, द्वंद्वात्मक-भौतिकवादी धारणाएं बनाना। 'प्रकृति पुस्तक' पढ़ने को मैं समय बिताने का मनोरंजन साधन या मनबहलाव के लिए खेल नहीं, बल्कि ऐसा मार्ग समझता था, जो वैज्ञानिक ज्ञान के संसार में ले जाता है। जिन परिघटनाओं में प्रकृति के नियमों का सार प्रकट होता है, उन पर बच्चे सोच-विचार करते हुए उन्हें समझने की कोशिश करते थे। 'प्रकृति पुस्तक' के विषय हर बच्चे को व्यक्तिगत रुचियों से सन्तुष्ट करने की दृष्टि से नहीं, बल्कि संसार को वैज्ञानिक ढंग से जानने-समझने, उसका संज्ञान पाने के नियमों को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते थे। यहीं पर सोवियत शिक्षा-सिद्धान्त के स्कूल छात्रों की गतिविधियों के लक्ष्य तथा इस व्यवहारवादी सिद्धान्त के बीच कि गतिविधियों से ही ज्ञान मिलता है, भेद निहित है।

सोवियत शिक्षाशास्त्र में गतिविधियों को सुव्यवस्थित वैज्ञानिकशिक्षा के स्थान पर नहीं रखा जाता, बल्कि इन्हें शैक्षिक और चरित्र-निर्माणात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन माना जाता है। कहना न होगा कि बच्चों की निजी रुचि के बिना ज्ञान-प्राप्ति में सहायक गतिविधियों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सोवियत शिक्षाशास्त्र में रुचि को सोचने-समझने, अध्ययन-मनन करने की प्रक्रिया में बच्चों की सृजनात्मक आत्मिक शक्ति के सक्रिय सहयोग के रूप में देखा जाता है। ज्ञान-प्राप्ति के दौरान जिन सत्यों को बच्चा जानता-समझता है, ज्यों-ज्यों वे उसकी निजी धारणाएं बनते जाते हैं, त्यों-त्यों अध्ययन और संज्ञान के विषय में उसकी रुचि बढ़ती जाती है। सोवियत शिक्षाशास्त्र में रुचि तथा विचारधारात्मक और वैज्ञानिक भौतिकवादी शिक्षा

के बीच अभिन्न सम्बन्ध है।

हम एक के बाद एक 'प्रकृति पुस्तक' के पृष्ठ पढ़ते हैं, सोचना सीखते हैं। दूसरे पृष्ठ का विषय है, 'निर्जीव और सजीव का सम्बन्ध'। हम तापघर में जाते हैं, वहां बड़ी कक्षाओं के छात्रों को जमीन की गहराई में से ली गई पीली रेत और बारीक रोड़ी पर खीरे, टमाटर, जौ और जई उगाते देखते हैं। बच्चे देखते हैं कि कैसे लोहे और लकड़ी की उथली पेटियों में छात्र रेत और रोड़ी भरते हैं, उस पर रासायनिक पदार्थों का घोल डालते हैं। खीरे और टमाटर की जड़ें इस पर्यावरण में से पौधे की वृद्धि और फलों के उगने के लिए रस लेती हैं। निर्जीव पत्थर और पानी में घुला सफेद चूरा—लगता है जीवन के लिए बस इसी की आवश्यकता है। इधर इन उथले पात्रों में तो जौ के हरे-हरे डण्ठल रेत और रोड़ी के बिना ही उग रहे हैं—जड़ें सफेद चूरे के घोल से ही पोषक पदार्थ पाती हैं। फूलों के खिलने और फल लगने की प्रक्रिया को ध्यान से देखते हुए बच्चे यह पाते हैं कि निर्जीव पदार्थ सजीव पदार्थ के लिए पर्यावरण तभी बनते हैं, जबकि वहां सूरज और पानी हो। प्रकाश, गर्मी और जल के बिना जीवन असम्भव है। आज बाहर बादल छाए हुए हैं, इसलिए तापघर में बत्तियां जलाई गई हैं। बाहर जब ठण्ड होती है, तो तापघर में गरम पानी के पाइप हवा को गरम करते हैं।

मैं बच्चों से कहता हूं, 'बच्चो, तुम जो कुछ देख रहे हो, उस पर गौर करो, सोचो कि क्या सजीव पदार्थ निर्जीव के बिना रह सकते हैं ? तुम्हारे सामने एक बड़ा डिब्बा रखा है, जिसमें कई छोटे-छोटे डिब्बे हैं—इनमें तरह-तरह के रासायनिक खादें हैं। देखो कैसे तुम्हारे बड़े साथी अलग-अलग डिब्बों में से सफेद, पीला, भूरा चूरा लेते हैं, उन्हें मिलाकर पानी में घोलते हैं। यह देखो यहां उपजाऊ मिट्टी बनाई जा रही है—छात्र मोटी रेत में कम्पोस्ट मिला रहे हैं। देखा इस मिट्टी पर कैसे टमाटर उगते हैं? पौधा अपनी पत्तियां, टहनियों, फलों के लिए सामग्री कहां से लेता है ? निर्जीव पदार्थों से। निर्जीव पदार्थ सजीव पदार्थों का पर्यावरण हैं।' ये सत्य बाल-आत्माओं में प्रकृति के रहस्यों के सम्मुख विस्मय की भावना जगाते हैं।

एक बार फिर मुझे वह प्राचीन सूक्ति याद आती है, जो अरस्तू (384-322 ई॰ पू॰) के मुंह से निकली बताई जाती है—चिन्तन विस्मय से ही आरम्भ होता है। प्रकृति का जो रहस्य खुला है उस पर विस्मय की भावना विचारों की तीव्र धारा के लिए एक प्रबल प्रेरक शक्ति है। जब बच्चों ने यह देखा कि रासायनिक पदार्थों के घोल पर बिल्कुल अलग-अलग तरह की वनस्पतियां—टमाटर, खीरा, जौ—उग रही हैं, तो उन्होंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी, 'यह पारदर्शी घोल मोटे-मोटे डण्ठलों में, फूलों में और रसदार फलों में कैसे बदल जाता है ?' 'सजीव पदार्थ कहां से आते हैं? सूरज तो

पौधे को हरियाली के टुकड़े देता नहीं—वह तो बस रोशनी और गर्मी देता है ?' 'एक ही घोल में से दो अलग-अलग चीजें—हरा खीरा और लाल टमाटर—क्यों उगती हैं ?' 'खीरा हरा क्यों है और टमाटर लाल क्यों—वे पास-पास ही तो उग रहे हैं ?' 'इन रंग-बिरंगे चूरों में क्या है ?' 'मिट्टी में डाले गए कम्पोस्ट से पौधे हरे क्यों हो जाते हैं ?'

बच्चों के बौद्धिक विकास के लिए सजीव और निर्जीव के सम्बन्धों को पहली बार अपनी आंखों से देखना-समझना कितना महत्वपूर्ण है ! 'सजीव पदार्थ कहां से आता है ?' 'सूरज निर्जीव पदार्थ में से सजीव पदार्थ कैसे 'बनाता' है ?' ऐसे प्रश्न पर मनन करते हुए बच्चा जीवन की महान पुस्तक को पढ़ने, जटिलतम प्रक्रियाओं के रहस्यों को जानने की तैयारी करता है।

'प्रकृति पुस्तक' पढ़ने को मैं बौद्धिक सक्रियता विकसित करने का साधन समझता था। मस्तिष्क में किसी बात का चित्र, बिंब, कल्पना बनना—यह तो चिन्तन प्रक्रिया की केवल शुरुआत ही है। 'कोई भी विधि अगर छात्र को केवल ज्ञान पचाना सिखाती है या निष्क्रियता का आदी बनाती है, तो वह बुरी विधि है, और जिस हद तक वह उसमें सृजनात्मक स्वावलम्बन विकसित करती है, उसी हद तक अच्छी है,' जर्मन शिक्षाशास्त्री डिस्टेर्वेग (1780-1866) ने लिखा था। मेरी चेष्टा सदा यही होती थी कि 'प्रकृति पुस्तक' का पढ़ना बच्चों के लिए प्रकृति के चित्रों और बिंबों को ग्रहण करना मात्र ही न हो, बल्कि यह सक्रिय चिन्तन का, संसार के सैद्धान्तिक संज्ञान का, वैज्ञानिक ज्ञान की प्रणाली का आरम्भ हो।

'अच्छे से अच्छा अंतर्य भी छात्रों की चेतना तक तभी पहुंचता है, जबकि वह उनकी अपनी गतिविधियों का अंग बनता है', सुविख्यात सोवियत मनोवैज्ञानिक कोस्त्यूक लिखते हैं।

गतिविधियां महज गतिविधियों के लिए या निजी रुचियों की पूर्ति के लिए न हों, बल्कि ऐसी हों, जो वैज्ञानिक ज्ञान के अन्तर्य को उजागर करें—यही सोवियत शिक्षाशास्त्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सक्रियता की एकता का सार है।

'प्रकृति में सब कुछ परिवर्तनशील है'—यह है 'प्रकृति पुस्तक' के अगले पृष्ठ का शीर्षक। हम कई बार इस विषय पर विचार करते हैं। शरद ऋतु के एक सुहावने दिन हम फलों के बाग में जाते हैं। सेबों और नाशपातियों के बोझ से टहनियों झुकी हुई हैं। मैं कहता हूं, 'बच्चो, जरा याद करो कि जाड़ों में हमारा बाग कैसा था—टहनियां नंगी थीं, तुषार से ढंकी हुई और तने के चारों ओर हिम के ढेर....और अब टहनियों पर कितनी सारी पत्तियां हैं, सेब और नाशपातियां धरती का रस पाकर बढ़ रहे हैं।'

दो महीने बाद हम फिर बाग में जाते हैं। अब वह कैसा हो गया? धरती पर पीली पत्तियों का नरम कालीन बिछा हुआ है, टहनियों पर थोड़ी-सी ही पत्तियां रह गई

हैं। पास-पास ही एक पुराना पेड़ और छोटी-सी जंगली पौध उग रहे हैं। यह सेब का पेड़ हमारे दादा-परदादा ने लगाया होगा। अब इसकी आधी टहनियां सूख गई हैं। सिर्फ कुछेक टहनियां ही हरी होती हैं और उन पर बड़े-बड़े फल लगते हैं और एक-दो साल तक यह पेड़ खड़ा रहेगा, फिर इसे काटना पड़ेगा। उधर जंगली सेब के पतले से तने पर हरी टहनी है—छात्रों ने पुराने पेड़ से इसमें कलम लगाई है। साल बीतेंगे और यह कलम पेड़ बन जाएगी, उस पर फूल खिलेंगे और सुनहरे सेब लगेंगे।

'बच्चो, ध्यान से अपने चारों ओर देखो, क्या कोई भी ऐसा पौधा है, जो हमेशा एक जैसा रहता हो ?'

बच्चों का जीवन अनुभव अभी अधिक नहीं है, किन्तु वे जानते हैं कि पौधे का जन्म होता है, उस पर फूल आते हैं, और फल लगते हैं। वे बताते हैं कि कैसे जमीन में से छोटा-सा अंकुर फूटता है, कैसे वह मोटे तने में बदल जाता है, कैसे कोंपलें खिलती हैं और पत्तियां निकलती हैं। बच्चे संसार में तेजी से, मानो छलांगों के रूप में होने वाले परिवर्तनों को देखकर विस्मित होते हैं। कल हम आड़ू के बाग में गए थे, नंगी टहनियां और काली कोंपलें देखी थीं। आज सुबह आए तो बिल्कुल दूसरी ही तस्वीर देखते हैं—टहनियां छोटे-छोटे गुलाबी फूलों से लदी हुई हैं। ये कोंपलें इतनी जल्दी, एक ही रात में क्यों खिल गईं ? पेड़ रात को सोता है या नहीं ? क्या पेड़ सोते हैं ? जब टहनी काटते हैं, तो क्या पेड़ को दर्द होता है ? पेड़ क्यों पुराना पड़ता है और सूख जाता है ?—इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढने के लिए मुझे काफी दिमाग लड़ाना पड़ा। लेकिन उत्तर पाकर प्रश्नों की नई बौछार होने लगी।

'प्रकृति पुस्तक' के इस पृष्ठ को हम तालाब के किनारे और खड्ड में, झाड़ियों के झुरमुट में और खेत में भी पढ़ते हैं। छिछले पानी में छोटे-छोटे टेडपोल तैर रहे हैं—बच्चे जानते हैं कि ये मेंढक बन जाएंगे। लेकिन यह कैसे होता है ? आखिर मछलीघर में छोटी से छोटी मछली भी मछली क्यों होती है और यह टेडपोल मेंढक जैसा बिल्कुल भी क्यों नहीं? हम फार्म में रेशम के कीड़ों को पालते हुए देखते हैं। खसखस के दाने जितने अण्डे में से पेटू कीड़ा निकलता है। वह सिर्फ शहतूत की पत्तियां ही खाता है—क्यों ? कीड़ा बड़ा होता जाता है और फिर कई बार केंचुली छोड़ता है—क्यों? फिर वह अपने चारों ओर रेशम का धागा लपेटता है, सुनहरी घर—कोया—बनाता है, उसमें छिप जाता है, वहां उसके साथ क्या होता है ? हम कुछ कोये लेकर खिड़की पर रख देते हैं, और थोड़ी देर बाद सुन्दर-सुन्दर तितलियों को निकलते देखते हैं। तितलियां अण्डे देती हैं—फिर से वही क्रम शुरू हो जाता है। कीड़ा बारीक रेशम धागा कैसे बनाता है ? कोया बनाने से पहले वह बहुत सारी शहतूत की पत्तियां क्यों खाता है।

प्रकृति के सक्रिय संज्ञान से सम्बन्धित बच्चों को जितनी अधिक गतिविधियां होंगी, उतनी ही अधिक गहराई से, अधिक समझ के साथ वे अपने चारों ओर के संसार को देखेंगे। मेरे छात्र हर दिन अपने चारों ओर ऐसी परिघटनाओं को देख रहे थे जिनकी ओर पहले उनका ध्यान नहीं जाता था। अब उन्होंने जीवन के ऐसे रूप देखे, जो उन्हें ज्ञात रूपों जैसे कदापि नहीं थे—अंधेरे, नम तहखाने में आलू पर सफेद धागे-से निकल आए हैं—यह क्या है, जड़ें या भावी डंठल ? पेड़ों के तनों के उन हिस्सों पर, जहां धूप नहीं पड़ती है हरी काई उग जाती है—वह सूरज से क्यों छिपती है ? काई के बीज क्यों नहीं होते ? उसकी उपज कैसे होती है ? सभी पेड़-पौधों पर फूल आते हैं, लेकिन काई पर तो नहीं आते। यह कैसी वनस्पति है ?

'प्रकृति पुस्तक' की और कुछ पंक्तियां पढ़कर बच्चे देखते हैं कि जो सजीव है, केवल वही परिवर्तनशील नहीं है। हम नदी के तट पर चट्टान को देखते हैं। बच्चों को उसमें दरारें दीखती हैं। पत्थर की एक परत टूटकर हाथ में चूरचूर हो जाती है। मतलब, पत्थर भी सदा पत्थर नहीं रहता ? बच्चों को याद आता है कि उन्होंने कुछ महीने पहले कहा था, 'पत्थर धूप में भी और तहखाने में भी एक-सा रहता है।' दिन को पत्थर गरम हो जाते हैं और रात को ठण्डे पड़ते हैं, उनमें दरारें पड़ती हैं, जिनमें पानी पहुंच जाता है। सो, पत्थर भी शाश्वत नहीं है।

'प्रकृति में सब कुछ परिवर्तनशील है'—इस विषय को समर्पित चिन्तन के पाठों का विश्लेषण करते हुए मैंने यह देखा कि बच्चा जितना अधिक जानता जाता है, दैनंदिन जीवन में वह जितनी अधिक नियमसंगतियों को देखता जाता है, जिनकी ओर पहले उसका ध्यान नहीं गया था, उतना ही अधिक जानने की गहरी इच्छा उसमें जागती है, उसकी ज्ञानेन्द्रियां चारों ओर के संसार की परिघटनाओं के प्रति उतनी ही अधिक संवेदनशील होती जाती हैं, ज्ञानेन्द्रियों और चिन्तन के बीच सम्बन्ध उतने ही सूक्ष्म होते हैं। सोवियत नृवंशविज्ञानी प्रोफेसर नेस्तुर्ख की रचनाओं में मैंने ऐसे शब्द पाए, जो मेरे विचार में बच्चे के बौद्धिक विकास की प्रक्रिया को समझने की कुंजी देते हैं—बचपन में मनुष्य निरन्तर नई-नई जानकारी पाता है और इसके फलस्वरूप इसी उम्र में उसमें संज्ञान की निरन्तर बढ़ती कामना जगाती है।

नई-नई जानकारी—पूर्ण बौद्धिक विकास के लिए यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण पूर्वाधार है और अगर किन्हीं कारणों से बच्चे को नई-नई जानकारी नहीं मिलती, तो क्या होता है ? बच्चा स्वयं जो कुछ देखता है, वह अभी जानकारी नहीं है। मानव समाज में शिक्षा इसी बात में निहित है कि बड़े छोटों को संसार के बारे में अपना ज्ञान देते हैं, बच्चों को वह नई-नई जानकारी देते हैं, जो उन्हें प्रभावित करती है।

मैं बड़े ध्यान से इस बात का पता लगाने लगा कि जन्म से लेकर स्कूल आने

तक बच्चा किस वातावरण में पला था। कई रोचक नियमबद्ध बातें देखने में आईं। अगर स्कूल से पहले के वर्षों में बच्चे को अकेला छोड़ दिया जाता है, अगर बड़े उसे वह नई-नई जानकारी नहीं देते, जिसके बिना सामान्य मानवीय परिवेश की कल्पना भी नहीं की जा सकती, तो ऐसी हालत में बाल-मस्तिष्क निष्क्रिय रहता है—उसमें कौतूहल और जिज्ञासा जाती रहती हैं, उदासीनता विकसित होती है। क्या संज्ञान की निरन्तर बढ़ती कामना ही वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण चिन्तन शक्ति नहीं है, जो बहुत हद तक बच्चे का बौद्धिक विकास निर्धारित करती है? प्रत्यक्षतः, यह ऐसा ही है।

पेत्रिक बचपन में सारा दिन अकेला ही रहता था। मां और नाना सुबह काम पर चले जाते थे और बच्चा घर पर सायबान के नीचे या बाड़ से घिरे लॉन में बैठा रहता था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद पड़ोसिन आकर देख जाती थी कि बच्चा ठीक-ठाक है न। इस तरह 2 से 5 साल तक बच्चे को देख-रेख हुई। यह किसी पेड़-पौधे की देख-रेख जैसी थी। बच्चे को ठीक खाना मिलता था, पहनने को कपड़े, जूते मिलते थे, लेकिन उसके जीवन में सबसे बड़ी चीज का अभाव था—उसे मानवीय संसर्ग प्राप्त नहीं था। पांच साल की उम्र में पेत्रिक बाहर गली में अपने हमउम्र बच्चों के साथ खेलने लगा। जब वह स्कूल जाने लगा, तब भी वह अपनी मातृभाषा के बहुत से बिल्कुल साधारण शब्दों का अर्थ नहीं समझता था। उसकी उदासीन दृष्टि, जो किसी भी वस्तु पर नहीं टिकती थी, मुझे किसी बूढ़े की दृष्टि लगती थी। इसका अर्थ यह था कि बच्चे के मस्तिष्क में चिन्तन का सजीव भूद्रव्य—कार्टेक्स की कोशिकाएं—निष्क्रिय था, क्योंकि तन्त्रिकातंत्र के गठन के सबसे महत्वपूर्ण काल—मस्तिष्क की बालावस्था के काल—में बच्चे को अपने चारों ओर के संसार से निरन्तर नई जानकारी नहीं मिल रही थी। इसलिए मैं सोचता था कि ऐसे बच्चे की शिक्षा में 'प्रकृति पुस्तक' बहुत बड़ी भूमिका अदा करेगी।

....हम अगला पृष्ठ खोलते हैं, 'जीवन बीज'। शरद ऋतु में बच्चे नाशपाती, सेब, आड़ू, आलूबुखारे के बीज इकट्ठे करते हैं। अपने अनुभव से वे जानते हैं कि बीजों में से ही पौधे उगते हैं। वसंत और गर्मियों में, जब वन-उपवन में स्तेपी में, कुंज-विहार में, जीवन का निखार आता है, पेड़-पौधों पर बीज पकते हैं और इस तरह उनका वंश जारी रहता है। हम घूमने जाते हैं। वसंती हवा पाप्लर के बड़े-बड़े पेड़ों से और घास में उग रहे कुकरौंधे के फूलों से रोयें उड़ाती है। बच्चे इन हल्के-हल्के रोयों में बीज पाते हैं। वे आश्चर्यचकित हो जाते हैं—प्रकृति के इन वनस्पतियों के बीजों कि कितनी चिन्ता की है—सूखी धरती पर तो रोयें टिकते नहीं, लेकिन जहां भी नमी होती है, वहीं रोयें चिपक जाते हैं, 'लंगर' डाल देते हैं और बीज में से अंकुर फूट निकलता है। बच्चे बड़ी लगन से 'प्रकृति पुस्तक' की नई-नई पंक्तियां पढ़ते जाते हैं,

वे देखते हैं कि कैसे कई पौधे अपने बीज 'दागते' हैं और जीवन के बीज चारों ओर उड़ जाते हैं, कैसे हवा में डोलते पोस्त के डोड़ें के छोटे-से छेद में से वे बीच उड़ जाते हैं, जो दूसरे बीजों से पहले पक जाते हैं। आवर्धक लेन्स में हम कई बीजों के वे कांटे और 'पंजे' देखते हैं, जिनसे वे लोगों के कपड़ों से या जानवरों के रोयों से चिपक जाते हैं। हम अनाज के बीज इकट्ठे करते हैं। बच्चे सोचते हैं—बीज में से पौधा कैसे उगता है ? बीज सजीव है या निर्जीव? इस पृष्ठ की कुछ रोचक पंक्तियां बच्चे जाड़ों में पढ़ते हैं—कुछ पौधे बर्फ पर अपने बीज फेंकते हैं, कुछ हफ्तों तक बर्फ में पड़े रहने के बाद ही उगते हैं।

ज्ञान-पिपास जितनी अधिक प्रबल होगी, उतनी ही अधिक लगन से बच्चे काम करेंगे, उतनी ही अधिक तरह वे श्रम के अनुसंधानात्मक स्वरूप को देख पाएंगे। चारों ओर के संसार से मिलने वाली जानकारी तब विशेषतः प्रबल प्रेरक शक्ति बन जाती है, जबकि हाथ सोचने में सहायता करते हैं, जब अपने श्रम में बच्चा उसे उद्विग्न करने वाले प्रश्नों का उत्तर पाने की, रहस्यों को खोलने की तथा जिस बात को अभी वह अनुमान से ही समझ रहा है, उसकी सचाई का प्रमाण पाने की चेष्टा करता है। जो बच्चा विवश किए जाने पर नहीं, बल्कि अपनी सच्ची इच्छा से मेहनती बना है, वही सच्चा चिन्तक बनता है। बच्चों के लिए श्रम करने की इच्छा का स्रोत सर्वप्रथम कुछ जान पाने की अभिलाषा ही है। अगर इस अभिलाषा को विकसित किया जाता है, तो बच्चों में श्रम में लगाव सुदृढ़ होता जाता है। शिक्षण कार्य में जिसे श्रम से लगाव कहा जाता है, वह वास्तव में जिज्ञासा, कौतूहल और बच्चे की आत्म-सम्मान की भावना का मिश्रण है।

'प्रकृति पुस्तक' के एक सबसे रोचक पृष्ठ 'जीवन का स्रोत— सूरज' को समर्पित हमारी 'यात्राओं' की बच्चों की चेतना और भावनात्मक स्मृति पर गहरी छाप पड़ी। गर्मियों की दुपहरी में हम खेत में, फलों के बाग में और अंगूर-वाटिका में जाते हैं। हमारे सामने गेहूं और सूरजमुखी के खेत हैं, अंगूर के गुच्छे, पीले पड़ते बबूगोशे और पकते टमाटर हैं। धरती की उर्वरता के इन वरदानों में बच्चे सूरज का प्रकाश और उष्मा देखते हैं। इन्सान को जो कुछ भी चाहिए वह उसे सूरज की बदौलत ही धरती देती है। बहुत से प्रेक्षणों और तुलनाओं से तथा कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करके बच्चे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, जो उन्हें विस्मित करता है और विचारों की एक नई उड़ान की प्रेरणा देता है। बच्चे गौर से अपने चारों ओर देखते हैं, हर वस्तु की उत्पत्ति के बारे में सोचते हैं। और जब वे यह पाते हैं कि सूरज ही जीवन का एकमात्र स्रोत है, तो उनकी विस्मय भावना और गहरी हो जाती है।

गेहूं, आलू, सूरजमुखी—कोई भी चीज सूरज के बिना नहीं हो सकती थी। गोश्त, दूध, मक्खन भी नहीं होता, क्योंकि पशु भी वही खाते हैं, जो सूरज के प्रकाश और गर्मी से धरती पर उगता है। आश्चर्यचकित हो बच्चे पूछते हैं, 'यह सूरज क्या है? वह गर्मी कहां से आती है, जो सूरज हमें भेजता है ? जाड़ों में सूरज की गर्मी इतनी कम क्यों होती है ? क्या वह बुझ तो नहीं जाएगा ? अगर सूरज बुझ जाएगा, तो क्या होगा ?'

'प्रकृति पुस्तक' पढ़ते हुए बच्चों के मन में जो प्रश्न उठते हैं, वे उस ज्ञान-शिखर की ओर विचारों की तेज उड़ान की शुरुआत हैं, जहां से कुछ बरस बाद बच्चे जीवन के रहस्यों की जटिलता देख पाएंगे। मैं यह ख्याल रखता था कि बच्चे जिज्ञासु अन्वेषक और संसार के खोजकर्त्ता हों, कि जीवन के सत्यों को वे अध्यापक द्वारा दिखाए जाने पर तैयार रूप में ही न देखें, बल्कि वे इन सत्यों को अपने परिवेश की ज्वलंत चित्रों के रूप में देखें और इनसे उनका हृदय स्पंदित हो उठे। बच्चे ने अपने चारों ओर के संसार में जो नई चीज देखी है, जो खोज की है, वह अगर उसे उत्तेजित करती है, तब जीवन के सत्य उसकी निजी धारणाएं बन जाते हैं, जिनके प्रति वह जीवन भर निष्ठावान रहता है। कुछ जान पाने की, संज्ञान की खुशी तथा प्रकृति कि भव्यता और उसकी नियमसंगतियों की सुघड़ता के सम्मुख विस्मय- विमुग्धता—यही पक्की याददाश्त का स्रोत है।

मैं बौद्धिक अनुभूतियों को ही कुछ बच्चों की स्मरण-शक्ति विकसित और पक्की करने का प्रमुख साधन समझता था। वाल्या को कुछ भी याद नहीं रहता था। यह आवश्यक था कि बच्ची का हृदय अपने चारों ओर के संसार के चित्रों पर विस्मय-विमुग्धता की भावना से ओत-प्रोत हो। कुछ दिनों तक हम खेत और जंगल में, नदी के तट पर, बाग और मधुवाटिका में जाते रहे। वहां हमने 'प्रकृति पुस्तक' का नया पृष्ठ पढ़ा, जिसका नाम था, 'सभी सजीव पदार्थ अपने परिवेश के अनुसार अपने को ढालते हैं।' मैंने बच्चों का ध्यान इस ओर दिलाया कि कुछ फूल दोपहर की गर्मी में अपनी पंखुड़ियां समेट लेते हैं और शाम को खोल लेते हैं; कैसे वसंत में सबसे पहले उगने वाले स्नोड्रॉप के फूल का कोमल डण्ठल पुरानी पत्तियों की परत को तीर की तरह चीरता हुआ सिर उठाता है; कैसे मधुक्खियां छत्ता बनाती हैं और कैसे उसके खानों में शहद भरती हैं; कैसे अंगूर की जड़ें तीन मीटर की गहराई तक पहुंचकर जमीन में से नमी लेती हैं; कैसे बेदमदजनूं की टहनी पानी के पास जमी काई में [illegible] जड़ें छोड़ती है और उसमें से पेड़ उग आता है।....इन सब खोजों से बच्ची के मन में [illegible]मय उत्तेजना हुई। उसकी आंखों में उदासीनता की जगह अब जिज्ञासा की [illegible] दिखने लगी। सदा चुप रहने वाली वाल्या बोल उठी, वह पूछने लगी, 'मधुमक्खी

को कैसे पता चलता है कि उसका घर कहां है? वह अपना छत्ता कैसे ढूंढती है? स्नोड्राम्प के फूल को ठण्ड नहींलगती, क्या—जब वह खिलता है, तब तक पेड़ों के तले कहीं-कहीं बर्फ बची होती है ?' जहां प्रश्न है, वहां विचार भी है, और जहां विचार है, वहां स्मृति अपने परिवेश के सजीव चित्रों को, प्रकृति की नियमबद्धताओं के ज्ञान को संजोए रखती है।

'प्रकृति पुस्तक' के निम्न पृष्ठ हमने एक के बाद एक पढ़े, 'वनस्पति जगत और जीव जगत', 'पानी की बूंद की यात्रा', 'मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग करता है', 'वसंत में प्रकृति का जागरण', 'गर्मियों में सबसे लम्बे दिन', 'जंगल, खेतों और मैदानों में वसंती फूल', 'गर्मियों के फूल', 'शरद की सन्तान—गुलदाउदी के फूल', 'तालाब में जीवन', 'शरद ऋतु के अन्तिम सुहावने दिन', 'प्रकृति जाड़े की प्रतीक्षा में', 'जाड़े की पहली सुबह', 'शीतकालीन वन में पक्षियों का जीवन', 'गेहूं की बालियां', 'मधुमक्खियों का जीवन', 'अबाबीलें घोंसले बनाती हैं', 'काली घटाएं आ रही हैं', 'जाड़ों में फूलों की दुनिया', 'जंगल नमी बनाए रखता है', 'सारस आ गए', 'पंछी गरम देशों को जाने की तैयारियां कर रहे हैं', 'गर्मियों की बारिश के बाद धूप खिली है', 'नदी के ऊपर इन्द्रधनुष', 'सूरजमुखी के फूल खिले', 'आकाश पर तारे', 'मिट्टी का जीवन', 'हरी पत्ती—सूरज का भंडारघर', 'खुंबियां और काई', 'कैसे छोटे से बीज से बड़ा बलूत वृक्ष उगता है' तथा अन्य।

'बुरा अध्यापक बच्चों को सत्य से परिचित कराता है, अच्छा अध्यापक उन्हें सत्य खोजना सिखाता है,' डिस्टेर्वेग ने लिखा था। आजकल के जमाने में संसार की परिघटनाओं के प्रति अनुसंधानात्मक रुख का महत्व बहुत बढ़ गया है। यह बहुत जरूरी है कि छात्रों के सोचने-समझने का ढंग खोज और अनुसंधान पर आधारित हो, कि वैज्ञानिक सत्य को जानने-समझने से पहले छात्र तथ्यों को देखें, उनकी परस्पर तुलना और विश्लेषण करें। प्रकृति की परिघटनाओं और चित्रों का प्रेक्षण करते हुए बच्चा चिन्तन के रूपों और प्रक्रियाओं में दक्षता पाता है, नई-नई अवधारणाओं का उसे पता चलता है, और ये अवधारणाएं उन ठोस कार्य-कारण सम्बन्धों की सार्थकता लिए होती है, जिसे जिज्ञासु अन्वेषक अपनी तीव्र दृष्टि से देख लेता है। 'प्रकृति पुस्तक' पढ़ते हुए बच्चों में एक विशेष गुण विकसित हुआ —अमूर्त अवधारणाओं से काम लेते हुए बच्चे मन ही मन उन बिंबों और चित्रों का ख्याल करते थे, जिनके आधार पर ये अवधारणाएं निरूपित हुईं।

जब मेरे छात्र किशोर और फिर तरुण हुए, तो मुझे यह जानने की विशेष उत्सुकता थी कि संसार के सक्रिय संज्ञान का उनके सामान्य बौद्धिक विकास पर, उनके बौद्धिक श्रम के ढंग और स्वरूप पर तथा उनकी बौद्धिक अभिरुचियों पर क्या

प्रभाव पड़ा है। मैंने यह पाया कि मेरे छात्रों के बौद्धिक जीवन में जिज्ञासा का विशेष स्थान है। वे सब कुछ जानना-समझना चाहते हैं, उनके चारों ओर जो कुछ भी है, वह सब उनकी भावनाओं और विचारों को प्रभावित करता है। किशोरावस्था में और यौवन के पहले वर्षों में भी मेरे छात्रों के बौद्धिक जीवन का एक लक्षण यह था कि वे परिघटनाओं और वस्तुओं को उनके परस्पर सम्बन्ध में देखते थे। जो कुछ भी अस्पष्ट होता, उन्हें समझ में न आता, उसे वे पुस्तकें पढ़कर जानने-समझने का प्रयत्न करते थे। पुस्तकें उनके लिए ज्ञान का स्रोत और आत्मिक आवश्यकता बन गईं।

समाज की ओर

प्रकृति मानव-निर्माण का फलप्रद स्रोत है। परन्तु प्रकृति के संज्ञान के साथ तो बुद्धि, भावनाओं, दृष्टिकोण और धारणाओं का गठन केवल आरम्भ ही होता है। मनुष्य समाज में जीता है और सारतः उसका सारा जीवन वे सम्बन्ध ही हैं, जो वह दूसरे लोगों के साथ स्थापित करता है। मेरी चेष्टा यह थी कि प्राथमिक विद्यालय में चार वर्षों तक पढ़ने के दौरान बच्चे धीरे-धीरे एक महत्वपूर्ण सत्य को पूरी तरह समझ लें, आत्मात कर लें—मनुष्य इसी बात की बदौलत जीता है कि सैंकड़ों, हजारों दूसरे लोग उसकी भौतिक और आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं; सैकड़ों, हजारों लोगों के लिए भौतिक और आत्मिक सम्पदा का सृजन किए बिना समाज में नहीं रहा जा सकता। श्रम में, सामाजिक सम्बन्धों में मनुष्य का नैतिक स्वरूप, उसकी आत्मिक संस्कृति, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण बनते हैं। शिक्षक का एक महत्वपूण कार्यभार यह है कि बच्चे अपने मनोमस्तिष्क से यह समझें और अनुभव करें कि भौतिक और आत्मिक सम्पदा के सृजन के जरिए ही हमारे समाज में इन्सान के प्रति इन्सान का रुख, नागरिक का सामाजिक रूप व्यक्त होते हैं।

अपने अनुभव से मैंने यह पाया कि छोटे बच्चे वस्तुओं की समझ के जरिए ही सामाजिक सम्बन्धों को समझने लगते हैं और इस प्रक्रिया में उनके मन में उठने वाले इस प्रश्न का बहुत महत्व होता है, 'क्या चीज कहां से आती है ?'

हमने स्कूल के भोजनालय में खाना खाया, बर्तन धो दिए। ठहरो, बच्चो, अभी नहीं जाओ। आओ, थोड़ी देर और बैठे रहें। जरा सोचें कि आज जो चीजें हमें मिलीं वे कहां से आईं ? यहां भोजनालय में हमारे लिए जो कुछ रखा हुआ है, वह सब कहां से आया है ? बच्चे वे सारी चीजें गिनाते हैं, जो आज उन्होंने खाईं थीं—रोटी, गोश्त, आलू, दूध, मक्खन, अण्डे....खाना भट्ठी में पकाया गया, जिसे अभी हाल ही में इन ईंटों से बनाया गया है। भट्ठी में कुर्सियां जलाया जाता है, कोयला खान से आया है। हम कुर्सियों पर बैठे हैं। कोयला और मेजें धातु की नालियों और प्लास्टिक से बनी हैं।

'सब कुछ गिना दिया ?' मैं पूछता हूं।

'सब कुछ,' बच्चे कहते हैं।

'जरा गौर से देखो, अभी कुछ चीजों पर तुम्हारा ध्यान नहीं गया....'

कोने में फ्रिज रखा है, वह बिजली के बिना नहीं चल सकता। दीवारों पर बिजली के बल्ब जल रहे हैं। क्या इन चीजों की ओर बच्चों का ध्यान जाएगा।

बच्चे यह सब देख लेते हैं। आश्चर्यचकित होकर वे इस सत्य का बोध पाते हैं कि अगर बिजली न होती तो घर पर रहना और स्कूल में पढ़ना कितना कठिन होता।

ये सब चीजें कहां से आईं, जिनके बिना हम नहीं रह सकते ?

इस प्रश्न से सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र, श्रम सम्बन्धों की हमारी 'यात्राएं' आरम्भ हुईं। हमारा हर कदम एक नई खोज था। बच्चों ने देखा—हमारी मेज पर रोटी हो, इसके लिए प्रायः सभी बच्चों के माता-पिता को श्रम करना चाहिए। लेकिन यही काफी नहीं। उन मजदूरों को भी श्रम करना चाहिए, जो ट्रैक्टर, हल, कम्बाइनें बनाते हैं—इन मशीनों के बिना तो अन्न नहीं उगाया जा सकता। खनिकों को भी श्रम करना चाहिए, क्योंकि कोयले के बिना लोहा नहीं गलाया जा सकता, जिससे ये मशीनें बनती हैं। इस सत्य की खोज करके बच्चों के मन में श्रमिकों के प्रति गहरे आदर की भावना जागी।

दूसरी वस्तुओं को पास से देखने पर हम और कई आश्चर्यजनक खोजें करते हैं। हमारी मातृभूमि के दूर-पास के शहरों और गांवों में रह रहे विभिन्न पेशों के हजारों लोग श्रम करते हैं, तब कहीं कोयला धरती के गर्भ में से हमारे स्कूल के भोजनालय में पहुंचता है। सैकड़ों लोगों को हमारे लिए मेजें बनाने, ईंटें बनाने के लिए श्रम करना चाहिए।

इसी तरह हम इस बात पर सोच-विचार करते हैं कि हमारे कपड़े कहां से आए, कागज कैसे बनता है, किसने हमारे लिए किताबें और फिल्में बनाई हैं, कौन संगीत रचता है। हर दिन, हर सप्ताह, हर मास हम धीरे-धीरे सामाजिक सम्बन्धों के जटिल अन्तर्ग्रंथन को देख रहे थे, समझ रहे थे। हम वस्तुओं के संसार के जरिए इन्सान को जान-समझ रहे थे। वस्तुएं, भौतिक और आत्मिक सम्पदाएं मनुष्य को देखने, समझने, अनुभव करने में हमारी सहायता कर रही थीं। नानबाई स्तेपान मक्सीमोविच को बच्चों ने काम करते देखा था; अब वह उनके लिए एक साधारण श्रमिक नहीं थे, जो अपने श्रम से रोजी-रोटी कमाते थे, बल्कि जीवन के सृजनकर्त्ता भी थे, जिनके बिना सैकड़ों, हजारों लोग नहीं रह सकते थे। हर हफ्ते हम कम्बाइन और ट्रैक्टर चालकों, खरादियों और फिटरों तथा दूसरे लोगों से मिलते थे, जो सैकड़ों हजारों लोगों के लिए भौतिक और आत्मिक सम्पदा का सृजन करते हैं। वसंत में एक

दिन हम क्रेमेन्चूग पन-बिजलीघर देखने गए। वहां हमने बिजली बनते देखी, वहां काम करने वाले लोगों से मिले।

बच्चों की नैतिकता के लिए यह बात बहुत मानी रखती है कि जिन लोगों से वे मिलते हैं, उनका अपने श्रम के प्रति क्या रुख है। बाल-हृदयों पर इस बात का गहरा प्रभाव पड़ा कि देखने में साधारण-सी वस्तुएं जैसे रोटी, गोश्त, दूध, चीनी आदि बनाने वाले लोग अपने श्रम पर गर्व करते हैं, यह समझते हैं कि इस तरह वे समाज की सेवा कर रहे हैं। यह सत्य कि श्रम मनुष्य को ऊंचा उठाता है, उसे भरे-पूरे सुख की अनुभूति प्रदान करता है, अब बच्चों के लिए कोई कोरी बात नहीं थी, बल्कि स्वयं जीवन का सार था। बचपन में ही वे इस बात के कायल हो गए थे कि समाज के हित में ईमानदारी से श्रम करते हुए ही वे अपनी शक्ति को, अपनी सृजन-क्षमताओं को मुखरित कर सकते हैं।

एक हजार पहेलियां

स्कूल का एक प्रमुख कार्यभार है छात्रों को सृजनात्मक विचारों वाले व्यक्ति बनाना, जिनमें जिज्ञासा और अन्वेषण की ललक हो। बचपन की कल्पना मैं चिन्तन-शिक्षा के काल के रूप में करता हूं और शिक्षक को ऐसा व्यक्ति मानता हूं, जो बड़ी सावधानी और जतन से अपने शिष्यों के चरित्र तथा आत्मिक जगत का निर्माण करता है। बच्चे के मस्तिष्क को विकसित और सुदृढ़ करने की चिन्ता, यह चिन्ता कि संसार को प्रतिबिंबित करने वाला यह दर्पण सदा संवेदनशील और ग्रहणशील बना रहे—यह शिक्षक का एक सबसे बड़ा कर्तव्य है। जिस प्रकार मांसपेशियां शारीरिक अभ्यास से, कठिनाइयों को लांघते हुए विकसित और मजबूत होती हैं, उसी प्रकार मस्तिष्क के विकास के लिए भी श्रम करने की, उस पर जोर डालने की आवश्यकता होती है।

बच्चे का मस्तिष्क कोशिकाओं की ऊर्जा के आवेग की आन्तरिक प्रक्रिया के फलस्वरूप ही विकसित और सुदृढ़ होता है। जब बच्चा वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच कार्य-कारण, कालगत या क्रियागत आदि तरह-तरह के सम्बन्ध देख पाता है, तभी उसके मस्तिष्क की कोशिकाओं में ऊर्जा का यह आवेग आता है। बच्चा जिन सम्बन्धों को नहीं समझता है, उनके बारे में सोच-विचार करता है, उनके सार को खोजता है, उसे समझने की कोशिश करता है, तब उसके मस्तिष्क की कोशिकाओं में मानो उनकी 'सूक्ष्म मांसपेशियां' तन जाती हैं और इनकी शक्ति ही बुद्धि होती है। मैं अपना कार्यभार यह समझता था कि 'तनी हई सूक्ष्म मासंपेशियों' में हर बार कई शक्ति का प्रवाह हो। यह जटिल परिघटना ही मस्तिष्क के तथा उनके सर्वाधिक

महत्वपूर्ण गुण—तीव्र, जिज्ञासु और प्रेक्षणकारी बुद्धि के गठन, सुदृढ़ीकरण और विकास की प्रक्रिया है।

मानव मस्तिष्क का कार्य अनवरत होता है। चारों ओर के संसार से आने वाले सूचना प्रवाह से कार्टेक्स की कोशिकाओं का कभी एक और कभी दूसरा समूह उत्तेजित होता है। विचार पलक झपकते ही एक विषय से दूसरे पर जाता है, विचार का यह अन्तरण चिन्तन प्रक्रिया की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण नियमसंगति है। क्षणभर में ही विचार को दूसरे विषय पर ले जाने की क्षमता अच्छी बौद्धिक क्षमता का प्रमुख पूर्वाधार है। विचार का अन्तरण के अनुसार ही मस्तिष्क में कोशिकाओं का कभी एक समूह और कभी दूसरा उत्तेजित होता है। बच्चा सोच सकता है—इसका अर्थ यह है कि एक निश्चित समय के दौरान (उदाहरणतः, एक सेकंड में) विचार अनेक बार एक विषय पर जाता है—इतनी तेजी से कि स्वयं सोचने वाले का इस अन्तरण का कोई आभास नहीं होता और उसे लगता है, मानो वह एक ही समय पर तालाब के क्षेत्रफल के बारे में भी तथा पहले और दूसरे नलों के बारे में भी, जिनसे समय की एक इकाई में अलग- अलग मात्रा में पानी तालाब में गिरता है, सोच रहा है। दूसरे शब्दों में छात्र एक साथ ही विभिन्न वस्तुओं और परिघटनाओं पर विचार करता है, उनकी तुलना और विश्लेषण करता है। हमारा कार्यभार यह है कि प्रत्येक बच्चे में मस्तिष्क की यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षमता विकसित हो।

हाजिरजवाबी और समझदारी परखने के लिए बच्चों से पूछे जाने वाले सवाल एक तरह से मस्तिष्क की आन्तरिक ऊर्जा को क्रियाशील करने, 'बौद्धिक मांसपेशियों' के सक्रिय बनाने के लिए अभ्यास होते हैं। हमारे चारों ओर की वस्तुएं और परिघटनाएं ही ये सवाल पेश करती हैं। मैं बच्चों का ध्यान किसी परिघटना की ओर दिलाता था और यह कोशिश करता था कि बच्चे उसमें छिपे सम्बन्धों को देखें, कि उनके मन में इन सम्बन्धों के सार का पता लगाने, सत्य को समझने की इच्छा जागे। सवालों की कुंजी सदा मनुष्य के श्रम में, सक्रिय गतिविधि में ही होती है। दिमाग पर जोर डालते हुए, वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करते हुए बच्चा निश्चित कार्य करता है। बच्चों के चारों ओर के संसार में हजारों सवाल हैं। सदियों से लोग इन्हें सोचते और पहेलियों के रूप में बूझते आए हैं। एक दिन आराम करते समय बच्चों से मैंने इस तरह का पहला सवाल पूछा—

'एक आदमी को भेड़िये, बकरी और गोभी को नदी पार ले जाना है। नाव में वह अपने साथ सिर्फ दो 'सवारियां' ले जा सकता है। भेड़िये और बकरी को या बकरी और गोभी को न तो एक साथ ले जाया जा सकता है, न छोड़ा जा सकता है। आदमी जितनी बार चाहे नदी के आर-पार जा सकता है। बताओ, वह कैसे सबको

ार पार ले जाए कि सब कुछ सही-सलामत रहे ?'

ऐसी सैकड़ों पहेलियां हैं। इस तरह के सवालों को हल करने में बच्चों को बड़ी दिलचस्पी होती है। सभी बच्चे सोचने लगे कि कैसे 'सवारियों' को उधर ले जाया जाए, ताकि भेड़िया बकरी को या बकरी गोभी को न खा जाए। हम तालाब के किनारे बैठे हैं। बच्चे रेत पर नदी बनाते हैं, छोटे-छोटे कंकड़ भेड़िया, बकरी, और गोभी बन गए। हो सकता है, सभी बच्चे पहेली न बूझ सकें। लेकिन बच्चे जो दिमाग पर जोर लगाते हैं, यह उनकी बौद्धिक शक्ति के विकास का अनुपम साधन है।

ऐसे सवालों-पहेलियों को हल करना शतरंज के खेल के समय बौद्धिक श्रम के समान है—दोनों में आगे कुछ चालों को ध्यान में रखना होता है। मैंने यह सवाल सात वर्षीय बच्चों को दिया, जब उन्हें पहली कक्षा में पढ़ते हुए कुछ ही दिन हुए थे। कोई दस मिनट बाद तीन बच्चों, शूरा, सेर्योझा और यूरा ने सवाल हल कर लिया। इनके विचारों की तेजी से बहती धारा के साथ ही स्मरण-शक्ति भी तीव्र है। 15 मिनट में प्रायः सभी बच्चों ने सवाल हल कर लिया, लेकिन वाल्या, नीना, पेत्रिक और स्लावा कुछ नहीं सोच पा रहे थे। मैं देख रहा था कि बच्चों की चेतना में विचारों का क्रम मानो टूट जाता है। बच्चे सवाल का अर्थ समझते थे, सवाल में जिन वस्तुओं और परिघटनाओं की चर्चा थी, उनकी वे स्पष्टतः कल्पना कर रहे थे, लेकिन जैसे ही वे कोई अनुमान लगाते, उनकी चेतना में बना चित्र धुंधला पड़ जाता, जो अभी-अभी इतना स्पष्ट था, दूसरे शब्दों में बच्चों को क्षणभर पहले जो बात याद थी, उसे वे भूल जाते थे।

मैं बच्चों के लिए नई-नई पहेलियां ढूंढता था, सर्वप्रथम इस आशा से कि मेरे मन्दबुद्धि छात्रों के मन में पहेलियों के अन्तर्य, कथानक के प्रति रुचि जाग जाए। कुछ दिनों बाद मैंने यह पहेली बूझी, 'सैनिकों की एक छोटी-सी टुकड़ी को नदी पार करनी थी। पुल टूटा हुआ था और नदी काफी गहरी थी। अब क्या किया जाए ? अचानक कमांडर को नदी के किनारे दो लड़के दिखे, जो एक छोटी-सी नाव में खेल रहे थे। पर नाव इतनी छोटी थी कि उसमें सिर्फ एक सिपाही या दो लड़के ही नदी पार कर सकते थे। परन्तु फिर भी सब सिपाही इस नाव में ही नदी के पार पहुंच गए। बताओ कैसे ?'

मैं फिर देखता हूं कि बच्चे कैसे सोचते हैं। वे फिर रेत पर चित्र बनाते हैं, स्मृति में कुछेक 'शतरंज की चालें' बनाए रखने की कोशिश करते हैं। नीना, स्लावा और पेत्रिक उलझन में हैं। वाल्या की आंखें चमक उठती हैं—उसने पहेली बूझ ली है।

मैं मन्दबुद्धि छात्रों के साथ अलग से सवाल हल करने लगा। उनके लिए मैंने ऐसी आसान-सी पहेलियां ढूंढीं, जिनकी सहायता से वे गिनती अच्छी तरह समझ

सकें और अंकों के बीच परस्पर सम्बन्ध स्थापित कर सकें। यह देखिए ऐसी कुछ पहेलियां–

1. **बाज और पेड़**–बाज उड़ते उड़ते थक गए, उन्होंने सोचा, चलो पेड़ पर बैठा जाए। नीचे कुछ पेड़ थे, अगर एक-एक बाज एक-एक पर बैठता है, तो एक बाज बच जाता है और अगर एक पेड़ पर दो-दो बाज बैठें, तो एक पेड़ बच जाता है। बताओ, कितने बाज हैं और कितने पेड़ हैं ?
2. **दो गड़रिये**–दो गड़रिये भेड़ें चरा रहे थे। एक गड़रिया दूसरे से बोला, 'अगर तू मुझे एक भेड़ दे दे, तो हमारे पास एक जितनी भेड़ें हो जाएं' दूसरा गड़रिया बोला, 'अगर तू मुझे एक भेड़ दे दे, तो मेरे पास तेरे से दुगनी भेड़ें हो जाएं।' बताओ, दोनो गड़रियों के पास कितनी-कितनी भेड़ें थीं ?
3. **कितने हंस**–हंसों का झुण्ड उड़ता जा रहा था, सामने से एक दूसरा हंस का जोड़ा आ रहा था। वह बोला, 'नमस्ते, सौ हंसों !' हंसों ने जवाब दिया, 'नहीं, हम सौ नहीं हैं। अगर हम जितने हैं, उतने ही हमारे साथ आ मिलें और हमारे से आधे और आ जाएं, फिर हमारे से चौथाई और आ जाएं और फिर तुम भी आ मिलो, तब हम सौ हो जाएंगे।' बताओ, कितने हंस थे ?
4. **सिर और पैर**–अहाते में मुर्गियां दाना चुग रही हैं और खरगोश उछल-कूद रहे हैं, कुल 10 सिर और 24 पैर हैं। बताओ कितने खरगोश और कितनी मुर्गियां ?
5. **कितनी गेंदें हैं ?**–एक झोले में 10 पीली गेंदें हैं, 10 लाल, 5 हरी और 5 काली। आंखें मूंदकर झोले में से कम से कम इतनी गेंदें निकालो कि उनमें एक ही रंग की सात गेंदें हों।

ऐसी पहेलियों बौद्धिक अभ्यास का अद्वितीय साधन हैं। हर सवाल को हल करते हुए पहले की और आगे की 2 से 4 तक 'शतरंजी चालें' याद रखनी होती हैं। यह काम शुरू करने के लिए कोई छह महीने बाद वाल्या और स्लावा सवाल हल करने लगे, पेत्रिक और नीना अभी कुछ नहीं कर पाते थे। वे उन बातों को अपनी स्मृति में नहीं बनाए रख सकते थे, जिनके बिना अगली 'शतरंजी चाल' नहीं चली जा सकती।

इसका क्या कारण है ? प्रत्यक्षतः, कुछ बच्चों में तुरन्त ही एक विषय से दूसरे विषय पर विचार ले जाने की क्षमता नहीं होती। इस क्षमता की अभिव्यक्ति इस बात में होती है कि बच्चा सवाल के सभी तत्वों को स्मृति में बनाए रख सकता है, अपने विचारों में एक साथ कुछेक 'शतरंजी चालों' को देख सकता है। कुछ बच्चों में

कार्टेक्स की कोशिकाओं की यह क्षमता क्यों नहीं प्रकट होती—यह दूसरा प्रश्न है। यह आवश्यक नहीं कि ऐसा जन्मजात विशिष्टताओं के ही कारण हो, परन्तु फिर भी इस कारण को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। मेरे प्रेक्षण में इस बात की पुष्टि हुई कि अगर विचारों का क्रम सहसा टूट जाता है, अगर बच्चा एक ही क्षण में अपनी कल्पना में वह नहीं देख पाता, जो इस क्षण उसे स्पष्टतः नजर आता है और जो क्षणभर पहले स्पष्टतः नजर आ रहा था, तो इसका अर्थ है कि वह सोच नहीं सकता, उसके लिए कुछेक वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करना मुश्किल है।

मैं वाल्या, पेत्रिक और नीना जैसे मन्दबुद्धि बच्चों के चिन्तन का अध्ययन किसी सैद्धान्तिक उद्देश्य से नहीं कर रहा था। मेरा लक्ष्य यह था इन बच्चों के लिए बौद्धिक श्रम आसान बनाना, उन्हें पढ़ाई करना, अध्ययन करना सिखाना, प्रेक्षणों से इस बात की पुष्टि हुई कि सर्वप्रथम बच्चों को अपने विचारों में एक साथ कुछेक वस्तुओं, परिघटनाओं, घटनाओं की कल्पना करना, उनके बीच सम्बन्धों को समझना सिखाना चाहिए। बच्चे को एक वस्तु के सार और उसकी आन्तरिक नियमबद्धताओं की गहराई से देखते हुए धीरे-धीरे कुछेक वस्तुओं को एक साथ मानो दूरी से देखना सीखना चाहिए। मन्दबुद्धि बच्चों के चिन्तन का प्रेक्षण करते हुए मेरा यह विश्वास पक्का हो रहा था कि उदाहरणतः सवाल को न समझ सकना, ठोस वस्तुओं से हटकर अमूर्त रूप से न सोच सकने का परिणाम है। बच्चों को अमूर्त अवधारणाओं के माध्यम से सोचना सिखाना चाहिए। वाल्या को अपनी कल्पना में भेड़िये का बिंब बनाने की कोई जरूरत नहीं है, उसका विचार इस बात पर नहीं रुकना चाहिए कि कैसे बकरी गोभी की ओर मुंह बढ़ा रही है। ये सब बिंब उसकी कल्पना में अमूर्त होने चाहिए। परन्तु अमूर्त बिंब की कल्पना करने के लिए ठोस बिंब की गहरी समझ होनी चाहिए। हमें यह समझना चाहिए कि बच्चा जब सोचता है, तो उसके मस्तिष्क में क्या होता है। बच्चों में चिन्तन-क्षमता विकसित करनी चाहिए, अन्यथा वे स्मरण शक्ति पर जोर देंगे, रटेंगे, जिससे चिन्तन-शक्ति और भी कमजोर होती है। मैंने यह कल्पना करने की कोशिश की कि मेरे छात्रों के दिमाग में क्या प्रक्रियाएं होती हैं। हो सकता है मेरी कल्पना में इन प्रक्रियाओं का जो चित्र बना, वह स्थूल हो, लेकिन मेरे ख्याल में वह काफी हद तक वास्तविकता को प्रतिबिंबित करता है। जब बच्चे का विचार एक विषय से, बिंब से दूसरे पर जाता है, तो मस्तिष्क की कोशिकाओं का एक नया समूह उत्तेजित होता है। विचार केवल तभी आगे ही आगे बढ़ता जाएगा, जबकि उत्तेजना के नए केन्द्र और इससे पहले के केन्द्र के बीच वे तार नहीं टूट जाते, जिनसे दोनों ओर सूचना, संकेत आते-जाते हैं—नया बिंब मानो पहले प्राप्त बिंब को अपने

बारे में बताता है और पहले प्राप्त विंव, जो अब मस्तिष्क में पक्का हो रहा है, नए बिंब को अपना आभास दिलाता है; क्षणभर में ही अनेक वार यह आदान-प्रदान होता है; यह प्रक्रिया ही वह वात है, जिसके बारे में हम कहते हैं—बच्चा सोच रहा है, समझ रहा है। उत्तेजना के केन्द्रों के बीच ये तार जितने सुदृढ़ होंगे, विचार उतना ही गहरा होगा; तथा बच्चे अपनी बुद्धि में एक साथ जिन वस्तुओं और परिघटनाओं को देख सकते हैं, उनकी परिधि उतनी ही व्यापक होगी।

इन तारों की सुदृढ़ता के स्रोत प्रत्यक्षतः मस्तिष्क के सजीव भूद्रव्य की प्रकृति में, मस्तिष्क में होने वाली अतिसूक्ष्म जैवरासायनिक प्रक्रियाओं में भी निहित हैं; और जैसा कि स्कूल से पहले के वर्षों में बच्चों के प्रेक्षण से पता चलता है, उस परिवेश में भी ये स्रोत निहित हैं, जिन पर तंत्रिका- तंत्र की बालावस्था में बौद्धिक क्षमताओं का गठन निर्णायक रूप से निर्भर है। इसमें कोई संदेह नहीं था कि वाल्या, नीना और पेत्रिक के मस्तिष्क की कोशिकाओं में वह तंत्रिकीय ऊर्जा पर्याप्त रूप से विकसित नहीं है, जो चिन्तन के सजीव द्वीपों को जोड़ने वाले तारों की सुदृढ़ता का स्रोत है। तार कमजोर हैं, 'द्वीपों' के बीच सम्बन्ध शीघ्र ही बुझ जाते हैं, बच्चा एक समय पर कुछेक बिंबों को अपने विचारों में नहीं समेट सकता। जब पेत्रिक उस बात को, जिसकी वह अभी-अभी क्षणभर पहले बिल्कुल स्पष्टतः कल्पना कर रहा था, याद करने का भरसक प्रयत्न करता था और याद नहीं कर पाता था—तब मैं मानो अपनी आंखों से यह देख पाता था कि विचारों का तार टूट जाता है।

प्रत्यक्षतः चिन्तन की इस विशिष्टता के कारण अलग-अलग बच्चों के लिए अलग-अलग हैं। मेरे ख्याल में, सबसे बड़ा कारण यह है कि शैशव काल में जब चारों ओर के संसार में बच्चा जिन बिंबों, चित्रों को ग्रहण करता है, उनका प्रवाह अत्यंत विविधतापूर्ण होता है, तब वह वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच सम्बन्धों के बारे में बहुत कम सोचता है, बच्चे के मस्तिष्क में चिन्तन के सजीव द्वीप द्विपक्षीय सूचना के प्रवाह से आपस में नहीं जुड़े होते—यह सब बड़ों द्वारा बच्चों के चिन्तन की ओर ध्यान न देने, उसके प्रति उदासीनता दिखाने का ही परिणाम है। बच्चे ने एक बार बड़ों से पूछा, 'क्यों ?' उसे जवाब नहीं मिला, दूसरी बार पूछा—फिर जवाब मिला। बड़ों की यह उदासीनता (और कभी-कभी तोझल्लाहट भरी चीख तक, 'जाओ, बाबा, सिर मत खाओ !') उन कोमलतम तारों को क्षीण करती हैं, जिन्हें इस उम्र में दिन दूना, रात चौगुना मजबूत होना चाहिए।

चिन्तन की इस नकारात्मक विशिष्टता का एक कारण यह भी होता है कि संसार की परिघटनाओं के प्रति कुछ बच्चों की भावनात्मक प्रतिक्रिया क्षीण होती है। इसके फलस्वरूप सबकार्टेक्स से आने वाले भावनात्मक आवेग कमजोर पड़ जाते हैं।

समय के साथ-साथ मैं यह अधिकाधिक स्पष्टता के साथ देख रहा था कि स्कूल जाने से पहले के वर्षों में बच्चों के लिए माता-पिता का शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान कितना महत्व रखता है। जब बच्चा स्कूल में नहीं पढ़ रहा होता, उन्हीं दिनों माता-पिता को शिक्षा और चरित्र-निर्माण के बारे में ज्यादा बताना चाहिए। भावी स्कूल-छात्रों के बारे में सोचते हुए हमने माता-पिताओं के लिए कक्षाएं आयोजित कीं, जिनमें 2 से 6 साल तक के बच्चों का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और सौन्दर्यबोधात्मक विकास, बच्चों के चिन्तन के बारे में चिन्ता जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल किए। अब ये कक्षाएं नियमित रूप से लगती हैं।

माता-पिता का शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान उस काल में विशेष महत्व रखता है, जब वे अपने बच्चों के एकमात्र चरित्र-निर्माता और शिक्षक होते हैं–अर्थात् बच्चे के स्कूल जाने से पहले वर्षों में। 2 से 6 वर्ष तक की उम्र में बच्चों का बौद्धिक विकास, उनका आत्मिक जीवन निर्णायक रूप से इस बात पर निर्भर होता है कि माता-पिता कितनी बुद्धिमत्ता से,कितने विवेक से विकासशील मानव के मानस में होने वाली जटिलतम हलचल को समझते हैं। माता-पिताओं के लिए कक्षाओं में इस प्रश्न की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था कि बच्चों को सोचना कैसे सिखाया जाए, किस तरह उनकी बौद्धिक क्षमता विकसित की जाए। अपने बरसों के अनुभव के आधार पर हमने अनेक ऐसे प्रश्न निरूपित किए, जो बच्चे प्रायः माता-पिता से पूछते हैं, माता-पिताओं को यह समझाया जाता था कि किस तरह वे बच्चों के प्रश्नों का उत्तर दें ताकि उनमें जिज्ञासा और कौतूहल बढ़े। माता-पिताओं के साथ मिलकर हमने बच्चों के लिए प्रकृति की सैरों का कार्यक्रम निर्धारित किया, यह तय किया कि किन बातों की ओर बच्चों का ध्यान आकर्षित कराया जाना चाहिए। इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया गया कि ऐसे सभी परिवारों में जहां छोटे बच्चे हैं, पुस्तकों के प्रति आदर का वातावरण हो।

वर्षों के अनुभव से यह पता चलता है कि कई ऐसे आनुवंशिक कारक भी हैं, जिनके कारण बौद्धिक विकास में कठिनाई होती है। माता-पिता को शराब की लत होने पर बच्चे के सारे शरीर पर ही बुरा असर पड़ता है, लेकिन उसके मस्तिष्क पर तो इसका प्रभाव विशेषतः घातक होता है।

हर बार जब हम बौद्धिक अभ्यास के लिए सवाल हल करने बैठते, तो मैं उन बच्चों को अपने पास ही बिठाता था, जो धीरे सोचते थे और मुश्किल से याद कर पाते थे। मैंने बहुत सारी पहेलियां और सवाल सोचे, तब कहीं जाकर आखिर नीना के मस्तिष्क में विचारों के सजीव द्वीपों के बीच पहले तार जुड़े, जो चारों ओर के संसार के चित्रों और बिंबों को एक दूसरे से सम्बन्धित करते थे।

मुझे जाड़ों का वह दिन याद है, जब हम अपने कमरे में मछलीघर के पास बैठे थे। बच्चे मछलियां गिन रहे थे, किसी के हिसाब से ज्यादा थीं, किसी के हिसाब से कम। तब मैंने बच्चों को एक लतीफा-सवाल सुनाया, 'भैया को मछलीघर में दो बड़ी और चार छोटी मछलियां दिखीं, दीदी को दो बड़ी और तीन छोटी मछलियां दिखीं। मां को तीन बड़ी और पांच छोटी मछलियां दिखीं। मां ने सारी मछलियां देख लीं। बताओ, मछलीघर में कितनी मछलियां थीं ?' अधिकांश बच्चों के लिए सवाल जरा भी मुश्किल नहीं था, लेकिन नीना काफी देर तक सोचती रही। आखिर वह खुश होकर बोली, 'ओहो, भैया और दीदी ने सारी मछलियां देखी नहीं थीं, मां ने सारी मछलियां देखीं। मछलीघर में तीन बड़ी और पांच छोटी मछलियां हैं। वे घास-पात में छिप जाती हैं, इसलिए दिखती नहीं, पर मां ने सारी देख लीं।' ऐसे ही सवाल, या शायद इससे भी कुछ कठिन सवाल, वाल्या और पेत्रिक हल करने लगे।

धीरे-धीरे मैं इन बच्चों को अधिक कठिन सवाल देने लगा, ताकि उन्हें जो सफलता मिली है, वह बनी रहे। पढ़ाई के तीसरे वर्ष में जब हम सामूहिक फार्म के बाग में सेब की फसल बटोर रहे थे, तब नीना ने यह पहले बूझ ली, 'तीन भाई खेत में काम कर रहे थे। दोपहर को वे आराम करने के लिए पेड़ के नीचे लेटे और सो गए। उनकी बहन उनके लिए खाना लाई—सूप, रोटी और सेब। उसने भाइयों को जगाया नहीं, खाने की पोटली पेड़ तले रखकर घर चली गई। सबसे बड़ा भाई जागा। उसने सेबों को तीन हिस्सों में बांटा, पर अपना हिस्सा सारा नहीं खाया, उसमें से एक सेब छोटे भैया के लिए रहने दिया। सेब खाकर वह फिर सो गया। बिचला भाई जागा, उसे पता नहीं था कि बड़ा भाई अपना हिस्सा खा चुका है। उसने भी सेबों के तीन हिस्से किए, पर अपना हिस्सा पूरा नहीं खाया, उसमें से एक सेब छोटे भाई के लिए रहने दिया, उसे सेब बड़े अच्छे लगते थे। फिर वह सो गया। आखिर छोटा भाई उठा। उसने देखा सात सेब रखे हुए हैं। वह सोचने लगा—कैसे इन्हें तीन हिस्सों में बांटूं ? बड़ी देर तक सोचता रहा, पर कुछ समझ में नहीं आया। आखिर दोनों बड़े भाई भी उठ गए। तब सारी बात साफ हो गई। बताओ, बहन कितने सेब लाई थी।'

बच्चे जो सवाल हल करते थे, उनमें बहुत से उस श्रम से सम्बन्धित होते थे, जिससे वह अच्छी तरह परिचित थे। इन सवालों को हल करते हुए बच्चे बार-बार यह देखते थे कि कैसे बड़े जमीन जोतते हैं, बीज साफ करते हैं, पेड़ लगाते हैं, खाद डालते हैं, फसल काटते हैं और उसे संभाल कर रखते हैं, घर बनाते हैं और सड़कों की मरम्मत करते हैं। जीवन में वे जो सम्बन्ध देखते थे, वे सवाल हल करते समय बच्चों के मस्तिष्क में बनने वाले चित्रों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होते थे। उनकी स्मरण शक्ति एक दूसरी से जुड़ी हुई, साथ-साथ विकसित होती थीं। अधिकांश

सवालों को हल करते समय बच्चे तस्वीरें बनाते थे या जिन वस्तुओं की चर्चा होती थी, उनके मॉडल से बनाते थे। तीसरी कक्षा में हमने गणित प्रतियोगिता आयोजित की। बच्चों को अलग-अलग तरह के सवाल दिए गए—यह ध्यान में रखकर कि सभी बच्चे सवाल हल कर पाएं। बच्चे यहां यह दिखा सकते थे कि वे कितने मेहनती, कितने अध्यवसायी हैं और किस तरह डटकर काम कर सकते हैं। धीरे-धीरे अन्य प्राथमिक कक्षाओं में भी और फिर सारे स्कूल में ऐसी प्रतियोगिताएं होने लगीं।

स्वयं जीवन के लिए गए सवालों को हल करते हुए बचपन में बच्चे सोचना सीखते हैं। अगर बच्चों ने सोचना नहीं सीखा है, अगर चिन्तन प्रक्रिया ने उनके मस्तिष्क को सुदृढ़ नहीं किया है तो न गणित में और न ही किसी और विषय में वे अच्छा ज्ञान पा सकते हैं।

लेव तोलस्तोय का परामर्श था, 'बच्चों को अंकगणित के नियम और परिभाषाएं मत सिखाइए, बल्कि उनसे ज्यादा से ज्यादा सवाल करवाइए और उनकी गलतियां इसलिए नहीं ठीक कीजिए कि उन्होंने सवाल नियमों के अनुसार नहीं किया, बल्कि इसलिए कि उन्होंने जो किया है उसका कोई मतलब नहीं निकलता।' यह परामर्श सिद्धान्त की—परिभाषाओं और नियमों की—अवेहलना करने का आह्वान नहीं करता, जैसा कि पहली नजर में कुछ पाठकों को लग सकता है। उल्टे, इसका लक्ष्य तो यह है कि छात्र परिभाषाओं और नियमों के सार को खूब अच्छी तरह समझ लें और नियम या परिभाषा उनके लिए न जाने कहां से और कैसे बना सत्य न हों, बल्कि वे देखें कि स्वयं वस्तुओं की प्रकृति में जो नियमबद्धता है, उसी का सामान्यीकरण करके नियम या परिभाषा बने हैं। सत्य के प्रति अध्यापक का ऐसा रुख होने पर बच्चे मानो स्वयं परिभाषा को 'खोजते' हैं। इस खोज की खुशी सशक्त भावनात्मक आवेग के समान है, जो चिन्तन के विकास में बहुत बड़ी भूमिका अदा करता है। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि लेव तोलस्तोय का यह परामर्श केवल छोटे बच्चों के लिए है।

ऐसे सवालों को हल करना ही छात्रों को अंकगणित का ज्ञान प्रदान करने का एकमात्र साधन नहीं था। बेशक यह काम चिन्तन के विकास में सहायक था, परन्तु फिर भी यह पाठों में शिक्षण कार्य का पूरक ही था। यह साधन बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यबोधात्मक और श्रम-शिक्षा की विविधतम विधियों और साधनों के समुच्चय के साथ मिलकर ही कारगर हो सकता था। मैं इसे प्राथमिक विद्यालय के प्रमुख लक्ष्य के प्राप्ति का एक मार्ग समझता था। यह लक्ष्य है—बच्चों को निश्चित परिधि में ठोस ज्ञान प्रदान करना और व्यवहारिक कार्य करना सिखाना। गणित के अध्ययन में यह बात बहुत मानी रखती है कि लक्ष्य स्पष्टतः निर्धारित किया गया हो, शिक्षक को बिल्कुल ठीक-ठीक यह पता हो कि उसे बच्चों को कब क्या सिखाना है। मैंने हर

शैक्षिक वर्ष के लिए यह निर्धारित कर लिया था कि बच्चों को क्या कुछ अच्छी तरह समझना और सदा के लिए याद कर लेना होगा। गिनती कैसे बनती है—इस सिद्धान्त का ज्ञान वह नींव है, जिस पर गणित शिक्षा में बच्चों की सफलता निर्भर होती है। मेरा प्रयत्न यह था कि पहली कक्षा में ही सभी छात्र 100 तक की गिनती में जोड़ने और घटाने के किसी भी सवाल का बिना सोचे ही तुरन्त उत्तर दें। इसके लिए मैंने कई ऐसे अभ्यास बनाए, जिनसे बच्चे किसी संख्या का विश्लेषण करना सीखते थे। मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि पहाड़ों को अच्छी तरह जाने बिना बच्चे प्राथमिक कक्षाओं में भी और आगे चलकर भी सृजनात्मक कार्य कैसे कर सकते हैं। निश्चित परिधि में ज्ञान को स्मृति में बनाए रखना सृजनात्मक चिन्तन का एक सबसे महत्वपूर्ण साधन है।

जिस बच्चे की स्मरण-शक्ति कमजोर है उसके लिए सोचना-विचारना मुश्किल होता है। मैं बरसों से इस प्रश्न पर चिन्तित था कि बच्चों की स्मरण-शक्ति कैसे विकसित की जाए, कैसे उसे उन अवधारणाओं, सत्यों और सामान्यीकरणों से समृद्ध किया जाए, जिनको वे चिन्तन के औजारों के रूप में किसी भी वक्त इस्तेमाल कर सकें। स्मरण-शक्ति के विकास का एक साधन हमने बनाया, 'अंकों की पिटारी'। इसकी सहायता से बच्चे अंकगणित का अपना ज्ञान परखते थे। यह एक दिलचस्प खेल के समान था—बच्चे लकड़ी की गिट्टियों से गणितीय वर्ग बनाते थे, गिट्टियों पर लिखे अंकों को जोड़ वर्क की चारों भुजाओं में एक-सा होना चाहिए। 'अंको की पिटारी' में पहाड़ों को दोहराने के लिए भी विशेष अभ्यास थे।

बच्चों की स्मरण-शक्ति विकसित और सुदृढ़ करने का एक और अनुपम साधन था, 'एलेक्त्रीना'। यह एक बिल्कुल सीधी-सादी-सी बिजली की तख्ती थी। सभी बच्चे इस पर गिनती और पहाड़े दोहराते थे। तीसरी कक्षा में हमने अपने लिए ऐसी तख्तियां बनानी शुरू कीं, चौथी के अन्त तक हमारे पास चार ऐसी तख्तियां थीं। इस काम के दौरान मैंने एक बार फिर देखा कि चिन्तन और हाथों के काम का मेल छात्रों के बौद्धिक विकास के लिए कितना महत्वपूर्ण है। जिन बच्चों की स्मरण-शक्ति कमजोर थी, वे बिजली की तख्ती, 'ऐलेक्त्रीना'—ऐसे दृश्य-साधनों को बनाने के काम में हिस्सा लेते हुए विकसित कर पाते थे। कहना न होगा कि चिन्तन प्रक्रियाओं पर प्रभाव डालने के अन्य साधनों के साथ मिलकर ही यह काम सफल होता था।

चिन्तन-शक्ति के विकास में मैं शतरंज को भी बहुत महत्व देता था। 'खुशियों के स्कूल' में ही शूरा, गाल्या, सेर्योझा, यूरा, वान्या, मीशा और कुछ दूसरे बच्चे शतरंज खेलना सीख गए थे। लड़के-लड़कियां अक्सर बिसात ले बैठते थे। शतरंज खेलते

ए बच्चे सोचना, ध्यान केन्द्रित करना, एकाग्रचित्त होना सीखते हैं। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी स्मरण-शक्ति बढ़ती है। मैं देखता था कि किस तरह बच्चे शतरंज खेलते समय पहले जो स्थिति थी उसे मन में दोहराते हैं और यह कल्पना करते हैं कि कोई चाल चलने पर आगे क्या स्थिति होगी। मैं बहुत चाहता था कि वाल्या, नीना और पेत्रिक भी शतरंज खेलने लगें। मैं उन्हें खेल सिखा रहा था और वे दूसरों को खेलते देखते समय यह सोचते थे कि अगली चाल क्या होगी। बिसात की बदौलत ही मैंने ल्यूबा और पावेल में गणितीय चिन्तन की क्षमता देखी। ये बच्चे तीसरी कक्षा में शतरंज खेलने लगे। इससे मेरा ध्यान कभी उनके चिन्तन की तीव्रता की ओर नहीं गया था।

शतरंज के बिना तो बौद्धिक क्षमताओं और स्मरण-शक्ति के बहुमुखी, सर्वांगीण विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। शतरंज को बौद्धिक संस्कृति के एक तत्व के रूप में प्राथमिक विद्यालय में स्थान मिलना चाहिए। चर्चा प्राथमिक विद्यालयों की ही है, जहां बौद्धिक शिक्षा का, बौद्धिक विकास का विशेष स्थान है और जहां इसके लिए कार्य के विशेष रूपों और विधियों की आवश्यकता होती है।

देश-विदेश की हमारी 'यात्राएं'

प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षक को यह प्रयत्न करना चाहिए कि उसके छात्रों का दृष्टि-क्षितिज अपने जन्म स्थान के खेतों-मैदानों और जंगलों तक ही सीमित न रहे, बल्कि धीरे-धीरे वे अपनी मातृभूमि के चित्रों और जीवन से, संसार से परिचित होते जाएं।

पहली कक्षा में ही मेरे छात्र अच्छी तरह जानते थे कि पृथ्वी एक बहुत बड़ा गोला है, जिसका कभी एक भाग सूरज की ओर होता है और कभी दूसरा, कि एक ही समय पर धरती के अलग-अलग कोनों में कड़ाके की सर्दी भी होती है और जोरों की गर्मी भी, रात भी दिन भी। दूसरी कक्षा में हम देश-विदेश की 'यात्राएं' करने लगे।

बच्चे 'हरी कक्षा' में बैठे हैं, उनके सामने एक बड़ा-सा ग्लोब है, जिस पर कृत्रिम 'सूर्य' का प्रकाश पड़ रहा है; 'पृथ्वी' 'सूरज' के गिर्द घूमती है और 'चांद' 'पृथ्वी' के गिर्द। मैं बच्चों से कहता हूं; 'देखो, बच्चो, यह है हमारा विशाल देश। हम इसकी पश्चिमी सीमा से थोड़ी ही दूरी पर रहते हैं। आओ, हम अपने देश के पूरब की ओर चलें, रास्ते में बहुत सारे नगर, देहात आएंगे, हम देखेंगे कि लोग वहां कैसे रहते हैं।' फिर मैं उन्हें रास्ते में आने वाले खेतों, नदियों और बस्तियों के बारे में बताता हूं। शब्दों को सुनते हुए बच्चे चित्र और स्लाइड फिल्म भी देखते जाते हैं।

शाम ढल रही है, दो घण्टे बीतते पता भी नहीं चला, पर हम सिर्फ 100

किलोमीटर का रास्ता तय कर पाए हैं। बच्चे बड़ी अधीरता से उस दिन की प्रतीक्षा करते हैं, जब हम अपनी 'यात्रा' पर आगे बढ़ेंगे।

....फिर से नगर और देहात, जंगल और नदियां, नए निर्माण स्थल और प्राचीन स्मारक हम देखते हैं, लेकिन ये 'यात्राएं' बच्चों को एकरस नहीं लगतीं, क्योंकि हमारी मातृभूमि के हर कोने में बच्चे कोई नई, अनोखी बात देखते हैं। हमें 'यात्रा' करते कुछ दिन हो गए हैं, अब हम वोल्गा के पास पहुंच रहे हैं, हम इस महान नदी पर बने विशाल पनबिजलीघर देखते हैं, नदी के दोनों ओर फैले असीम मैदानों में गड़रियों से मिलते हैं। बच्चे सांस रोककर स्तालिनग्राद की उस महान लड़ाई की वीरगाथा सुनते हैं, जिस पर सारी मानवजाति का भविष्य निर्भर था। अगर हजारों-हजार शूरवीर यहां न डटे रहते, अगर वे क्रूर और शक्तिशाली शत्रु के जोरदार हमलों को न पछाड़ देते, अगर उन्होंने स्वयं मृत्यु का आलिंगन करते हुए दुश्मन की कमर न तोड़ दी होती, तो आज हम यहां इस आरामदेह कक्षा में न बैठे होते। बच्चों को छोटी उम्र में ही मानवजाति के भविष्य के बारे में विचारों और चिन्ताओं का ज्ञान दिलाना चाहिए। बच्चों को यह जानने-समझने दीजिए कि आज भी संसार में ऐसी शक्तियां हैं, जो नये खूनी युद्ध छेड़ने को तैयार हैं। बाल-हृदयों में शान्ति के शत्रुओं के प्रति घृणा की भावना विकसित होने दीजिए, उन्हें अपने दादाओं-परदादाओं के वीरतापूर्ण कार्यों से इस बात का विश्वास पाने दीजिए कि मनुष्य भाग्य के बवंडर में एक तिनका नहीं है, बल्कि प्रबल शक्ति है।

हम अपनी मातृभूमि के असीम विस्तार में आगे ही आगे बढ़ते जाते हैं, बच्चे नए-नए चित्र देखते हैं—भव्य उराल पवर्त और उनके गर्भ में छिपी अथाह सम्पदा, रहस्यमय ताइगा जंगल, साइबेरिया की विराट नदियां। कुछ दिनों तक हम प्राकृतिक सम्पदा के भंडारों को खोजने वाले भूवैज्ञानिकों के साथ उराल के रत्नों के अनुपम देश की 'यात्रा' करते हैं। जहाज में बैठकर हम संसार की सबसे गहरी झील बाइकाल की यात्रा करते हैं, उसके किनारों पर खड़े पर्वतों और वनों की अनुपस छवि का रसपान करते हैं, अलाव के पास आग सेंकते हुए रात बिताते हैं। फिर हम आगे बढ़ते हैं–हमारे सम्मुख सुदूर पूर्व की अथाह सम्पदा का दृश्य हैं और फिर हम महासागर के तट पर पहुंचते हैं। समुद्री जहाज में बैठकर हम सखालीन और कुरील द्वीपों की यात्रा करते हैं। यहां हमारी मातृभूमि में दिन चढ़ता है।

हमारी यह 'यात्रा' लगभग तीन महीने तक चली, हम रोजाना औसतन 100 किलोमीटर का फासला तय करते थे। इस यात्रा में चालीस से अधिक जातियों के लोगों से मिले, इनमें अनेक विलक्षण लोग थे–किसान और भवन-निर्माता, खनिक, मछेरे और भूगर्भवेत्ता। वे सब श्रम करते हैं, ताकि हम अच्छी तरह रहें। बच्चों के मन

में गर्व की भावना जागती है—कितना विशाल, कितना समृद्ध और मैत्रीपूर्ण है हमारा देश।

अपनी मातृभूमि की हम कई 'यात्राएं' करते हैं। हम उत्तर की ओर बढ़ते हैं, बच्चे विषम जलवायु वाले टुंड्रा प्रदेश को और भव्य उत्तरध्रुवीय महासागर को देखते हैं; हम साहसी ध्रुववैज्ञानिकों से, हिरन पालकों और जंगल काटने वालों से मिलते हैं। पश्चिम में हम कार्पेथियाई पर्वतमाला की घाटियों में रहने वाले अपने बंधुआ—गुत्सुल जाति के लोगों का जीवन देखते हैं, पर्वतीय चरागाहों की अनुपम छटा देखते हैं। दक्षिण की ओर काकेशियाई पर्वतमाला की और मध्य एशिया के मैदानों की 'यात्रा' करते हैं।

मातृभूमि की हमारी 'यात्राएं' सालभर चलती हैं। अब बच्चों के लिए 'मातृभूमि' मात्र एक शब्द नहीं रहता, बल्कि इसके साथ अनेक ज्वलंत चित्र जुड़ जाते हैं, जो उनके हृदयों में सोवियत लोगों के वीरतापूर्ण श्रम के प्रति गर्व की भावना जगाते हैं। हमारी देखा-देखी दूसरे कक्षाओं के शिक्षक भी छात्रों को ऐसी 'यात्राओं' पर ले जाने लगे। हमारी चेष्टा यह थी कि बच्चों के मन में 'मातृभूमि' की जो अवधारणा बने, उसमें वह सब शामिल हो, जिसे सोवियत लोगों ने बड़े बलिदानों से पाया है, जो उन्हें जान से भी प्यारा है।

सोवियत संघ के जनतंत्रों की 'यात्राएं' बच्चों पर नैतिक प्रभाव की दृष्टि से अत्यंत फलप्रद थीं। द्नेप्र नदी की 'यात्रा' से यह क्रम आरम्भ हुआ। यह नदी तीन बंधु जनगण—रूसी, उक्राइनी और बेलोरूसी—के जनतंत्रों में बहती है। इस नदी पर 'यात्रा' करते हुए हमने इसके तट पर बसे नगर और देहात देखे, बंधु जनगण के वीरतापूर्ण अतीत और वर्तमान की कहानियां सुनीं। स्मोलेन्स्क और लोयेव, कीयेव और कानेव, चेर्कास्सी और क्रेमेन्चुग, जापोरोज्ये और काखोव्का—ये सब नगर बच्चों को इस बात की याद दिलाते थे कि गृहयुद्ध और विश्वयुद्ध के दिनों में अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए तथा जनता का शोषण करने वाली और उसे गुलाम बनाने वाली शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष में विभिन्न जातियों के लोगों ने खून बहाया था। द्नेप्र की 'यात्रा' करते हुए बच्चों ने वे उक्राइनी, रूसी और बेलोरूसी गीत सुने, जिनमें इस नदी के सौन्दर्य और भव्यता का, जनगण और भाईचारे और मैत्री का महिमागान किया गया है। जब बच्चों ने यह सुना कि सोवियत सत्ता के वर्षों में हमने जनतंत्र में क्या कुछ बनाया गया है, तो अपनी समाजवादी मातृभूमि के प्रति गर्व से उनका सिर ऊंचा उठ गया।

कुछ दिन तक हमने उन स्थानों की 'यात्रा' की, जिन्हें हमारे देश के जनगण की मैत्री के स्मारक कहा जा सकता है। 'यात्रा' हमने पेरेयास्लाव-ख्मेल्नीत्स्की नगर से शुरू की, जहां पर उक्राइनी लोगों ने सदा-सदा के लिए रूसी भाइयों के साथ

मिलकर रहने का संकल्प व्यक्त किया था। अपनी कल्पना में हम उन सैकड़ों नगरों से गुजरे, जहां पर उक्राइनी और रूसी भाइयों ने कंधे से कंधा मिलाकर अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए, गृहयुद्ध और फासिस्ट हमलावरों के खिलाफ युद्ध में तहस-नहस हुए उद्योगों के पुनरुत्थान के लिए संघर्ष किया।

रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतंत्र की कई दिनों की 'यात्रा' की बच्चों के मन पर अमिट छाप पड़ी। हमने यहां जनगण की भव्य मैत्री का दृश्य देखा —रूसी जनतंत्र में सौ से अधिक जातियों के लोग रहते हैं। बच्चों ने वोल्गा तटीय प्रदेश, उत्तरी काकेशिया, उराल, साइबेरिया, सुदूर पूर्व उत्तर में बसने वाली जातियों के लोगों के जीवन और श्रम का परिचय पाया।

हमारी कुछ 'यात्राएं' हमारे देश के उन स्थानों को समर्पित थीं, जो लेनिन के नाम के साथ जुड़े हुए हैं। उल्यानोव्स्क, कुइबिशेव, कजान, लेनिनग्राद, मास्को, शूशेन्स्कोये —ये सब स्थान बच्चों की कल्पना में ज्वलंत चित्र जगाते थे—मैंने बच्चों को कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत राज्य के संस्थापक व्लादीमिर इल्यीच लेनिन के बचपन, किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था के दिनों के बारे में बताया।

बेलोरूस और मोल्दाविया की, मध्य एशिया, बाल्टिक तटीय क्षेत्र और ट्रांस-काकेशिया क्षेत्र के बंधु जनतंत्रों की 'यात्राओं' में बच्चों के सम्मुख जनगण की महान मैत्री के नये-नये चित्र उजागर होते थे। हमारी ये काल्पनिक यात्राएं इसलिए और भी सजीव तथा रोचक होती थीं, क्योंकि उन दिनों ही हमारी कक्षा के बच्चे रूसी और बेलोरूसी छात्रों के साथ पत्र-व्यवहार करने लगे थे।

हम दूसरे देशों की 'यात्राओं' पर भी निकलते थे। मैंने यह ध्येय रखा था कि बच्चे संसार के अलग-अलग कोनों से प्रकृति की विविधता और सौन्दर्य देखें, उन्हें उन सब अच्छी बातों का पता चले, जो संसार के जनगण के जीवन और श्रम में हैं, उनके मन में विभिन्न भाषाओं में बोलने वाले लोगों की संस्कृति के प्रति, उनके अतीत और वर्तमान के प्रति रुचि जागे, वे देखें कि कैसे सारे संसार में बुराई और भलाई के बीच संघर्ष चलता है। इन 'यात्राओं' में दृश्य-साधनों का महत्व अपने देश की 'यात्राओं से भी कहीं अधिक थी—दूर-दराज के देशों और वहां की प्रकृति के बारे में, जिसे हमारे यहां नहीं देखा जा सकता, बच्चों की कल्पना में उज्ज्वल चित्र बनाने की आवश्यकता थी।

पहले हम उन देशों में गए, जहां कभी हमारे यहां जैसा जाड़ा नहीं होता, बर्फ नहीं पड़ती। मिस्र, भारत, श्री लंका, इंडोनेशिया के बारे में कहानियां सुनते हुए और फिल्में देखते हुए बच्चे हर दिन वहां की प्रकृति, वहां के लोगों के रहन-सहन, श्रम और संस्कृति के बारे में नई-नई बातें जानते जा रहे थे। वे अपनी कल्पना में इन देशों

के सुघड़ वृक्षों तले जा पहुंचते थे, उष्णकटिबंध की चिलचिलाती धूप की गर्मी और मूसलाधार बारिश की शीतलता महसूस करती थे, वहां के मेहनतकशों को काम करते देखते थे। पिरामिडों के देश—मिस्र—की 'यात्रा' अत्यंत रोचक थी।

फिर हम अपने पड़ोसी देशों की 'यात्रा' पर निकले। हमने स्कैंडि नेवियाई और केन्द्रिय यूरोप के देशों की, तुर्की, ईरान, अफगानिस्तान और जापान की 'यात्रा' की। ऐसे ही हम अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका, कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और अंटार्कटिक गए।

संसार के विभिन्न कोनों में लोगों के श्रम के जो चित्र बच्चों ने देखे, उससे वे बहुत प्रभावित हुए। आदमी चाहे कहीं भी रहता हो, उसकी चमड़ी का रंग कैसा भी हो, वह चाहे कोई भी भाषा बोलता हो—हर जगह वह श्रम करता है, बच्चों का पालन-पोषण करता है और उनके सुख के सपने देखता है। मैंने बच्चों को हमारे बंधुओं—समाजवादी देशों के जनगण के जीवन के उज्ज्वल चित्र दिखाए। मेरी चेष्टा यही थी कि संसार के सभी मेहनतकशों के प्रति बच्चों के मन में मैत्री की भावना जागे।

बच्चों ने ज्वलंत उदाहरणों से यह देखा-समझा कि फासिज्म और जर्मन जनता एक ही नहीं, कि जर्मनी के मजदूर वर्ग के सपूतों और सुपुत्रियों ने हिटलरी हुकूमत के काले दिनों में नाजीवाद के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की, अपने प्राणों की आहुति दी। इस तरह वे भी उसी शत्रु से जूझे, जिसके खिलाफ युद्ध में सोवियत जनता को इतने बलिदान करने पड़े।

संसार की 'यात्रा' करते हुए बच्चों ने देखा कि सभी जगह लोग सुखी नहीं हैं—संसार में ऐसे देश भी हैं, जहां इन्सान इन्सान को उत्पीड़ित करता है, जहां गरीबी और भुखमरी का राज है। बच्चों की चेतना में इस बुराई के कारणों के बारे में एक विचार-सा जड़ पकड़ रहा था। वे समझने लगे कि यह अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है। धीरे-धीरे बच्चे यह देख रहे थे कि संसार में शोषकों और शोषितों के बीच तीव्र, अनम्य संघर्ष चल रहा है। मैं यह कोशिश करता था कि मेरे बच्चे अपने हृदय से उन मेहनतकशों के दुखों को अनुभव करें, जो अभी तक शोषण का शिकार हैं, उन पूरे जनगण के दुख-दर्द को समझें, जो अभी तक पराधीन हैं। बच्चों के हृदय में वेदना जागी। अब वे अपनी मातृभूमि के नागरिकों के स्वतंत्र श्रम को नई दृष्टि से देखने लगे, वे महसूस करने लगे कि अपनी मातृभूमि के हित में, अपने परिवार और अपने जनगण के हित में श्रम करना बहुत बड़ा सुख है।

जब तक संसार में कहीं भी इन्सान इन्सान का शोषण करता है, तब तक बच्चों को सारी मानवजाति से प्रेम करने की शिक्षा नहीं दी जा सकती, क्योंकि कोई अमूर्त मानवजाति नहीं है, बल्कि वर्ग बंधु—शोषित लोग—हैं और हैं उनके अनम्य

शत्रु–शोषक। यह बात बहुत मानी रखती है कि छोटी उम्र में ही हर बच्चा यह समझ ले और अपने हृदय से अनुभव कर ले कि क्रांतिकारी, कम्युनिस्ट विचार क्या है। हमारी मातृभूमि के निकट अतीत के बारे में, स्वतंत्रता के लिए हमारे जनगण के संघर्ष के बारे में बताते हुए तथा ठोस, ज्वलंत उदाहरण देकर यह दिखाते हुए कि किस प्रकार औपनिवेशिक और पूंजीवादी देशों के मेहनतकश आजकल अपने हितों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, मैं धीरे-धीरे बच्चों में यह धारणा बना रहा था कि विचारों के लिए लोग मौत का आलिंगन करते हैं, कि विचारों के संघर्ष में ही वर्ग-विरोध का सार बिल्कुल स्पष्टतः उजागर होता है। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि जिन लोगों ने महान विचार के लिए अपने प्राणों की आहुति दी है, वे हमारे शिष्यों के आदर्श हों और साथ ही जो लोग गर्दन झुकाकर चुपचाप सारे अत्याचार, उत्पीड़न सह लेते हैं, उनके प्रति बच्चों के मन में तिरस्कार की भावना जागे। यही कारण है कि बच्चों को संसार सर्वप्रथम लोगों के जीवन, उनके श्रम और सुखी भविष्य के लिए संघर्ष के रूप में ही दिखाना चाहिए।

कम्युनिस्ट विचार की समझ से मैं बच्चों को धीरे-धीरे कम्युनिस्ट पार्टी की अवधारणा की ओर ले जा रहा था। अपनी मातृभूमि के अतीत के बारे में बताते हुए मैं सुस्पष्ट उदाहरण देकर यह दिखाता था कि किस तरह मजदूर वर्ग के सर्वश्रेष्ठ लोगों ने इन्सान द्वारा इन्सान का शोषण खत्म करने के लिए, मेहनतकशों का जीवन सुखी बनाने के लिए संघर्ष किया। वे चाहते थे कि भौतिक सम्पदाएं उन्हीं लोगों के लिए हों, जो उनका निर्माण करते हैं। मैं बच्चों को बड़े सजीव ढंग से यह बताता था कि किस तरह लेनिन और कम्युनिस्ट पार्टी ने जारशाही को खत्म करने और सोवियत सत्ता स्थापित करने के लिए मजदूर और किसानों को तैयार किया। महान लेनिन के साथियों के, कम्युनिस्टों के आत्मबलिदानपूर्ण संघर्ष के ज्वलंत उदाहरण देते हुए मैं बच्चों को यह बताता था कि कितने कठिन संघर्ष में महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति हुई, जिसने हमारे देश के जनगण के लिए मुक्ति और सुख का द्वार खोला और पूंजीवादी देशों के करोड़ों पराधीन जनगण के लिए स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया।

अपनी मातृभूमि की 'यात्रा' पर ले जाते हुए मैं बच्चों को यह बताता था कि सोवियत सत्ता के वर्षों में हमारा देश कितना बदल गया है, यहां कैसे विशाल कारखाने बने हैं, कैसे शानदार सामूहिक फार्मों ने इसकी धरती को चार चांद लगाए हैं, सोवियत लोगों के रहन-सहन और संस्कृति में कितना सुधार हुआ है। अपनी वार्ताओं में मैं हमारे देश के बच्चों के जीवन की ओर विशेष ध्यान देता था, जिनके सुखी बचपन की रक्षा सारी जनता करती है।

सोवियत देश में फलते-फूलते जीवन के बिल्कुल विपरीत था पूंजीवादी देशों को अंधकारमय जीवन।

जापान की 'यात्रा' कराते हुए बच्चों को पता चला कि वहां 1945 में हिरोशिमा पर गिराये गये परमाणु बम से हजारों लोग विकिरण रोग के शिकार हो गये हैं। बच्चों ने नन्ही सदाको ससाकी के बारे में सुना, जो इस भयानक रोग के कारण बिस्तर से लग गई है। बच्चों को दूर देश में बैठी अपनी हमउम्र बच्ची के दुख पर गहरी व्यथा हुई। वे बीमार बच्ची की सहायता करना चाहते थे, लेकिन कैसे करें, क्या करें ? जापान की 'यात्रा' के कुछ सप्ताह पश्चात मैंने बच्चों को अखबार में छपी एक छोटी-सी खबर पढ़कर सुनाई। अखबार में लिखा था कि सदाको ससाकी ने कागज के एक हजार सारस बनाने का लक्ष्य रखा है। जापानी लोगों का विश्वास है कि जो आदमी अपने हाथों से एक हजार सारस बना लेगा, वह सदा सुखी रहेगा। उक्राइनी लोगों में कुछ ऐसा ही विश्वास है—हमारे यहां बीमार बच्चे की मां उसके लिए कागज से भरत पंछी बनाती है, जो बच्चे के लिए स्वास्थ्य लाते हैं। खबर सुनकर लड़के-लड़कियां कागज के सारस बना-बनाकर उगते सूरज के देश को भेजने लगे। कई साल बीत गए, मेरे बच्चे बड़े हो गए, सदाको ससाकी के स्वास्थ्य के बारे में हर समाचार उनके हृदय में वेदना जगाता था। दूर देश की अपनी सहेली की मृत्यु का दुखद समाचार पाकर युवक-युवतियों को लगा मानो उनका कोई निकट सम्बन्धी नहीं रहा।

संसार, जिसका क्षितिज धीरे-धीरे बच्चों के सामने फैलता जाता है, यह संसार केवल सागर और महासागर, महाद्वीप और द्वीप अनदेखे, जीव-जन्तु और वनस्पतियां, उत्तरी ध्रुव की मेरु ज्योति और उष्ण कटिबंध की शाश्वत हरियाली में ही नहीं है। जी नहीं, यह संसार सर्वप्रथम इसमें बसने वाले लोग हैं, उनका श्रम और सुखी भविष्य के लिए उनका संघर्ष है, न्याय और सुख का मानवजाति का सदियों पुराना सपना है, जो उन देशों में साकार हो गया है, जहां इन्सान द्वारा इन्सान का शोषण खत्म कर दिया गया है। बच्चों को इस संसार में निरपेक्ष पर्यवेक्षकों के रूप में प्रवेश नहीं करना चाहिए, जिन्हें यह पता हो कि कहां क्या होता है और जो इसके बारे में बता सकते हों, बल्कि उन्हें तो ऐसे लोगों के रूप में संसार में प्रवेश करना चाहिए, जो मानवजाति के भाग्य पर चिन्तित, व्यथित हो सकें।

अपने देश की और विदेशों की 'यात्राओं' पर बच्चों को ले जाते हुए इस खतरे के प्रति खासतौर पर सर्तक रहना चाहिए कि बच्चों पर नई-नई जानकारी और छापों की बौछार न कर दी जाए। 'स्कूलों के लिए किताबों में (खासतौर पर विदेशी किताबों में) अक्सर ऐसे असाधारण परिणामों के बारे में बताया जाता है, जो विज्ञान ने पाए हैं, जैसे कि—धरती और सूरज का भार कितना है, सूर्य किससे बना है, किस प्रकार की

कोशिकाओं से पेड़-पौधे और मनुष्य बनते हैं, लोगों ने कैसी अनोखी मशीनें बना ली हैं। इस सबसे बचिए,' लेव तोलस्तोय छोटे बच्चों के शिक्षकों को परामर्श देते हैं। महान लेखक और शिक्षक ने इसका कारण यह बताया है कि खाली परिणामों का बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है, वे उन्हें किसी भी बात पर बिना सोचे-समझे विश्वास करना सिखाते हैं। जब ये शब्द लिखे गए थे, तब से दसियों बरस बीत गए हैं, संसार में कथनातीत परिवर्तन आए हैं, विज्ञान के अभूतपूर्व सफलताएं पाई हैं, छोटे बच्चों का दृष्टि-क्षितिज अब दूसरा है। परन्तु तोलस्तोय का परामर्श आज भी उतना ही मूल्यवान है। बच्चों को नई चीजों के बारे में बताते हुए उनमें ऐसी जानकारी नहीं भरनी चाहिए, जिसे सुनकर वे हक्के-बक्के रह जाएं।

पढ़ाई में सफलता की खुशी

छात्र का बौद्धिक श्रम, पढ़ाई में उसकी सफलताएं और असफलताएं—यह उसका आत्मिक जगत है, जिसकी उपेक्षा करने के परिणाम बड़े दुखद हो सकते हैं। बच्चा केवल किसी नई बात को, पाठ्य-सामग्री को जानता, समझता और याद ही नहीं रखता, बल्कि उसकी मेहनत उसके दिल को लग जाती है, वह जो कर पाता है या नहीं कर पाता उसके प्रति अपना रवैया जाहिर करता है, जो बिल्कुल उसका अपना रवैया होता है।

छोटे बच्चे के लिए शिक्षक न्याय का जीता-जागता रूप होता है। पहली कक्षा के जिस छात्र को 2 नम्बर मिले हों, उसको आंखों से झांक कर देखिए....वह न सिर्फ खुद को अभागा समझता है, बल्कि अध्यापक के प्रति भी उसके मन में नफरत और कभी-कभी तो शत्रुता का भाव जागता है। वह अध्यापक, जो बच्चे को सारतः इसलिए 2 नम्बर लगा देता है कि वह कुछ समझ नहीं पाया, बच्चों की नजर में अन्यायी होताहै।

एक स्कूल में ऐसी घटना घटी। एक छात्र किसी तरह यह समझ ही नहीं पा रहा था कि पौधे कैसे आहार पाते और सांस लेते हैं, कैसे कोंपल बढ़कर पत्ती बन जाती है और फूल फल में बदल जाता है, इत्यादि। अध्यापक कक्षा में अक्सर उससे सवाल पूछता था और हर बार कहता था, 'क्या तुम ऐसी सीधी-सीधी बातें भी नहीं समझ सकते, आखिर तुम्हारी समझ में क्या आता है ?' एक पाठ में अध्यापक ने कहा, 'कुछ दिनों बाद चेस्टनट के पेड़ों पर कोंपलें फूटने लगेंगी। हम सब अपने चेस्टनट कुंज में जाएंगे। अगर वहां भी अल्योशा ये सीधी-सादी बातें नहीं बता पाएगा, जो कि बच्चा-बच्चा समझता है, तो फिर इससे कोई उम्मीद नहीं की जा सकती।' अध्यापक को अपने इस चेस्टनट कुंज से बड़ा प्रेम था, चेस्टनट के फलों से

उसने ये छोटे-छोटे पेड़ उगाए थे। पाठ से एक दिन पहले वह कुछ छात्रों के साथ चेस्टनट कुंज में गया, जहां पेड़ों के शिखर लाल-गुलाबी कोंपलों से सजे लगते थे। अगले दिन जब सारी क्लास वहां पहुंचती, तो अध्यापक स्तंभित रह गया—पेड़ों की सारी कोंपलें टूटी हुई थीं। सब बच्चों को अफसोस हो रहा था। अध्यापक ने देखा—अल्योशा की आंखों में दुष्टताभरी खुशी की चमक दौड़ गई।

बच्चे की इस हरकत के पीछे विस्फोट था, बाल-हृदय की गहरी पीड़ा थी। बच्चे ने उसकी शक्ति, उसकी क्षमता में अविश्वास पर विरोध प्रकट किया था। लेकिन शिक्षण कार्य में कई बार ऐसा भी देखने में आता है कि जिन बच्चों को हर बार 2 नम्बर मिलते रहते हैं, वे आखिर यही सोच लेते हैं कि उनकी किस्मत में यही लिखा है और उन्हें नम्बरों की कोई परवाह नहीं रहती, वे इस ओर से बिल्कुल उदासीन हो जाते हैं। कभी-कभी नम्बरों के प्रति बच्चे के इस उदासीनता भरे रुख पर दूसरे बच्चे उसका मजाक उड़ाते हैं और फिर धीरे-धीरे सभी यह मान बैठते हैं कि वान्या या पेत्या को तो 'दो' के अलावा और कोई नम्बर ही नहीं मिल सकते। जो व्यक्तित्व अभी गठित ही हो रहा है, जिसका अभी निर्माण ही हो रहा है, उसके आत्मिक जीवन में इससे अधिक भयानक और किसी बात की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उस इन्सान से क्या उम्मीद की जा सकती है, जिसमें बचपन से ही आत्म-सम्मान की भावना-कुंठित हो गई हो ?

शिक्षा का, चरित्र-निर्माण का एक सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार यह है कि ज्ञान-प्राप्ति की प्रक्रिया में हर बच्चा मानव गरिमा का, गर्व का अनुभव करे। शिक्षक छात्रों को न केवल संसार का ज्ञान दिलाता है, बल्कि उन्हें यह अहसास भी दिलाता है कि वे इस संसार के रचयिता, सृजनकर्त्ता हैं, जिन्हें अपनी सफलताओं पर गर्व होता है। बच्चों की शिक्षा तो समूह में ही होती है, किन्तु ज्ञान के मार्ग पर हर कदम बच्चे स्वयं ही भरते हैं; बौद्धिक श्रम एक बिल्कुल व्यक्तिगत प्रक्रिया है, जो न केवल बच्चे की योग्यता पर, बल्कि उसके चरित्र पर तथा और भी बहुत-सी परिस्थितियों पर, जो सदा दिखाई भी नहीं देतीं, निर्भर होती है।

बच्चे साफ दिल से स्कूल आते हैं, उनमें अच्छी तरह पढ़ने की सच्ची अभिलाषा होती है। बच्चे को तो यह सोचकर भी डर लगता है कि कोई उसे आलसी या निकम्मा समझ सकता है। अच्छी तरह पढ़ने की अभिलाषा, यह सुन्दर मानवीय अभिलाषा मुझे उस लौ जैसी लगती है, जो सारे बाल-जीवन को सार्थक बनाती है, बच्चों की खुशियों की दुनिया को प्रदीप्त करती है। इस लौ को लेकर, जो कटु शब्दों या उदासीनता के जरा-से झोंके से बुझ सकती है, बच्चा असीम विश्वास के साथ शिक्षक के पास आता है, और अगर आप बच्चे की अभिलाषा को नहीं देखते हैं, तो

इसका अर्थ है कि आप अपने छात्रों के वर्तमान और भविष्य के लिए उत्तरदायित्व की हर्षमय और साथ ही उद्विग्नतापूर्ण भावना से वंचित हैं। पढ़ाई में बच्चे की सफलता, इस विचार की सगर्व चेतना और अनुभूति की मैं आगे कदम बढ़ा रहा हूं, ज्ञान के दुर्गम मार्ग पर अग्रसर हो रहा हूं–केवल यही वह प्राणदायी वायु है, जो ज्ञान-पिपासा की इस हल्की लौ को बुझने से बचा सकती है।

बेकार की, बिना किसी नीतजे की मेहनत तो बड़ों के लिए भी उबा देने वाली, निरर्थक और घिनौनी हो जाती है, जबकि हमारा वास्ता तो बच्चों से होता है। अगर बच्चा अपने श्रम के परिणाम नहीं देखता, तो ज्ञान-पिपासा की लौ बुझ जाती है, बाल-हृदय में उदासीनता की पथरी बन जाती है, जो तब तक नहीं घुल सकती, जब तक कि यह लौ फिर से न जल जाए (उसे दुबारा जलाना तो कितना कठिन है !); बच्चा अपनी शक्ति, अपनी योग्यता में विश्वास खो बैठता है, वह मन के सारे कपाट बन्द कर लेता है, रूखा और चौकन्ना हो जाता है, अध्यापक के कुछ कहने, सलाह देने पर उद्दंडता से जवाब देता है। या फिर इससे भी बुरी बात यह होती है कि उसमें आत्म-सम्मान की भावना कुंठित हो जाती है, वह इस विचार का आदी हो जाता है कि उसमें किसी भी काम के लिए योग्यता नहीं है। यह देखकर मन क्रोध से तिलमिला उठता है कि किस तरह बच्चा कदम उदासीन होकर, बिना चूं-चां के, घण्टेभर अध्यापक की नसीहतें और साथियों के ताने सुन सकता है–तू तो फिसड्डी है, तू अगली क्लास में नहीं जाएगा। इन्सान में उसकी आत्म-सम्मान की भावना कुचल देने से अधिक अनैतिक बात भला और क्या हो सकती है ?

बचपन और किशोरावस्था में छात्र स्वयं अपने को कैसा समझता है, श्रम-जगत में वह स्वयं को कैसा देखता है, इसी बात पर बहुत हद तक उसका चाल-चलन, उसकी नैतिकता निर्भर है। उशीन्स्की ने लिखा था कि कोई भी बच्चा स्वभाव से ही आलसी नहीं होता, उसे सब कुछ खुद करना ही अच्छा लगता है। बच्चों को श्रम करना, यह देखना, सोचना और समझना सिखाना चाहिए कि बौद्धिक श्रम क्या है, कि अच्छी तरह श्रम करने का अर्थ क्या है–केवल इसके पश्चात ही उन्हें उनकी सफलताओं के लिए अंक दिए जा सकते हैं। जिस बच्चे ने कभी पढ़ाई के श्रम की खुशी नहीं पाई, जिसे कभी इस बात पर गर्व नहीं हुआ कि उसने कठिनाइयों पर विजय पाई है, वह अभागा इन्सान है। अभागा इन्सान हमारे समाज के लिए बड़ी भारी लानत है, अभागा बच्चा–इससे भी सौ गुनी बड़ी लानत है। मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि बचपन के नाम से ही गद्‌गद् हुआ जाए; मैं तो यह सोच-सोचकर परेशान होता रहता हूं, कि बचपन में ही अक्सर इन्सान आलसी हो जाता है, वह मेहनत से नफरत करने लगता है, अपनी पूरी शक्ति, सामर्थ्य से श्रम करने के विचार

से भी उसे घृणा होती है। लेकिन बच्चा आलसी क्यों बनता है ? इसलिए, प्रिय साथी अध्यापको, कि वह श्रम का सुख क्या है, यह नहीं जानता। उसे यह सुख प्रदान कीजिए, उसकी कद्र करना सिखाइए—और वह अपने मान की कद्र करेगा, श्रम से प्रेम करेगा।

बच्चों को श्रम की खुशी, पढ़ाई में सफलता की खुशी प्रदान करना, उनके हृदयों में गर्व की, आत्म-सम्मान की भावना जागना—यह शिक्षा का, चरित्र-निर्माण का पहला नियम है। हमारे स्कूलों से अभागे बच्चे, ऐसे बच्चे नहीं होने चाहिए, जिनके मन को यह ख्याल सताए कि वे किसी काम के योग्य नहीं हैं। पढ़ाई में सफलता बच्चे मनोबल का एकमात्र स्रोत है। इसी मनोबल से उसमें कठिनाइयों को पार करने की शक्ति, पढ़ने की अभिलाषा जागती है।

अगर बच्चे में पढ़ने की अभिलाषा नहीं है, तो हमारी सारी योजनाएं, सारी नई-नई विधियां, रास्ते, सब धरे के धरे रह जाएंगे, निर्जीव ममी के समान होंगे। यह अभिलाषा पढ़ाई में सफलता के साथ ही आती है। यह एक विरोधाभास-सा लगता है—बच्चा पढ़ाई में सफल हो, इसके लिए उसे असफल नहीं होना चाहिए। पर इस बात में कोई विरोधाभास नहीं है, यह तो बौद्धिक श्रम की प्रक्रिया की द्वंद्वात्मक एकता है। पढ़ाई की रुचि केवल तभी जागती है, जब कि प्रेरणा है, जो ज्ञान-प्राप्ति में सफलता से मिलती है; प्रेरणा के बिना पढ़ाई बच्चों के लिए बोझा बन जाती है। अध्यवसाय को मैं वह प्रेरणा कहूंगा, जो बच्चे के इस विश्वास से कई गुना बढ़ गई है कि उसे अवश्य ही सफलता मिलेगी।

छात्रों के ज्ञान का मूल्यांकन जैसा देखने में सरल कार्य वास्तव में यह दिखाता है कि अध्यापक हर बच्चे के प्रति सही रुख ढूंढ सकता है कि नहीं, वह बाल-हृदयों में जलती ज्ञान-पिपासा की लौ को संजोए रखने में समर्थ है कि नहीं। प्राथमिक विद्यालय में चार साल की पढ़ाई के दौरान मैंने कभी भी किसी बच्चे को फेल नहीं किया, 'दो' अंक नहीं लगाए—न लिखित काम के लिए और न ही मौखिक जवाब के लिए। बच्चे पढ़ना, लिखना, सवाल हल करना सीखते हैं। एक बच्चे ने अपने बौद्धिक श्रम में सकारात्मक परिणाम पा लिया है, दूसरे ने अभी नहीं पाया। एक बच्चा वह काम कर पाता, जो अध्यापक उसे सिखाना चाहता है, दूसरा अभी नहीं कर पाता, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह सीखना नहीं चाहता। मैं बच्चों के बौद्धिक श्रम का मूल्यांकन केवल तभी करता था, जब कि वे उसमें सकारात्मक परिणाम पा लेते थे। अगर बच्चा अपने श्रम से जो परिणाम पाना चाहता है, वह अभी नहीं पा सका है, तो मैं उसे कोई नम्बर नहीं लगाता। बच्चे अभी सोचना, एकाग्रचित्त होना चाहिए, एक बार फिर अपना काम करना चाहिए।

पहली कक्षा में पढ़ाई शुरू होने के चार महीने बाद ही मैंने पहली बार बच्चों को नम्बर दिए। यहां सबसे पहले यह बात महत्व रखती है कि बच्चा यह समझे कि टिककर काम करना क्या है, अध्यवसाय क्या है। बच्चा काम ठीक तरह से नहीं करता, इसका कारण यह नहीं कि वह चाहता नहीं, बल्कि इसलिए कि उसे यह पता ही नहीं कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है–तो फिर उसे अंक किस बात के दिए जाएं ? मैं यह प्रयत्न करता था कि बच्चा एक ही काम को कई बार करते हुए स्वयं यह देखे कि शुरू में उसने जैसे काम किया है, उससे कहीं अधिक अच्छी तरह वह उसे कर सकता है। इसका बहुत बड़ा शैक्षिक महत्व है–बच्चा अपने अन्दर सृजन-शक्ति का अनुभव करता है; उसे अपनी सफलता देखकर खुशी होती है, वह अधिक अच्छी तरह काम करने की कोशिश करता है। अपने अधिक अच्छे काम की कम अच्छे काम से तुलना करते हुए बच्चे को प्रेरणा की अनुभूति होती है।

पहली कक्षा के काम का प्रेक्षण करते हुए मैंने देखा कि सब बच्चे एक-सा नहीं सोचते, वे अपने श्रम का अलग-अलग मूल्यांकन करते हैं। बच्चों ने एक शब्द लिखा है। लीदा, सेर्योझा, कात्या, सान्या, पावेल के अक्षर एकसार हैं, सुन्दर हैं। यूरा के अक्षर लाईनों के बाहर निकलते हैं, टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं; कोल्या और तोल्या लिखते नहीं, बल्कि चित्रकारी करते हैं, उनके अक्षर वैसे ही हैं, जैसे कि चित्र-पुस्तक में, जहां वे प्रकृति के बारे में अपनी पहली रचनाएं लिखते हैं। पेत्रिक की कापी में कुछ गोल-मटोल रेखाएं हैं। मैं बच्चों को अगला अभ्यास नहीं देता। बच्चे और कई बार वही शब्द लिखत हैं। हर बार उसी काम को दोहराना एक सीढ़ी के समान हो जाता है, जिस पर बच्चे चढ़ते हैं–जिन्होंने खराब लिखा है वे भी और जिन्होंने अच्छी तरह लिख लिया है वे भी। बच्चे खुश होते हैं कि वे पहले से ज्यादा अच्छी तरह काम कर पा रहे हैं।

इस खुशी में ही गर्व और आत्म-सम्मान की भावना जन्म लेती है। जिस बच्चे के मन में यह भावना जागी है, वह आसान रास्ता नहीं ढूंढता, दूसरों के श्रम के परिणामों से फायदा नहीं उठाता। जब बच्चों ने एक ही काम को बार-बार करते हुए सुधारना सीख लिया, ऐसा करने में खुशी और आत्म-सम्मान का अनुभव किया, केवल तभी मैं उन्हें नम्बर देने लगा–बेशक, नम्बर केवल सकारात्मक परिणाम के लिए, सफल कार्य के लिए मिलते थे। कुछ बच्चों को पढ़ाई शुरू होने के चार महीने बाद और कुछ को छह महीने बाद नम्बर मिलने लगे। पेत्रिक और मीशा को दूसरी कक्षा के आरम्भ में ही पहली बार नम्बर मिले। उनको मैं अलग से भी पढ़ाता था, यह कोशिश करता था कि वे कल के मुकाबले आज थोड़ा-सा ही सही, पर बेहतर काम करें, कि वे अपनी योग्यता में विश्वास न खोएं।

शिक्षा का अर्थ यांत्रिक तौर पर अध्यापक द्वारा छात्रों को ज्ञान दिया जाना नहीं है, यह तो सर्वप्रथम मानवीय सम्बन्ध हैं। ज्ञान की प्रति, शिक्षा के प्रति बच्चे का रुख बहुत हद तक इस बात पर निर्भर होता है कि शिक्षक के प्रति उसका क्या रवैया है। अन्याय देखकर तो बच्चा स्तंभित रह जाता है। फेल होने को, 'दो' अंक पाने को तो बच्चे सदा अन्याय ही समझते हैं और उस पर बहुत दुखी होते हैं, क्योंकि ऐसा कभी भी नहीं होता कि बच्चा पढ़ना न चाहे। वह पढ़ना चाहता है, लेकिन पढ़ना नहीं जानता, उसमें अभी एकाग्रचित होने की, अपने काम करने पर विवश करने की क्षमता नहीं होती है।

अगर बच्चा आज भी और कल भी सारे साल के दौरान अन्याय पर दुखी होता है, तो उसका तंत्रिका-तंत्र पहले तो उत्तेजित होता है और फिर उसमें शिथिलता, उदासीनता आती है। इस बार-बार की उत्तेजना और शिथिलता का परिणाम यह होता है कि बच्चा बीमार पड़ जाता है। यह देखने में अजीब लगने वाला रोग—स्कूल जनित तंत्रिका-रोग—है। इसकी विडंबना यह है कि यह केवल स्कूल में ही होता है—उस पवित्र ज्ञान-मन्दिर में, जहां पर इन्सानियत को ही बच्चों और अध्यापक के परस्पर सम्बन्धों का प्रमुख लक्षण होना चाहिए। स्कूल में होने वाला यह तंत्रिका-विकार अन्याय की उपज है। बच्चे के प्रति माता-पिता या अध्यापक के अन्यायपूर्ण रवैये के बहुत से रूप हैं। सबसे पहले आती है उदासीनता। बच्चे के मनोबल और नैतिक गुणों के विकास के लिए उसकी सफलता के प्रति अध्यापक की उदासीनता से बढ़कर खतरनाक और कोई चीज नहीं है। फिर आते हैं—डांट-डपट, धमकियां, खीझ और जिन लोगों में शिक्षण-संस्कृति नहीं होती, वे तो द्वेष के साथ खुश भी होते हैं, 'अच्छा बच्चू, कुछ नहीं आता-जाता तुझे, ला इधर अपनी रिपोर्ट-बुक, अभी लगाता हूं 'दो' नम्बर, देख लें तेरे मां-बाप भी—कैसा है उनका लाल।

मैं कई वर्षों से स्कूल में बच्चों को होने वाले तंत्रिका-रोगों की समस्या का अध्ययन कर रहा हूं। अध्यापक के अन्याय पर बच्चों के तंत्रिका-तंत्र की प्रतिक्रिया यह होती है कि कुछ बच्चे सदा उत्तेजित रहने लगते हैं, दूसरों को यह लगने लगता है कि उनके साथ सदा अन्यायपूर्ण बर्ताव ही होता है, कि हर कोई उन्हें तंग करने पर उतारू है, तीसरे सबसे खार खाए रहते हैं, चौथे यह दिखावा करते हैं कि उन्हें किसी बात की परवाह नहीं, पांचवें हर ओर से उदासीन, गुमसुम रहते हैं, छठों के मन में सदा सजा का भय समाया रहता है, वे स्कूल से, मास्टरजी से डरते हैं, सातवें बनते रहते हैं, मसखरी करते हैं, आठवें निष्ठुर हो जाते हैं और कभी-कभी (ऐसा विरले ही होता है, लेकिन तो भी इसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए) यह निष्ठुरता बहुत भयानक रूप धारण कर लेती है। इन सब तंत्रिका-विकारों को न होने देने माता-पिता

और अध्यापक की शिक्षण-संस्कृति पर निर्भर होता है। शिक्षण-संस्कृति का सर्वप्रमुख लक्षण यह है कि माता-पिता और शिक्षक को हर बच्चे के मानसिक जगत की अनुभूति हो, उनमें हर बच्चे की ओर उतना ध्यान देने की योग्यता हो, जितना बच्चे को यह महसूस करने के लिए चाहिए कि उसे भुलाया नहीं गया है, कि उसके दुख-दर्द को बांटा जाता है।

बच्चे के लिए अध्यापक की ओर से सबसे बड़ा अन्याय यह होता है कि एक तो बच्चे के दृढ़ विश्वास के अनुसार मास्टरजी ने उसे अनुचित ही फेल कर दिया है और ऊपर से वह यह भी चाहते हैं कि इसके लिए उसे माता-पिता से सजा मिले। जब बच्चा यह देखता है कि अध्यापक यह चाहता है कि माता-पिता जरूर ही बच्चे के बुरे अंकों की खबर मिले, तो उसे अध्यापक से भी और स्कूल से भी चिढ़ हो जाती है। उसे बौद्धिक श्रम से घृणा हो जाती है। उसकी भावनाओं में जो रूखापन आ जाता है, वह दूसरे लोगों, सर्वप्रथम माता-पिता के साथ सम्बन्धों में भी व्यक्त होता है।

ऐसी और कोई चीज नहीं है, जो बाल-आत्मा को इतना विकृत करती हो, जितना कि अन्याय के कारण उत्पन्न भावनात्मक उदासीनता। बच्चा स्वयं अपने प्रति जब उदासीनता अनुभव करता है, तो वह भलाई और बुराई के प्रति भी सारी संवेदशीलता खो बैठता है। वह यह नहीं समझ पाता कि उसके चारों ओर के लोगों में अच्छाई क्या है और बुराई क्या है। उसके मन में लोगों के प्रति अविश्वास और सन्देह घर कर लेते हैं—और यह कटुता का सबसे बड़ा स्रोत है।

आजकल अध्यापकों के बीच प्रोत्साहन और दण्ड की चर्चाएं चल रही हैं। कई शानदार सिद्धान्त पेश किए जाते हैं, जिनका अगले दिन प्रभात के कोहरे की भांति कोई नामोनिशान नहीं रहता....लोग यह भूल जाते हैं कि शिक्षण-कार्य में सबसे प्रमुख प्रोत्साहन और सबसे तेज उपकरण है, जिसे इस्तेमाल करने के लिए बड़ा कौशल चाहिए।

इस उपकरण का इस्तेमाल करने का अधिकार पाने के लिए सर्वप्रथम बच्चों से प्रेम होना चाहिए। उन्हें प्रेम के बारे में कहने की कोई जरूरत नहीं, उनकी हित-चिन्ता में इसे व्यक्त कीजिए। लेव तोलस्तोय का कहना है, 'अगर शिक्षक को केवल अपने काम से प्रेम है, तो वह अच्छा शिक्षक होगा। अगर शिक्षक को कोवल अपने छात्रों से प्रेम है, माता-पिता जैसा प्रेम, तो वह उस शिक्षक का अच्छा होगा, जिसने सब पोथियां पढ़ डाली हैं, लेकिन जिसे न अपने काम से और न बच्चों से प्रेम है, वह तो सच्चा शिक्षक है।'

आत्मिक संवेदनशीलता वह गुण है, जो केवल शिक्षा से ही नहीं पाया जा सकता। शिक्षक की मानवीय संवेदनशीलता उसकी बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यबोधात्मक

और भावनात्मक संस्कृति पर आधारित होती है। ये सब गुण अलग-अलग अपने आप में इतना महत्व रखते, बल्कि इन सबका मेल ही अधिक महत्वपूर्ण है। इन गुणों का मेल आदमी में उसकी शिक्षा से भी और समुदाय में नैतिक सम्बन्धों के उसके सामाजिक अनुभव से भी बनता है। शिक्षक को यह जानना और अनुभव करना चाहिए कि उस पर हर छात्र के भाग्य का उत्तरदायित्व है, कि उसकी आत्मिक संस्कृति और विचारों की सम्पदा पर उस व्यक्ति की बुद्धि, स्वास्थ्य और सुख निर्भर है, जिसे स्कूल शिक्षा दे रहा है।

....दूसरी कक्षा में व्याकरण का पाठ। मैं बच्चों को नियम समझाता हूं, फिर हम उदाहरण देखते हैं कि उसके बाद बच्चों को स्वयं करने के लिए काम देता हूं, जिसका लक्ष्य है—ज्ञान को पक्का करना और साथ ही परखना। काम के लिए बच्चों को अंक मिलते हैं। कापियां जांचते हुए मैं देखता हूं कि मीशा और पेत्रिक ने काम ठीक तरह से नहीं किया है। अगर मैं उन्हें 'दो' नम्बर लगा देता हूं, तो ये बच्चे, जो तन-मन से अच्छी तरह पढ़ने का यत्न कर रहे हैं, ऐसा मेरा यह फैसला समझेंगे, 'तुम्हारे साथी एक कदम आगे बढ़ गए हैं और तुम वहीं के वहीं रह गए।' गलतियां ठीक करके और कापी में सुलेख के नमूने देकर मैं मीशा और पेत्रिक को कोई नम्बर नहीं लगाता हूं। कापियां लौटाते हुए बच्चों से कहता हूं—

'मीशा और पेत्रिक ने अभी नम्बर पाने लायक काम नहीं किया। बच्चो, तुम्हें खूब मेहनत करनी चाहिए। दूसरा अभ्यास करो। कोशिश करो कि तुम्हें नम्बर मिलें।'

बच्चे इस बात के आदी हो जाते हैं कि अगर काम असंतोषजनक है, तो उसके लिए नम्बर नहीं लगाए जाते। उनके मन में धीरे-धीरे यह धारणा बनती जाती है कि जो काम उन्होंने कर लिया है, वह कोई बीता चरण नहीं है, जो अध्यापक के 'फैसले' के साथ खत्म हो गया है। बच्चे के सम्मुख सफलता का मार्ग सदा खुला रहता है—अभी वह जो नहीं कर पाया है, उसे वह भविष्य में कर लेगा, शायद आज ही या कल। मीशा और पेत्रिक को ऐसा नहीं लगता कि हमारी किस्मत में तो बस यही लिखा है, जैसा कि 'दो' अंक पाकर अपने साथियों से पिछड़ जाने की भावना मन में पैदा होने पर बच्चों को लगता है। पाठ में ही वे कहते हैं, 'जी, हमें और काम दे दीजिए।' मैं उन्हें नया अभ्यास देता हूं। स्कूल में ही वे उसे करने के लिए समय पा लेते हैं। (हमने स्कूल के घण्टे इस तरह रखे हैं कि हर बच्चे को रोजाना आधा घण्टा वह काम करने के लिए मिलता है, जिसे करना वह सबसे जरूरी समझता है)। लड़के पूरा जतन करते हैं कि उनका काम अंक पाने लायक हो। वे यह दिखाना चाहते हैं कि वे दूसरों से बुरे नहीं। मैं उनका काम देखता हूं, और जैसा कि सदा ऐसे मामलों में होता

है, वह अच्छे नम्बरों के लायक होता है।

अंकों को सावधानी से प्रेरक शक्ति के रूप में इस्तेमाल करना तब खासतौर पर महत्वपूर्ण होता है, जबकि बच्चों को जो काम दिया गया है, उसके लिए उन्हें विशेष बौद्धिक प्रयास की, सोचने-समझने, विश्लेषण करने की जरूरत हो। एक बच्चे का दिमाग तेज चलता है, दूसरे का इतनी तेज नहीं चलता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि एक बच्चा दूसरे से ज्यादा अक्लमंद है या दूसरे से ज्यादा मेहनत करता है। प्राथमिक विद्यालय में अंकगणित के पाठ चरित्र-निर्माण के पहले नियम की कसौटी होते हैं। यहीं पर यह देखा जा सकता है कि अध्यापक कैसे बच्चों को बाद्धिक श्रम में सफलता की खुशी प्रदान करता है, उनमें गर्व और आत्मसम्मान की भावना जगाता है। यह कोशिश करनी चाहिए कि बच्चा पहली कठिनाइयों से सामना होते ही हिम्मत न हार बैठे। मैंने वच्चों से सवाल हल करने के लिए तब तक नम्बर नहीं दिए, जब तक कि वे स्वयं सोचना, सवाल की शर्तों को समझना और उसे हल करने की विधि ढूंढना नहीं सीख गए, दूसरे शब्दों में, जब तक उन्होंने इस श्रम की खुशी नहीं पा ली। यहां पर यह बात बहुत जरूरी है कि एक ढर्रे पर न चला जाए; एक छात्र को महीने में तीन बार अंकगणित के लिए अंक मिल सकते हैं और दूसरे को एक बार भी नहीं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि दूसरा बच्चा कुछ नहीं कर रहा और आगे नहीं बढ़ रहा। वह सवाल को समझना सीख रहा है, और पहला अपेक्षाकृत जटिल सवाल, जिसे छात्र ने स्वयं हल किया है—वह वच्चे के विकास में एक महत्वपूर्ण चरण है।

कई बरसों से मैं उन छात्रों को देखता आ रहा था, जो गणित में कमजोर थे। आखिर मैं इस बात का कायल हो गया कि छोटी और बिचली कक्षाओं में कोई भी कमजोर बच्चा एक भी सवाल खुद हल नहीं करता। वे मानो धारा के साथ बहते चलते हैं, उस जगह पैर रख देते हैं, जहां उनके साथी पहले ही खड़े हैं—वे बोर्ड से या दूसरे छात्रों की कापियों में से सवाल का हल उतार लेते हैं और असल में उन्हें यह पता भी नहीं होता कि सवाल को स्वयं हल करना क्या है।

इस बुराई को शिक्षण-कौशल में सुधार के कोई रास्ते खोजकर दूर नहीं किया जा सकता। गणित के पाठ में बौद्धिक श्रम चिन्तन की कसौटी है। बुराई की जड़ यह है कि बच्चे ने सोचना नहीं सीखा है; चारों ओर का संसार और उसकी वस्तुएं, परिघटनाएं तथा परस्पर सम्बन्ध उसके लिए विचारों का स्रोत नहीं बन पाए हैं। हमारा अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि अगर छोटी उम्र में ही प्रकृति की 'यात्राएं' बौद्धिक श्रम का सच्चा अभ्यास बन गई हैं, तो कक्षा में एक भी बच्चा गणित में कमजोर नहीं होगा। वस्तुओं से बच्चे को सोचना सीखना चाहिए—यह इस

बात का अत्यंत महत्वपूर्ण पूर्वाधार है कि सभी सामान्य बच्चे बुद्धिमान, समझदार, जिज्ञासु और कौतूहली बनें। मैं अध्यापकों को यह परामर्श देता रहता था—अगर आपका छात्र कुछ समझ नहीं पा रहा है, अगर उसका विचार पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह असहाय है, तो अपने काम को ध्यान से देखिए—क्या आपके छात्र की चेतना इसी छोटी-सी सूखती हुई झील तो नहीं बन गई है, जो विचार के प्राणदायी और शाश्वत आदिस्रोत—वस्तुओं के जगत, प्रकृति की परिघटनाओं—से कट गई है ? इस छोटी-सी झील को प्रकृति के, वस्तुओं के, चारों ओर के संसार के महासागर से जोड़ दीजिए और फिर आप देखेंगे कि सजीव विचारों का चश्मा फूटा निकलेगा।

परन्तु यह सोचना भयंकर भूल होगी कि चारों ओर का संसार स्वयं ही बच्चे को सोचना सिखा देगा। सैद्धान्तिक चिन्तन के बिना वस्तुएं अभेद्य पर्दे के पीछे बच्चे की नजरों से छिपी रहेंगे। बच्चा अपने चारों ओर की वस्तुओं को, उनके ठोस रूप से हटकर, अमूर्त रूप में देखता है, केवल तभी प्रकृति बौद्धिक श्रम का पाठ सिखाती है। यथार्थ जीवन के ज्वलंत बिंब इसलिए चाहिए, ताकि बच्चा वस्तुओं की, परिघटनाओं की अन्योन्यक्रियाओं को चारों ओर के संसार के एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण के तौर पर देखना समझना सीखे। हेगेल के इस विचार को सही मानते हुए कि अन्योन्यक्रिया ही हर अस्तित्वमान वस्तु का causa finalis (अंतिम कारण) होती है, एंगेल्स ने लिखा, 'हम इस अन्योन्यक्रियाओं के संज्ञान से आगे ठीक इसीलिए नहीं बढ़ सकते कि इसके परे संज्ञान के लिए कुछ है ही नहीं।' अमूर्त चिन्तन की तैयारी के रूप में अन्योन्यक्रियाओं का संज्ञान पाना गणितीय चिन्तन के विकास का महत्वपूर्ण पूर्वाधार है। बच्चे सफलतापूर्वक सवाल हल कर पाते हैं कि नहीं, यह इस बात पर निर्भर होता है कि उन्होंने वस्तुओं और परिघटनाओं के परस्पर प्रभाव, अन्योन्यक्रिया को देखना सीखा है या नहीं।

सवालों को हल करने में स्वावलम्बी बौद्धिक श्रम के सफल होने की एक शर्त यह भी है कि ऐसे साधारण नियम (गिनती, पहाड़े), जिनके बिना चिन्तन की कल्पना भी नहीं की जा सकती, वे बच्चों को सदा याद हों।

पेत्रिक बड़ी देर तक अंकगणित के सवालों का अर्थ (शर्तें) नहीं समझ पाता था। मैं उसे समझाने की गलती नहीं करता था। सबसे बड़ी बात यह थी कि लड़का अपने दिमाग पर जोर डालकर वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच परस्पर सम्बन्धों के सार को समझ ले। परन्तु सजीव विचार तब तक चश्मे की तरह नहीं फूट निकलेगा, जब तक कि बच्चा सैद्धान्तिक चिन्तन के लिए तैयार नहीं, उसे तुलना और विश्लेषण करना नहीं आता। मैं बच्चों की प्रकृति की गोद में ले जाता था और उन्हें बार-बार प्रेक्षण करना, वस्तुओं, गुणों, घटनाओं की तुलना करना, उनकी अन्योन्यक्रिया देखना

सिखाता था। मैं पेत्रिक का ध्यान चारों ओर के संसार की उन परिघटनाओं की ओर आकर्षित कराता था, जिन्हें देखकर बच्चे की चेतना में यह विचार बनता है कि राशि और संख्या वस्तुओं का एक महत्वपूर्ण गुण है। मैं यह कोशिश करता था कि बच्चा संख्याओं के बीच सम्बन्ध को समझ जाए, वह यह देख ले कि ये सम्बन्ध किसी के दिमाग की उपज नहीं हैं, बल्कि वास्तविक जीवन में पाए जाते हैं। यहां बड़ी बात यह नहीं है कि बच्चा तुरन्त ही हिसाब लगाना, संख्याओं को जोड़ना, घटाना आदि सीख ले, बल्कि उसे यह समझना चाहिए कि इन सम्बन्धों का सार क्या है, क्यों संख्या को जोड़ा, या घटाया जाता है, उनको गुणा-भाग किया जाता है।

हम खेत में बैठे यह देख रहे थे कि कैसे कम्बाइन फसल काट रही थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद कम्बाइन के पास से अनाज से लदा ट्रक चलता था। कम्बाइन का बंकर कितनी देर में भर जाता है ? बच्चे घड़ी देखने लगे, तो पता चला 17 मिनट में बंकर भर जाता है। लोगों ने कैसे अपने काम का ऐसा हिसाब लगाया है कि कम्बाइन को रुकना नहीं पड़ता ? बंकर भरने में 5, 4, 3 मिनट रह गए थे, बच्चे बेचैन ही रहे थे—अब तो शायद कम्बाइन को रुकना पड़ेगा। 2 मिनट बाकी रह गए थे कि जंगल के पीछे से खाली ट्रक आता दिखा। गोदाम तक पूरे एक घण्टे का रास्ता था। इसका मतलब यह था कि लोगों ने दूरी और समय के बीच सम्बन्ध का हिसाब लगा लिया था। उन्होंने अनाज की लदाई के लिए इतनी गाड़ियां रखी थीं, जितनी कम्बाइन के बिना रुके काम करते रहने के लिए जरूरी थीं और अगर गोदाम तक एक घण्टे का नहीं, बल्कि दो घण्टे का रास्ता होता, तो अनाज की लदाई के लिए ज्यादा ट्रकों की जरूरत होती या कम की।

'ज्यादा की ही जरूरत होती,' पेत्रिक बोला। उसकी आंखें खुशी से चमक रही थीं। 'अब तो तीन ट्रक रास्ते में रहते हैं और एक में अनाज लादा जाता है, दूसरे से उतारा जाता है। अगर रास्ता ज्यादा लम्बा होता, तो ज्यादा ट्रकों को रास्ते में रहना होता।'

बच्चा दिमाग पर जोर डाल रहा था, मैं देख रहा था कि वह यह सोच रहा है कि अगर रास्ता दुगना लम्बा होता, तो कितनी गाड़ियां रास्ते में होतीं। लेकिन इस वक्त बड़ी बात यह नहीं थी। महत्व तो इस बात का था कि वह समझ गया कि सवाल लोगों के दिमाग की उपज नहीं हैं। सवाल हमारे चारों ओर के संसार में हैं, क्योंकि यहां गीत है, जीवन है, मनुष्य का श्रम है।

पेत्रिक तीसरी कक्षा में चला गया था, अभी तक वह सवाल हल नहीं कर पाता था। एक भी सवाल उसने साथियों की या अध्यापक की मदद के बिना हल नहीं किया था और इस बात पर मैं चिन्तित था। लेकिन मुझे विश्वास था कि लड़का

सोचना सीख जाएगा। मैं यह कोशिश करता था कि पेत्रिक उन परिघटनाओं के बारे में सोचे, उनका विश्लेषण करे, जिन पर अंकगणित के सवाल आधारित होते हैं। लेकिन उसे अमूर्त चिन्तन के लिए तैयार करने के वास्ते यही काफी नहीं था। जिसे गिनना नहीं आता, वह ज्ञान कैसे पा सकता है ? मैं इस बात को बहुत महत्वपूर्ण समझता था कि धीरे-धीरे पेत्रिक की स्मृति में वे सब बुनियादी बातें बैठती जाएं, जिनके बिना चिन्तन नहीं हो सकता। वह 'गणित की पिटारी' लेकर बैठ जाता था और अभ्यास करता था, अपना ज्ञान परखता था। मैं इस बात का बहुत ध्यान रखता था कि छात्र यह सोचने में न लग जाए कि 12−8, 19+13, 41−19 कितना होगा (अगर तीसरी में छात्र यह सोचने लग जाएगा, तो वह सवाल को नहीं समझ पाएगा)।

मैंने अपने अनुभव से यह देखा है कि अक्सर बीजगणित में बच्चे इसलिए असफल रहते हैं, कि उन्होंने गिनती को इतनी अच्छी तरह नहीं समझा-बूझा होता, कि जोड़, घटा, गुणा, भाग जैसी बुनियादी बातों के बारे में सोचें और दिमाग का सारा जोर अमूर्त चिन्तन पर लगा दें। जिस प्रकार पठन-पाठन एक 'अर्द्धस्वचालित' प्रक्रिया तक तब नहीं हो सकता, जब तक कि बच्चे ने हजारों बार उन अक्षरों को न पढ़ा हो, जिनसे मिलकर शब्द बनते हैं, उसी प्रकार अमूर्त गणितीय चिन्तन उसके लिए सात तालों में बन्द पुस्तक रहेगा, अगर उसने वे दसियों, सैकड़ों उदाहरण याद नहीं कर लिए हैं, जिनके बारे में लोग अपने रोजमर्रा के जीवन में जरा भी सोचते नहीं हैं, क्योंकि इन उदाहरणों के उत्तर उन्हें जबानी याद होते है। मैं यह प्रयत्न करता था कि मन्दबुद्धि छात्र, और सर्वप्रथम पेत्रिक, गणितीय चिन्तन के यथासम्भव अधिक बुनियादी उपकरणों के इस्तेमाल में—जोड़, घटा, गुणा, भाग के उदाहरणों में—माहिरी हासिल कर लें।

हम जब प्रकृति की 'यात्राओं' पर जाते थे, तो मैं बच्चे का ध्यान उन अनके सवालों की ओर दिलाता था जिन्हें लोग अपने काम में हल करते हैं और आखिर वह दिन आ गया, जिसके बारे में मुझे पक्का विश्वास था—पेत्रिक ने स्वयं ही सवाल हल कर लिया। उसकी आंखें चमकने लगीं, वह यह समझाने लगा कि सवाल में चर्चा किस बात की है, वह बहुत अच्छी तरह नहीं बता पा रहा था, लेकिन मैं यह सब देख रहा था कि आखिर बच्चे के लिए वह बात स्पष्ट हो गई थी, जो अब तक अंधेरे में डूबी हुई थी। पेत्रिक खुश था। मैंने भी चैन की सांस ली। बच्चे ने बड़ी मुश्किल से पढ़ाई खत्म होने का इन्तजार किया और मां को अपनी खुशी बताने घर दौर चला। मां घर पर नहीं थी। 'मैंने अपने आप सवाल कर लिया,' उसने नाना से कहा। पेत्रिक को अपनी सफलता पर गर्व था, और यह शुद्ध नैतिक गर्व तो मानव-गरिमा का स्रोत है। अपने श्रम पर गर्व की भावना के बिना सच्चा इन्सान नहीं हो सकता।

हमने अपने अध्यापक समुदाय से इस घटना पर सोच-विचार किया। हमने उन बच्चों को नई रोशनी में देखा, जिन्हें कठिनाई से पढ़ाई में सफलता मिलती है। कभी भी यह अन्तिम फैसला सुनाने की जल्दी नहीं करनी चाहिए कि यह बच्चा तो कुछ नहीं कर पाएगा, इसकी किस्मत में यही लिखा है। साल, दो साल, तीन साल, तक वह किसी काम को करने में असफल हो सकता है, लेकिन आखिर वह वक्त आएगा, जब बच्चे को सफलता मिलेगी। विचार उस फूल की तरह है, जो धीरे-धीरे जीवन-रस संचित करता है। जड़ों को यह रस दीजिए, फूल पर धूप पड़ने दीजिए और आखिर वह खिल जाएगा। बच्चे को ज्ञान पाने का हर्ष–यह परम मानवीय हर्ष प्रदान कीजिए।

हम, प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों ने कई सन्ध्याएं एक जटिल और उग्र शिक्षण समस्या का हल ढूंढने में लगाईं। समस्या यह थी कि कैसे बच्चों को ठोस वस्तुओं, पदार्थों की गिनती से, परिघटनाओं के बीच प्रत्यक्षतः दिखने वाले सम्बन्धों से अमूर्त सामान्यीकरण–नियम, सूत्र–की ओर ले जाया जाए ? हमने एक दूसरे को कई ऐसे दिलचस्प तथ्यों के बारे में बताया, जिनसे यह पता चलता था कि सभी बच्चे ऐसा सहज ही नहीं कर पाते हैं। कई ऐसे छात्र होते हैं, जो गिनती खूब अच्छी तरह जानते हैं, फौरन हिसाब लगा लेते हैं, लेकिन सवाल के अर्थ (शर्तों) को मुश्किल से समझ पाते हैं। कुछ बच्चों के लिए जो ठोस, ज्वलंत बिम्बों के माध्यम से सोचते हैं, उन ठोस संख्याओं से हटकर सोचना मुश्किल होता है, जिन पर सवाल आधारित है। कई बच्चे ऐसे भी होते हैं, जो सवाल को पढ़कर फौरन जवाब ढूंढने की कोशिश करते हैं–हिसाब लगाने लगते हैं, यह सोचे बिना ही कि कैसा हिसाब लगाना चाहिए, किसलिए लगाना चाहिए।

हम सबकी कक्षाओं में ऐसे बच्चे थे। हम आपस में सलाह-मशविरा करते थे–कैसे बच्चों को ठोस चिन्तन की ओर ले जाया जाए। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इसके लिए सवालों को हल करते समय बच्चों को नए ढंग से सोचना सिखाना चाहिए–बच्चे पहले सवाल की शर्तों पर सोच-विचार करें, फिर सवाल की संख्याओं के बिना, अंकगणितीय कार्यों के बिना हल करें। हम एक दूसरे की कक्षाओं में जाने लगे, यह देखने के लिए कि कैसे बच्चे सवाल पर सोच-विचार करते हैं, उसे हिसाब लगाए बिना हल करते हैं। इस प्रकार हम अलग-अलग बच्चों के बौद्धिक विकास का मार्ग ढूंढने की कोशिश कर रहे थे।

ऐसा कभी नहीं होने देना चाहिए कि बच्चों को दिए जाने वाले नम्बर उनके विचारों की बेड़ियां बन जाएं। मैं हमेशा कमजोर से कमजोर बच्चे को, जिससे लगता था कोई भी उम्मीद नहीं की जा सकती, यह अवसर देता था कि उससे जो काम नहीं

हो पाता है उस पर वह अच्छी तरह सोच सके। पढ़ाई में बच्चों की रुचि कभी भी बुझती नहीं थी। बच्चों में गर्व, मान और आत्मसम्मान की भावनाएं जगाते हुए मैं यह लक्ष्य रखता था कि बच्चे बिना किसी की सहायता के, खुद ही काम करना चाहें।

बच्चे को सोचने देना....पहली नजर में यह बात जितनी आसान लगती है, वास्तव में यह उतनी आसान नहीं है। पहली से चौथी तक कक्षाओं के छात्रों को बौद्धिक श्रम को गौर से देखिए—आप पाएंगे कि अधिकांश मामलों में (प्रायः सदा ही ऐसा होता है) बच्चे ने आपके प्रश्न का उत्तर इसलिए नहीं दिया (या काम पूरा नहीं किया) कि वह सोच नहीं पाया, एकाग्रचित नहीं हो पाया। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बच्चे से बिल्कुल अचानक ही सवाल पूछा जाता है, वह सकपका जाता है। हम, प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों ने मिलकर इस बात पर विचार-विमर्श किया कि बच्चे को सोचने का अवसर कैसे प्रदान किया जाए। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे—कभी यह फैसला सुनाने की जल्दी नहीं करनी चाहिए कि बच्चा कोई बात जानता है या नहीं जानता। कई बार ऐसा होता है, अध्यापक बच्चे से कहता है, 'जाओ, जाकर बैठ जाओ, नहीं पता तुम्हें!' बच्चा अपनी जगह पर बैठता है और तभी उसके दिमाग में सारी बात साफ हो जाती है—वह देखता है कि उसे सब पता है, सो, उसे अध्यापक की कही बात बहुत बुरी लगती है। ऐसा क्यों होता है ? इस प्रश्न का उत्तर हमें तुरन्त नहीं मिला। इसके लिए बच्चों के काम का प्रेक्षण करने की, अनेक तथ्यों का अध्ययन करने की आवश्यकता थी।

जो बच्चा एक बार अपने मनोबल से और अपने मस्तिष्क पर जोर डालकर लक्ष्य प्राप्त कर लेता है, उसे फिर टीपा-टापी से, नकल करने से, किसी से चुपके से पूछने या बताने से घिन हो जाती है। बच्चों और मेरे बीच परस्पर विश्वास तथा सद्भावना भरे सम्बन्ध थे। छात्र कभी भी मुझे यह कहने से नहीं डरता था कि बहुत कोशिश करने पर भी उससे कोई काम नहीं हो पाया है। अपनी सभी शंकाओं, खुशियों और निराशाओं के बारे में वे अध्यापक को बताते थे। मैं बच्चों के लिए कभी भी उन्हें दुख पहुंचाने वाला व्यक्ति नहीं बना—'दो' नम्बर पाना तो सभी बच्चों को लिए बड़े दुख की बात होती है। जब अध्यापक बच्चे को रोज-रोज कहता है, 'तुम्हें 'दो' मिलेंगे,' तो इससे बाल-आत्मा कितनी कुंठित होती है ! बच्चा अपने आपको अभागा महसूस करने लगे इसके लिए उसे कोई बड़ा दुख नहीं चाहिए। यह विपदा इसलिए और भी भयानक हो जाती है कि नन्हा इन्सान अपने दुख का आदी होता हुआ चारों ओर से उदासीन हो जाता है, उसके स्वभाव से रुखाई आ जाती है और यह रुखापन तो निष्ठुरता के लिए फलप्रद भूमि है। अगर क्लास में अभागे बच्चे हैं और उनके साथी किसी तरह उनकी सहायता करने की कोशिश नहीं करते, तो कभी भी

अच्छा, मैत्रीपूर्ण और सद्भावनापूर्ण बाल-समुदाय नहीं बन पाएगा।

पर हां, ऐसा भी नहीं होने देना चाहिए कि नम्बर बच्चों को बिगाड़ दें। कई स्कूलों में ऐसा होता है कि बच्चे ने दो शब्द कह दिए, बस फौरन उसे 'पांच' नम्बर मिल गए। कई बार ऐसा होता है कि एक ही सवाल कई बच्चों में पूछा जाता है और उन सबको नम्बर दिए जाते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि बच्चे में पढ़ाई के प्रति लापरवाही पैदा होती है। बच्चों को सदा यह आभास होना चाहिए कि नम्बर उनके बौद्धिक श्रम का परिणाम हैं।

छात्रों को इस बात का कायल कराना चाहिए कि बाद्धिक कार्य ऐसा श्रम है, जिसके लिए भारी प्रयत्न करने, अपने इच्छाबल सेएकाग्रचित्त होने तथा कई खुशियों से इन्कार करने की जरूरत होती है। श्रम के वातावरण में ही अध्यवसाय और संकल्पशक्ति विकसित होते हैं। वह बच्चा, जिसने प्राप्त परिणामों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखना सीख लिया है, जिसे अपने काम से असंतोष की अनुभूति हुई है और जो उसे अधिक अच्छी तरह करने की कोशिश करता है—ऐसा बच्चा कभी भी आलसी नहीं बनेगा।

अपने अनुभव से यह देखते-समझते हुए कि बौद्धिक श्रम में सफलता कैसे पाई जाती है, बच्चे आत्मनियंत्रण सीखते हैं। डटकर मेहनत करने, अधिक परिणाम पाने की आदत के फलस्वरूप बच्चों में जैसे-तैसे किए गए काम, निठल्लेपन और काहिली के प्रति असहनशीलता विकसित होती है।

जब बच्चों के लिए पढ़ाई के श्रम की सफलता की खुशी ही पढ़ाई करने की प्रमुख प्रेरक शक्ति होती है, तब क्लास में कोई आलसी नहीं होता। सच्चे शिक्षक विरले ही आलसी बच्चों से संघर्ष करते हैं, वे तो बुद्धि की निष्क्रियता के परिणाम के रूप में आलस्य को दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

धीरे-धीरे हमारे स्कूल की पहली से दसवीं तक सभी कक्षाओं में बौद्धिक श्रम के केवल सकारात्मक परिणामों का मूल्यांकन करने की प्रणाली अपनाई जाने लगी। पाठक यह पूछ सकते हैं—तिमाही या साल के अन्त में अगर यह पता चले कि छात्र को किसी विषय में अंक मिले ही नहीं, तब क्या किया जाए ? यही तो बात है कि अंकों का न होना बच्चे के लिए 'दो' अंक होने से भी कहीं अधिक परेशानी की बात होती है। बच्चे के दिमाग में यह बात बिठाई जाती है—अगर मुझे अभी तक किसी विषय में अंक नहीं मिले, तो इसका मतलब यह है कि मैंने अभी काफी मेहनत नहीं की। यही कारण है कि हमारे यहां ऐसा प्रायः कभी नहीं हुआ कि साल के अन्त तक छात्रों को एक बार भी नंबर न मिले हों। चार साल के दौरान मैंने केवल छह बार बच्चों को तिमाही के अंत में नम्बर नहीं लगाए। माता-पिता जानते थे—अगर उनके

बेटे या बेटी को अंक नहीं मिले, तो इसका अर्थ यह है कि सब कुछ ठीक नहीं है। ह
यह भी जानते थे कि अंकों का न होना—बच्चे का अपराध नहीं है, बल्कि उसका
संकट है और संकट में तो सहायता करनी चाहिए, सो हम मिलकर छात्र की सहायता करते थे। मैंने माता-पिताओं को समझा-बुझाकर इस बात का कायल कराया कि वे कभी भी बच्चों से केवल सर्वश्रेष्ठ अंकों की ही मांग न करें, 'फेल' को बच्चे का आलस्य, अकर्मण्यता या अपर्याप्त प्रयास का सूचक न समझें।

कुछ अध्यापक शिक्षण के इस सूक्ष्म उपकरण—अंकों—का इस्तेमाल बिना सोचे-समझे करते हैं। कई स्कूलों में 'तीन' अंक पाना बुरी बात समझी जाती है। 'केवल 'चार', 'पांच' पाएंगे !'—ये आह्वान केवल पायोनियरों की सभाओं में ही नहीं सुनने में आते। बाल पत्र-पत्रिकाओं में भी ऐसे आह्वान पढ़े जा सकते हैं। पढ़ाई में संतोषजनक सफलता के प्रति ऐसे रवैये को बढ़ावा देते हुए अध्यापक वस्तुतः उस टहनी को ही काटता है, जिस पर वह बैठा है—वह बच्चों में पल्लवग्राहिता, छिछोरापन और लापरवाही जैसे गुण विकसित करता है।

दूसरी कक्षा में पढ़ाई शुरू होने के कुछ सप्ताह पश्चात बच्चों की रिपोर्ट-बुकें बना दी गईं, जिनमें बच्चे पाठों में मिलने वाले अंक लिखते थे। एक बार भी ऐसा नहीं हुआ कि बच्चों ने मां-बाप से अपने नम्बर छिपाने की कोशिश की हो। अगर अंक सफलता की खुशी प्रतिबिंबित करते हैं, तो और कुछ हो ही नहीं सकता। रिपोर्ट-बुक में अध्यापक के हस्ताक्षरों की भी कोई जरूरत नहीं—यह तो स्कूल के पुराने परस्पर संशय और अविश्वास के वातावरण का अवशेष है। अगर क्लास में परस्पर विश्वास नहीं है, अगर छात्र शिक्षक को धोखा देने की कोशिश करते हैं, अगर नम्बर वह कोड़ा है जिससे बड़े बच्चों को 'हांकते' हैं, तो सही शिक्षा का आधार ही नष्ट हो जाता है।

अनुचित ही लगाए गए 'दो' अंक से स्कूल की एक सबसे बड़ी बुराई शुरू होती है। यह है—बच्चों के झूठ, अध्यापक और माता-पिता को धोखा देने की कोशिश। माता-पिता से स्कूल में अपनी असफलता और अध्यापक से अपनी अकर्मण्यता छिपाने के लिए बच्चे क्या-क्या तरकीबें नहीं सोचते। छात्रों के प्रति जितना आधिक अविश्वास होता है, उतनी ही चालाकी से वे धोखा देने की कोशिश कराते हैं। आलस्य और अकर्मण्यता के लिए उतना ही अच्छा आधार होता है। आलस्य अविश्वास की सन्तान है। ज़िसे मैं शिक्षा देता हूं, यह सर्वप्रथम जीता-जागता इन्सान है, बच्चा है और उसके बाद ही छात्र। उसे मैं जो अंक देता हूं, वह केवल उसको ज्ञान का मापदण्ड ही नहीं है, बल्कि सर्वप्रथम एक मनुष्य के नाते उसके प्रति मेरे रुख की अभिव्यक्ति है।

मैं सभी शिक्षकों को परामर्श देता हूं—बच्चे में जिज्ञासा, कौतूहल और ज्ञान-पिपासा की लौ की रक्षा कीजिए। इसी लौ को जलाए रखने का एकमात्र स्रोत है श्रम में सफलता की खुशी, एक श्रमिक के गर्व की भावना। बच्चे की हर सफलता को, कठिनाइयों पर उसकी हर विजय को अंकों से पुरस्कृत कीजिए, परन्तु साथ ही अंकों का दुरुपयोग भी मत कीजिए। यह मत भूलिए कि जिस नींव पर आपके शिक्षण कौशल का भवन बनता है वह स्वयं बच्चे में ही, ज्ञान के प्रति और शिक्षक के प्रति उसके रवैये में ही है। पढ़ने की अभिलाषा, प्रेरणा और कठिनाइयों को पार करने की तत्परता ही यह नींव है। बड़े ध्यान से इस नींव को सुदृढ़ बनाइए, इसके बिना ज्ञान का मन्दिर, विद्या का घर—विद्यालय—नहीं बन सकता।

कथा-लोक

कथा-कहानियां, खेल, कल्पना—यह बाल-चिन्तन का, उदात्त भावनाओं और आकांक्षाओं का जीवनदायी स्रोत है। हमारा कई वर्षों का अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि कथा-कहानियों के बिंबों के प्रभाव में बाल-आत्मा में उत्पन्न होने वाली सौन्दर्यबोधात्मक, नैतिक और बौद्धिक अनुभूतियां विचारों के प्रवाह को सक्रिय बनाती हैं, जो मस्तिष्क को सक्रिय कार्य की प्रेरणा देता है, चिन्तन के जीवंत 'द्वीपों' का सुदृढ़ तारों से जोड़ता है। कथा-कहानियों के बिंबों के जरिए शब्द अपनी सूक्ष्मतम छटाओं के साथ बाल-चेतना में प्रवेश करता है; वह बच्चे के आत्मिक जीवन का क्षेत्र, उसके विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम—चिन्तन का सजीव यथार्थ बन जाता है। कथा-कहानियों के बिंबों द्वारा जगाई गई भावनाओं के प्रभाव में बच्चा शब्दों के माध्यम से सोचना सीखता है। ऐसी सजीव, ज्वलंत कहानियों के बिना, जो बच्चे की चेतना और भावनाओं पर छा जाएं, मानव-चिन्तन और वाणी को निश्चित चरण के रूप में बाल-चिन्तन और बाल-वाणी की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

बच्चों को इस बात से गहरा सन्तोष मिलता है कि उनके विचार कथा-कहानियों के संसार में रहते हैं। बच्चा एक ही कहानी को पांच, दस बार सुना सकता है और हर बार उसे उसमें कोई नई बात दिख सकती है। कहानियों के बिंब सजीव, सुस्पष्ट तथा ठोस से अमूर्त की ओर पहला कदम है। मेरे छात्रों के आत्मिक जीवन में अगर कथा-कहानियों का एक पूरा काल न होता, तो उनमें शायद अमूर्त चिन्तन की क्षमता इतनी अच्छी तरह न विकसित हो पाती। बच्चे खूब अच्छी तरह समझते हैं कि संसार में दुष्ट चुड़ैल या राजकुमारी मेंढकी या राक्षस नहीं हैं, लेकिन वे इन बिंबों की भलाई और बुराई का मूर्त रूप देखते हैं। एक ही कहानी सुनाते हुए वे अच्छाई या बुराई के प्रति अपना निजी रुख व्यक्त करते हैं।

कथा-कहानियों को सौन्दर्य से अलग नहीं किया जा सकता, वे बच्चों में सौन्दर्य की भावना विकसित करती हैं, जिसके बिना आत्मा की उदात्तता लोगों की यातनाओं, दुख-दर्द के प्रति हृदय की संवेदनशीलता नहीं हो सकती। कथा-कहानियों की बदौलत बच्चा न केवल मस्तिष्क से, बल्कि हृदय से भी संसार को जानता-समझता है और वह केवल जानता- समझता ही नहीं, बल्कि चारों ओर के संसार की घटनाओं पर प्रतिक्रिया भी दर्शाता है, भलाई और बुराई के प्रति अपना रवैया भी प्रकट करता है। कथा-कहानियों में ही बच्चे पहली बार न्याय और अन्याय की बात सुनते और समझते हैं। बच्चे के पहले विचार और धारणाएं भी कथा-कहानियों की मदद से बनते हैं। बच्चे विचार को केवल तभी समझ पाते हैं, जबकि वह ज्वलंत बिंबों में मूर्तिमान हो।

बच्चों में मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना विकसित करने के लिए कथा-कहानियां अद्वितीय साधन हैं। कहानी का देश-भक्तिपूर्ण विचार उसके अन्तर्य की गहनता में निहित होता है; सदियों से लोग जो कथा-कहानियां बनाते आए हैं, उनके बिंब बच्चों को मेहनतकश जनता की सशक्त सृजन की भावना का, जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण, उसके आदर्शों और आकांक्षाओं का आभास दिलाते हैं। लोक-कथा में बच्चों में मात्र इसीलिए ही मातृभूमि के प्रति प्रेम जगाने की शक्ति होती है कि वह जनगण द्वारा रची गई है। जब हम कीयेव के सोफिया मठ के अनुपम भित्तिचित्रों को देखते हैं, तो हम उन्हें जन-जीवन के एक अंश के रूप में, जन-प्रतिभा के सृजन के रूप में ग्रहण करते हैं, और हमारे मन में जनता की सृजन भावना, उसके विचार, उसके कौशल पर गर्व की भावना जागती है। बाल-आत्मा पर लोक-कथा का प्रभाव भी कुछ ऐसा ही होता है। लगता है कि लोक-कथा का कथानक आम जीवन की घटना पर ही अधारित है—दादा-दादी ने शलगम उगाया....दादा ने भेड़िये के धोखा देने की सोची, सो पुआल का बछड़ा बनाया....परन्तु लोक-कथा का हर शब्द अमर भित्तिचित्र पर हल्की-सी रेखा के समान है, हर शब्द में, हर बिंब में जनमानस की सृजन शक्ति व्यक्त होती है। लोक-कथाएं लोक-संस्कृति की आत्मिक सम्पदा हैं, जिसे देखते-समझते हुए बच्चा अपने हृदय से अपने जनगण का बोध पाता है।

'खुशियों के स्कूल' खुलने के तीन महीने बाद हमने अपना 'कथा-लोक' बनाया। बड़े छात्रों की मदद से एक कमरे में ऐसी चीजें बना दीं, जिनके बीच बच्चों को लगे, मानो वे कथा-कहानियों के बिंबों के घिरे हुए हैं। हमें ऐसा वातावरण बनाने के लिए काफी मेहनत करनी पड़ी, जहां की हर चीज सांझ के झुटपुटे की और उन कहनियों की, जो कभी मां ने सुनाई थीं, याद दिलाए। एक कोने में हमने दुष्ट चुड़ैल की झोंपड़ी बनाई, जो कहानी के अनुसार मुर्गी की टांगों पर खड़ी थी, उसके चारों ओर

ऊंचे पेड़ और ठूंठ थे, झोंपड़ी के पास ही लोक-कथाओं के दूसरे नायकों की आकृतियां थीं—चालाक लोमड़ी, भूरा-भेड़िया, दूसरे कोने में दादा-दादी का घर, आसमान में हंस थे, जो अपने परों पर उक्राइनी लोककथा के छोटे से लड़के को चुराए ले जा रहे थे। तीसरे कोने में नीला सागर-महासागर था, जिसके किनारे पर नेक बूढ़े और चिढ़चिढ़ी बुढ़िया की टूटी-फूटी झोंपड़ी थी, दहलीज के पास लकड़ी का टूट हुआ टब रखा था, बुड्ढा- बुढ़िया एक लट्ठे पर बैठे थे और समुद्र में सुनहरी मछली तैर रही थी। चौथे कोने में शीतकालीन वन था, जिसमें हिम के टीले बन गए थे और उनके बीच छोटी-सी बच्ची बर्फ में धंसती हुई जा रही थी—दुष्ट सौतेली मां ने उसे जंगल से बेरियां लाने भेजा था....छोटी-सी झोंपड़ी की खिड़की में से बकरा झांकता था। एक ओर बड़ा-सा दस्ताना रखा था, जिसमें चूहे का घर था। प्लाईवुड से हमने एक बड़ा ठूंठा बनाया था, जिस पर गुड़ियां रखी थीं—नन्ही-मुन्नी बच्ची, खरगोश, लोमड़ी, भेड़िया, भालू, पुआल का बछड़ा, लाल टोपी वाली लड़की।

यह सब हमने अपने हाथों बनाया था। मैं आकृतियां काटता था, तस्वीरें बनाता और चिपकाता था, बच्चे मेरा हाथ बंटाते थे। मैं उस वातावरण के सौंदर्यात्मक पहलू को बहुत महत्वपूर्ण समझता था, जिसमें बच्चे कथा-कहानियां सुनेंगे। कमरे में हर तस्वीर, प्रत्येक दृश्य-बिम्ब कहानियों के शब्दों के प्रति बच्चों की ग्रहणशीलता बढ़ाता था, कहानी के विचार को अधिक गहराई से उजागर करता था। कहानियों के कमरे में रोशनी का भी अपना महत्व था। जब राजकुमारी मेंढकी की कहानी सुनाई जाती, तो जंगल में छोटी-छोटी बत्तियां जलती थीं, कमरे में हरा झुटपुटा होता था, जो उस वातावरण का सृजन करता था, जिसमें कहानी की घटनाएं होती हैं।

कहानियों के कमरे में मैं बच्चों को बहुत ज्यादा नहीं ले जाता था—हफ्ते में एक बार। सौन्दर्य-पिपासा की अतितृप्ति नहीं की जानी चाहिए। जहां अतितृप्ति होती है, वहां नाक-भौंह चढ़ाने की प्रवृत्ति, छिछोरी निराशाएं, बोरियत और वक्त जाया कराने के साधनों की खोज शुरू हो जाती है।

शरद और जाड़ों में सन्ध्या समय हम अपने कहानियों के कमरे में जाते हैं। सांझ के झुटपुटे में कथा-कहानियां सुनने में बच्चों के लिए विशेष आकर्षण होता है, ऐसा आकर्षण और किसी समय, उदाहरणतः दोपहर को नहीं आता। बाहर अंधेरा छाता जा रहा है, हम कमरे में रोशनी नहीं करते, झुटपुटे में बैठे रहते हैं। सहसा एक कोने में बनी झोंपड़ी में बत्ती जल उठती है, आकाश में तारे चमकने लगते हैं, जंगल के पीछे से चन्द्रमा निकलता है। कमरे में मन्द-मन्द प्रकाश फैल जाता है, कोनों में अन्धेरा और भी घना हो जाता है। मैं बच्चों को दुष्ट चुड़ैल की लोक-कथा सुनाता हूं। यों तो मेरे शब्दों में बच्चों के लिए कोई भी नई बात नहीं है, लेकिन उनकी आंखों की

विमुग्धता की चमक है। बच्चे कहानी के नायकों के दुख में दुखी होते हैं, खुशी में खुश होते हैं। उन्हें बुराई से नफरत होती है और भलाई का वे बड़े उत्साह से स्वागत करते हैं। दुष्ट चुड़ैल, भोली- भाली बच्ची अल्योन्का और हंसों की आकृतियां उनकी कल्पना में सजीव हो उठती हैं, उन्हें लगता है कि वे सब भी ऐसे जीव हैं, जो सोच सकते हैं, सुख-दुख महसूस कर सकते हैं। ये बाल-कथाएं बच्चों के लिए अजीबोगरीब, रोमांचक घटनाओं का विवरण ही नहीं होती हैं, उनके लिए तो यह एक पूरा संसार होता है, जिसमें वे रहते हैं, संघर्ष करते हैं, बुराई का अपनी अच्छाई से मुकाबला करते हैं। कथा-कहानियों में बच्चे की आत्मिक शक्ति को शब्दों में अभिव्यक्ति मिलती है, वैसे ही जैसे खेलकूद में गति और संगीत में धुन उसे व्यक्त करती है। बच्चा कहानी सुनना ही नहीं चाहता है, बल्कि सुनाना भी चाहता है, जैसे कि वह गीत सुनना ही नहीं, बल्कि गाना भी चाहता है, खेल दिखाना ही नहीं, खेलना भी चाहता है।

कुछ दिन बीतने पर बच्चे पूछने लगते हैं, ' 'कथा-लोक' कब चलेंगे?' हर्षमय क्षणों की प्रतीक्षा में बाल-हृदय पुलकित होता है। हम फिर सांझ के झुटपुटे में 'कथा-लोक' में जाते हैं, फिर से पहले मैं कहानी सुनाता हूं और उसके पश्चात बच्चे सुनाते हैं। ऐसे क्षणों में सबसे शर्मीले बच्चे भी निडर और दृढसंकल्प हो जाते हैं। जो बच्चे आम बोलचाल में दो शब्द भी ठीक तरह-जोड़कर नहीं बोल पाते, वे ही कहानी सुनते हुए धाराप्रवाह बोलने लगते हैं। नीना, पेत्रिक, ल्यूदा, स्लावा, वाल्या जैसे बच्चे, जिनके चिन्तन और वाणी के विकास में नई कठिनाइयां हैं, वे भी कहानियां सुनाते हैं।

हर बार जब हम 'कथा-लोक' में आते हैं, तो बच्चों का खेलने का मन करता है। लड़के-लड़कियां सभी अपना प्यारा खिलौना, गुड्डा-गुड़िया ढूंढ लेते हैं। खेल सृजनात्मक कार्य बन जाता है—लड़के-लड़कियां कथा-कहानियों के नायक बन जाते हैं और उनके हाथों में जो खिलौने होते हैं, वे उनके विचारों और भावनाओं को अधिक अच्छी तरह व्यक्त करने में सहायक होते हैं। एक बच्चा पुआल के बछड़े के उठा लेता है, दूसरा दादी-गुड़िया को, तीसरा दादा-गुड्डे को—और वे लोक-कथा के संसार में पहुंच जाते हैं। वे कहानी के शब्दों को ही नहीं दोहराते, बल्कि अपनी कल्पना से उसमें नई बातें जोड़ते जाते हैं। कुछ बच्चियां यों ही गुड़ियों से खेलना चाहती हैं। एक बच्ची गुड़िया को छोटे-से खटोले में लिटाकर उसे लाड़-प्यार करती है, लोरी सुनाती है। दूसरी बच्ची की नन्ही-मुन्नी गुड़िया बीमार पड़ गई है, वह उसकी टहल करती है।

मुझे इस बात पर कोई उलझन नहीं थी कि लड़के-लड़कियां कई बरसों तक गुड्डे-गुड़ियों से खेलते रहे। यह कोई 'बचपन' नहीं है, जैसा कि कुछ अध्यापक सोचते हैं। गुड्डे-गुड़ियों में बच्चे उनका सजीव बिंब देखते हैं, जिन्हें फ्रांसीसी लेखक सेंट-एक्जुपेरी

(1900-1944) के शब्दों, वे 'अपना बनाना' चाहते हैं। हर बच्चा यह चाहता है कि उसका अपना कोई हो, जिसे वह बेहद प्यार करे। मैं बड़े ध्यान से यह देखता था कि बच्चों और उनके प्यारे गुड्डे-गुड़ियों के बीच कैसे आत्मिक सम्बन्ध बनते हैं। मैं इस बात पर खुश था कि लड़के भी काफी दूर तक गुड्डे-गुड़ियों को बीच कैसे आत्मिक सम्बन्ध बनते हैं। मैं इस बात पर खुश था कि लड़के भी काफी देर तक गुड्डे-गुड़ियों से खेलते रहे थे। कोस्त्या का प्यारा गुड्डा था—बूढ़ा मछेरा। गुड्डे की टांग बार-बार टूट जाती थी, आखिर कोस्त्या ने लकड़ी की टांग लगा दी और साथ ही मछेरे के हाथ में गांठदार लाठी भी थमा दी। अब वह लाठी के सहारे नदी पर मछली पकड़ने जाता था। कोस्त्या को अपने बूढ़े दोस्त से बातें करने का शौक था—वह उसे बताता था कि कहां कौन-सी मछली होती है। लरीसा की प्यारी गुड़ियां थीं—दादा और पोती। लरीस ने दादी के लिए ऐनक बना दी, उसके पैरों तले गरम नमदा बिछा दिया, कंधों पर दुशाला ओढ़ दिया; वाल्या के पास भी दो गुड़ियां थीं—छोटी-सी बिल्ली और चुहिया। वाल्या हर हफ्ते बिल्ली के गले में नया रिबन बांधती थी और चुहिया के लिए न जाने क्यों हरा बिछौना ले आई थी।

'कथा-लोक' में बच्चे कभी कल्पना की उड़ानें भरते न थकते थे। किसी नई वस्तु को देखते ही उनकी कल्पना-शक्ति उसे किसी दूसरी वस्तु के साथ जोड़ देती, उनके बारे में अजीबोगरीब बातें बच्चों को दिमाग में उठतीं, कल्पना उड़ानें भरने लगतीं, विचारों की धारा फूट निकलती, आंखें चमकने लगतीं, और वाणी-सरिता मुक्त होकर बहने लगती। इस बात को ध्यान में रखते हुए मैं यह कोशिश करता था कि 'कथा-लोक' के अलग-अलग कोनों में तरह-तरह की ऐसी चीजें रखी हों, जिनके बीच कोई वास्तविक या काल्पनिक सम्वन्ध स्थापित किया जा सके। मुझे यही चिन्ता थी कि बच्चे कल्पना करें, सृजन करें, नई-नई कहानियां रचें। एक कोने में एक टांग पर खड़े बगले के पास ही छोटा-सा, सहमा-सहमा-सा बिलौटा रखा हुआ था। बच्चों ने इन दोनों के बारे में कई कहानियां गढ़ीं। एक जगह छोटी-सी नाव रखी हुई थी और उसके पास ही मेंढक बैठा था—इन्हें तो देखते ही किसी कहानी में जोड़ने को मन होता था। एक छोटा-सा भालू मांद में से झांक रहा था और पास ही मच्छर और मक्खी थे, जो भालू की तुलना में बेहद बड़े थे। (बाल-कथाओं में ऐसा संभव है), एक छोटा-सा सूअर और उसके पास साबुन और पानी की बाल्टी पड़ी हुई थी—यह सब देखकर बच्चे मुस्कराते ही नहीं थे, बल्कि यह उनकी कल्पना-शक्ति को जगाता था।

जब मैं अपने इस प्रयास में सफल रहता था कि ऐसा बच्चा, जिसके चिन्तन में गम्भीर कठिनाइयां थीं, वह कोई कहानी गढ़ ले, अपनी कल्पना में आस-पास की

कुछ चीजों के बीच सम्बन्ध जोड़ ले, तब मैं पूरे विश्वास के साथ यह कह सकता था कि बच्चे ने सोचना सीख लिया है। मैं पहले भी इस बात का जिक्र कर चुका हूं कि वाल्या के चिन्तन को सक्रिय बनाना और स्मरण-शक्ति सुदृढ़ करना कितना कठिन कार्य था—उसके चिन्तन को सक्रिय बनाने का एक साधन था—चारों ओर के संसार की वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच सम्बन्धों के सहसा दिखाई दे जाने पर बच्ची के मन में उठने वाली विस्मय-विमुग्धता की भावना। एक दूसरा उतना ही महत्वपूर्ण साधन था—कथा-कहानियां। वाल्या बहुत देर तक कोई कहानी खुद नहीं सोच सकी थी और मैं इस बात पर परेशान था। पढ़ाई के तीसरे साल में कहीं वाल्या ने मेंढकी, नाव और मछली की कहानी बनाई। यह रही वह कहानी, 'मेंढकी ने देखा नदी के किनारे नाव खड़ी है। नाव मछेरे-दादा की थी। वह उसे नदी के किनारे खड़ी करके गांव में रोटी लेने गए हुए थे। मेंढकी का नाव में सैर करने का मन हुआ। वह अपने डबरे में से निकलकर नाव में जा चढ़ी और चप्पू सम्भाल लिया। तभी नदी में से एक मछली बोली, 'मेंढकी री मेंढकी, यह तू क्या कर रही है ? तू तो छिछले डबरे में रहती है, मगर नाव को गहरा पानी चाहिए।' मेंढकी ने मछली की बात सुनी और नाव को अपने डबरे की ओर बढ़ा दिया। नाव बोली, 'मेंढकी, मेंढकी, तू मुझे कहां ले जा रही है ?' मेंढकी ने जवाब दिया, 'अपने डबरे में। आज सारे मेंढक देख लेंगे कैसे मैं नाव चलाती हूं।' नाव मुस्करा दी और मन ही मन सोचने लगी, 'अभी दादा आएंगे, तुझे नाव चलाना सिखा देंगे।' बड़ी मुश्किल से मेंढकी नाव को डबरे में घसीट लाई। नाव कीचड़ में फंस गई और आगे बढ़ती ही नहीं थी। मेंढकी ने बड़ा जोर लगाया, पर नाव अपनी जगह से टस से मस न हुई। उधर सारे मेंढक-मेंढकियां डबरे में से निकल आए थे—मेंढकी ने डींग जो हांकी थी, 'देखो, मैं कैसे नाव चलाती हूं।' अब मेंढकी बहुत शर्मिंदा हुई, वह डबरे में कूद पड़ी और चारों ओर कीचड़ उछला। सारे मेंढक-मेंढकियां जोर-जोर से हंसने लगे। तभी मछेरे-दादा आ गए। वह नाव डबरे से खींच ले गए। मेंढक-मेंढकियां डर के मारे हरी-हरी काई में जा छिपे। शाम को हिम्मत करके वह बाहर निकले और फिर खिल-खिलाकर हंसने लगे। तब से रोज रात को वे हंसते हैं—शाम से सुबह तक दलदल में मेंढकों की टर्र-टर्र होती रहती है। वे शेखीबाज मेंढकी पर हंसते हैं।'

कहानियां रचना बच्चों के लिए काव्यमय सृजन की एक सबसे रोचक विधा है। साथ यह बौद्धिक विकास का महत्वपूर्ण साधन है। अगर आप चाहते हैं कि बच्चे रचना करें, कलात्मक बिंबों का सृजन करें तो अपनी सृजन-ज्वाला की कम से कम एक चिनगारी ही बाल-चेतना में पहुंचा दीजिए। अगर आप स्वयं नहीं कर सकते हैं या आप बच्चों की अभिरुचियों के संसार में उतरना व्यर्थ बात समझते हैं, तो कुछ

नहीं हो सकता।

'कथा-लोक' में तीना का अपना प्यारा गुड्डा था—ढलाई कारखाने का मजदूर। उसके चेहरे पर पिघले लोहे की चमक थी। बच्चों को ढलाई कारखाने के मजदूरों से हमारी भेंट याद रही थी और अब, तीन साल बाद उसने अग्निल नदी की कहानी रची थी—

'विशाल भट्ठी के सामने महाबली पुरुष खड़ा है। उसने लोहा गलाया है। लोहा उबल रहा है, उसमें बुलबुले उठ रहे हैं। महाबली पुरुष भट्ठी का पट खोलता है और अग्निल नदी बह निकलती है। वह बहती जाती है और कहती जाती है, 'लोगो, देर नहीं करो, जल्दी से तपा लोहा ले लो और उससे वे सब चीजें बना लो जो तुम्हें चाहिए।' सयाने मजदूर अग्निल नदी के पास आते हैं, पिघला लोहा लेते हैं, उसे रेत में उंडेलते हैं और लोगों के लिए जरूरी चीजें बनाते हैं।'

फासिज्म के विरुद्ध युद्ध और सोवियत जनता की वीरतापूर्ण विजय ने हमारे जनगण के सारे आत्मिक जीवन पर, उसकी स्मृति में गहरी छाप छोड़ी है। मातृभूमि की रक्षा करने वाले वीर बच्चों की कल्पना में परीकथाओं के महाबली पुरुषों के समान हैं। बच्चे उनके बारे में बड़ी ज्वलंत और भावपूर्ण कहानियां रचते हैं। हमारे जनगण के महावीरों की जितनी भी कहानियां बच्चों ने बनाईं, उन सब में सोवियत लोगों के साहस, उदत्तता और अजेयता का विचार पिरोया गया था। दान्को की रची एक कहानी देखिए—

'मां बेटे को फौज में विदा करा रही थी। उसने बेटे से कहा, 'बेटा, अपनी जन्मभूमि की मुट्ठीभर मिट्टी साथ ले लो। सदा याद रखना कि तुम्हें इसकी रक्षा करनी है!' बेटे ने अपनी जन्मभूमि की मुट्ठीभर मिट्टी रेशम की लाल गुत्थी में भर ली। वह इस गुत्थी को सदा सीने से लगाए रखता था। दुश्मनों ने हमारे आदेश पर हमला कर दिया। बेटे ने सीमा पर दुश्मनों का सामना किया, वह उन पर मशीनगन से गोलियां बरसा रहा था, दुश्मन नदी में गिर रहे थे। बेटा एक कदम भी पीछे नहीं हटा। अचानक दुश्मन की गोली उसके सिर में आ लगी, आंखों में खून भर गया, हाथ कमजोर पड़ गए। तभी उसे अपने घर की मिट्टी की याद आई। लाल गुत्थी को छूते ही उसके हाथों में असाधारण शक्ति आ गई। महावीर फिर से गोलियां चलाने लगा, दुश्मन नदी में डूब गए। तभी सहायता भी आ गई—तेज विमान और शक्तिशाली टैंक।'

मेरे पास अनेक ऐसी कहानियां लिखी हुई हैं, जो बच्चों ने सांझ के झुटपुटे में रची थीं। मेरे लिए ये कहानियां विचारों की ज्वलंत शिखाओं के रूप में प्रिय हैं, जो मैं बाल-हृदयों में जाग सका था। अगर बच्चे कहानियां न रचते, यह सृजनात्मक कार्य

न करते, तो अनेक बच्चों की वाणी में प्रवाह न होता, उसका चिन्तन अव्यवस्थित होता। मैंने यह पाया कि बच्चों की सौंदयबोधात्मक भावनाओं और शब्द-भण्डार के बीच सीधा सम्पर्क है। सौन्दर्य अनुभूति शब्दों को भावनात्मक रंग प्रदान करती है। कहानी जितनी दिलचस्प होती है, कहानी सुनते समय बच्चों का परिवेश जितना अधिक असाधारण होता है, उनकी कल्पना की उड़ान उतनी ही सशक्त होती है और उनके रचे बिंब उतने ही अप्रत्याशित होते हैं। सांझ के झुटपुटे में मेरे छात्र ने दसियों कहानियां रचीं, जिन्हें 'सांझ के झुटपुटे की कहानियां' शीर्षक हस्तलिखित संग्रह में बांधा गया है।

'सांझ के झुटपुटे की कहानियों' में पशु-पक्षियों और फूलों-पौधों के बारे में कई रोचक कहानियां हैं। फूलों की कहानियां रचने में बच्चों को भी और मुझे भी बड़ा आनन्द मिला। मैं बच्चों को इन्सान के भावनात्मक जीवन को बारे में बताता था, यह बताता था कि कैसे लोग अपनी भावनाओं के फूलों के बारे में गीतों और किंवदंतियों में व्यक्त करते आए हैं। मैं कहानी की शुरुआत करता था और आगे बच्चे अपनी कल्पना से अनोखे, सजीव बिंबों का सृजन करते चले जाते थे।

हर दो-तीन महीने बाद हम 'कथा-लोक' के हर कोने में नई सजावट करते थे, प्लाईवुड से नई आकृतियां, पेड़, झाड़ियां क़ाटते थे, परी-कथाओं के महल और झोंपड़ियां बनाते थे। बच्चों ने पेपर-माशे से कहानियों के नायकों की आकृतियां बनाना सीख लिया। इससे कहानियों की दुनिया और भी समृद्ध हो गई। हमने उक्राइनी लोक-कथा 'भाई इवान', झुकोव्स्की की 'सोती रानी', अक्साकोव की 'लाल फूल', दाल की 'पैने दांतों वाली चुहिया और अमीर गौरैया', गार्शिन की 'मेंढकी की यात्रा', डेनमार्क के हांस एंडरसन की 'बर्फ की रानी', जर्मनी के जैकब ग्रीम और विल्हेल्म ग्रीम की 'ब्रेमन को गवैये', फ्रांस को शार्ल पेर्रो की 'निद्रामग्न सुन्दरी', रूसी लोक-कथा 'सुन्दरी मार्या और वान्या', स्वीडन की लोक-कथा 'घर की कील' तथा जापानी लोक-कथा 'कुबड़ी गौरैया' के लिए आकृतियां बनाईं। जिस तरह हमें खुशियां प्रदान करने वाले प्रिय व्यक्ति की छवि हमारी चेतना में सदा को लिए अंकित हो जाती है, उसी तरह बच्चों के आत्मिक जीवन में इन कहानियों ने अपना स्थान बना लिया। बच्चों को जीवनभर के लिए इन कहानियों का एक-एक शब्द याद हो गया, जबकि उनसे कभी किसी ने इन्हें याद करने को नहीं कहा। जब शब्द अपने अद्वितीय सौन्दर्य से, अपनी छटाओं से बाल-हृदय को उत्तेजित करते हैं, तो वे सदा के लिए याद हो जाते हैं। इससे स्मरण-शक्ति पर कोई जोर नहीं पड़ता, उल्टे वह इससे और भी तीव्र हो जाती है।

पहली बार किसी नई कहानी को कहना-सुनना बच्चों के जीवन में बहुत बड़ी घटना होती है। मैं कभी नहीं भूलूंगा कि कितने उत्साह, उमंग के साथ बच्चों ने

एंडरसन की कहानी 'बर्फ की रानी' के लिए अपने 'कथा-लोक' में सजावट की थी। तब बच्चे दूसरी कक्षा में पढ़ते थे। कहानी की घटनाएं ढलवां छातों वाले मकानों, ऊंचे-ऊंचे टीलों के बीच बने बर्फ की रानी के महल में होती हैं। बर्फीले मैदानों में हिम के ढेरों के बीच हिरन तेजी से दौड़ता जाता है। बच्चों ने यह सब अपने हाथों से बनाया। जाड़े की सन्ध्या को सब बच्चे 'कथा-लोक' में इकट्ठे हुए। मकानों की खिड़कियों में रोशनी हो गई, आसमान से बर्फ गिर रही थी, हमारे चारों ओर सांझ की झुटपुटा था। बच्चे सांस रोके कहानी सुन रहे थे....कहानी खत्म हो गई, पर बच्चों ने फिर से सुनाने का अनुरोध किया। जितनी बार बच्चों ने कहा, उतनी बार मैंने कहानी सुनाई। शब्दों के प्रति बच्चों का यह आकर्षण, यह विमुग्धता मेरे लिए अमूल्य उपहार थे। बच्चे बार-बार 'बर्फ की रानी' की कहानी सुनना चाहते थे, इसलिए नहीं कि उन्हें उसके शब्द याद करने थे, बल्कि इसलिए कि वे उनके लिए आश्चर्यजनक संगीत की तरह ध्वनित होते थे।

शिक्षक सदा यह सोचता रहता है—किस तरह बच्चा को अपनी मातृभाषा का गहन ज्ञान प्रदान किया जाए, मातृभाषा के शब्दों को किस तरह उसके आत्मिक जीवन का ऐसा अंश बनाया जाए कि तेज छेनी भी और विविधतापूर्ण रंग-पट्टिका भी और सत्य का ज्ञान पाने का सूक्ष्म उपकरण भी बन जाएं। भाषा चिन्तन की, विचारों की भौतिक अभिव्यक्ति है और बच्चा उसे केवल तभी जान सकेगा, जबकि अर्थ के साथ-साथ वह उज्ज्वल भावनात्मक रंगत को भी, शब्दों में स्पंदित होते संगीत को भी ग्रहण करेगा। शब्द के सौन्दर्य की अनुभूति के बिना बच्चे की बुद्धि उसके अर्थ के गूढ़ पहलुओं को नहीं समझ पाएगी। सौन्दर्य की अनुभूति तो कल्पना की उड़ान के बिना, उस सृजन में, जिसका नाम है। बाल-कथाएं, बच्चे के भाग लिए बिना हो ही नहीं सकती। बाल-कथाएं सक्रिय सौन्दर्यबोधात्मक सृजन हैं, जिसमें बच्चे के आत्मिक जीवन के सभी क्षेत्र भाग लेते हैं—उसकी बुद्धि भावनाएं, कल्पना-शक्ति और इच्छाबल। कहानी कहने के साथ यह सृजन आरम्भ होता है और इसका उच्चतम शिखर तब होता है, जब बच्चे कहानी को खेलते हैं।

हमारे 'कथा-लोक' में ही कठपुतली थियेटर और नाटक मण्डली का जन्म हुआ। यहां बच्चों ने पहली बार एक उक्राइनी लोक-कथा खेली, जिसमें उसके दस्ताने में चूहा और दूसरे बहादुर जानवर मिलकर रहने लगते हैं। फिर बड़े जोश के साथ बच्चों ने राजकुमारी मेंढकी की कहानी और कुबड़ी गौरैया की जापानी लोक-कथा खेली। चौथी कक्षा में बच्चों ने मिलकर संगीतकार टिड्डी की कहानी बनाई और उसकी भूमिका अदा की।

'कथा-लोक' में मैंने बच्चों को पहली बार राबिनसन क्रूजो की कहानी, 'म्यूनहाजन

के कारनामे', 'गलीवर की यात्राएं', जार सल्तान की किस्सा' और 'यान्को संगीतकार' कहानी—ये सब पुस्तकें पढ़कर सुनाईं। बच्चे जीवनभर जाड़ों की उन सन्ध्याओं को नहीं भूलेंगे, जब खिड़की के बाहर बर्फीली आंधी चल रही होती थी और वे राबिनसन क्रूजो के साथ दुर्घटनाग्रस्त जहाज में से बचकर सूने द्वीप पर चढ़ते थे, उसके साथ मिलकर प्रकृति के साथ संघर्ष की सब कठिनाइयां सहते थे। 'कथा-लोक' में हमने एंडरसन, तोलस्तोय, उशीन्स्की, ग्रीम बंधुओं और सोवियत लेखकों कोर्नेई चुकोव्स्की और समुईल मर्शाक की लिखी सारी बाल-कथाएं पढ़ डालीं। कथा-कहानियों में भलाई और बुराई, सच्चाई और झूठ, ईमानदारी और बेईमानी के जो नैतिक विचार निहित होते हैं, उन्हें इन्सान केवल तभी आत्मसात करता है, जबकि ये कथा-कहानियां बचपन में पढ़ी गई हों। कथा-कहानियां तो होती ही बच्चों के लिए हैं।

हमारा पठन-पाठन भी मौलिक ही था—यहां चर्चित बाल-कथाएं और कहानियां मुझे कंठस्थ थीं। किताब मैं केवल इसलिए हाथ में लेता था कि बच्चे उसमें बने चित्र देख सकें। कहानियां सुनने-सुनाने की ही भांति, पठन-पाठन भी बच्चों में नेक, मानवीय भावनाएं जगाने, उन्हें विवेकशील बनाने का सशक्त साधन था।

बचपन में पठन-पाठन सर्वप्रथम हृदय को संवारता है—यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है—उदात्त मानवीय विचार बाल-हृदय के अन्तरंग तारों को स्पर्श करते हैं। उदात्त विचारों को उजागर करने वाला शब्द बाल-हृदय में सदा के लिए मानवीयता के कण छोड़ जाता है, और मिलकर ही उसका ईमान, उसके अन्तःकरण का स्वर बनते हैं।

अजूबों की टापू

असाधारण बातें—यात्राओं और कारनामों का रोमांच, प्रकृति की अंधशक्तियों के साथ संघर्ष—यह सब बच्चों को आकर्षित करता है। जब मैंने बच्चों को पहली बार राबिनसन क्रूजो की कहानी सुनाई, तो उनका मन हुआ कि वे यात्रियों का खेल खेलें, समुद्री लहरों का शोर और झरने का गर्जन सुनें। बच्चों ने अपने 'अजूबों का टापू' बनाने का फैसला किया—एक ऐसी रहस्यमयी जगह, जहां बच्चे खेलों की दुनिया में रह सकें। यह 'टापू' हमने बबूल के और दूसरे झाड़ों के बीच बनाया। यहां हमने राबिनसन की झुग्गी बनाई, उसके चारों ओर जंगली जानवरों से रक्षा के लिए डण्डों की बाड़ लगाई। कहानी में जैसे चूल्हे का जिक्र है, वैसा ही चूल्हा भी बनाया। झुग्गी में एक छोटी-सी खिड़की भी बना दी, जिसमें से हम 'समुद्र' के असीम विस्तार को देखते थे, एक क्यारी खोदी और उसमें गेहूं और जौ के दस-बीस दाने बो दिए। कोल्या अपने घर से बकरे को भी यहां लाता था—राबिनसन के पास भी तो बकरियां थीं। बच्चे कहीं से लकड़ी का एक पुराना गोल पीपा, रस्सियां और ईंटें ले आए। पीपे के लोहे के छल्लों

से चाकू बनाए, रस्सियों से मछली पकड़ने का जाल। आदिम युग के शिकारियों की तरह हम सूखी लकड़ी के दो टुकड़ों को रगड़-रगड़कर आग निकालते थे—क्या पता, राबिनसन के पास आग जलाने का और कोई साधन था या नहीं।

जिसे गड्ढे में से हमने झुग्गी बनाने के लिए मिट्टी ली थी, उसमें बारिश का पानी भर गया और छोटा-सा पोखर बन गया। बच्चे पानी में उछलते-कूदते थे; उनकी कल्पना में यह असीम महासागर था। अगर समुद्र है, तो जहाज भी होने चाहिए—बच्चों को कहीं पर लकड़ी का टुकड़ा मिल गया और वे उससे नाव बनाने में लग गए। यह काम आसान नहीं था, लेकिन बच्चों ने उसे पूरा करके छोड़ा, नाव पर पाल लगाए गए और 'जहाज' यात्रा पर निकला।

एक छोटे-से टीले के पीछे, जो बच्चों की कल्पना में विशाल पर्वत बन गया, हमने लिलिप्यूशियनों का देश बनाया। प्लाईवुड और सरकंडों से इस देश की राजधानी बनाई, चिकनी मिट्टी से घोड़े, गायें और भेंड़ें बनाईं, रूसी लोक कथाओं के महावीर इल्या मूरोमेत्स और उसके दुश्मन 'सीटीमार लुटेरे' की आकृतियां बनाईं। ये आकृतियां झाड़ियों के बीच रख दीं, यहां बच्चों के लिए प्राचीन रूस का घना जंगल था। यहां हम गर्मियों की सन्ध्याओं को आते थे, सब बच्चे निडर, साहसी महावीरों की कहानी सुनाना चाहते थे।

घनी झाड़ियों के पीछे, खड्ड की ढलान में हमें एक छोटा-सा गड्ढा दिखाई दिया —यह दुष्ट राक्षस की गुफा थी, वहां गुफा के अंधकार में सुन्दरी राजकुमारी बन्दी थी।

जब मौसम अच्छा होता था और हम छुट्टी के दिन कहीं दूर की यात्रा पर नहीं जाते थे, तब हम यहां 'अजूबों की टापू' पर समय बिताते थे। राबिनसन की झुग्गी के पास ही हमने टहनियों और घास-पात की एक झोंपड़ी बनाई। वह बच्चों की प्यारी जगह थी, जहां से कल्पना के पंख उन्हें कथा-कहानियों की दुनिया में ले जाते थे। कथा-कहानियों के नायक हमारे पास ही थे, और जब धरती पर रात उतरती थी, तो हमें लगता था, मानो हम 'सीटीमार' की कर्णभेदी सीटी, राक्षस की आहें-कराहें और बूट पहने बिल्ले के सम्भल-सम्भलकर चलने की आहट सुन रहे हों। यहां पर बच्चों की कल्पना की लौ खूब तेज होती थी। यूरा, गोल्या, तीना, वीत्या ने यहां अनोखी कहानियां गढ़ीं। यहां का वातावरण ही कल्पना की उड़ान की प्रेरणा देता था। विचारों की धारा बिना रुके बहती चली जाती थी, बच्चे अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए बड़े सटीक, सजीव शब्द ढूंढ लेते थे। सेर्योझा ने सुनहरे इन्द्रधनुष के बारे में यह कहानी बनाई थी—

'एक बार शाम के समय भीमकाय सुनार सूरज के पास आकर बोले, 'सूरज, सूरज, हमारे लोहे के हथौड़े टूट गए हैं, अब हम चांदी के तार कैसे कूटेंगे। हमें पृथ्वी

पर जाने दो, हम वहां से नए औजारों के लिए लोहा ले आएंगे।' सूरज ने सुनारों को जाने की इजाजत दे दी। भीमकाय सुनार लोगों की ओर चल दिए, पर काली घटाओं ने उनका रास्ता रोक लिया। सुनारों ने घटाओं के पीछे पृथ्वी को देखा, अरे बाप रे, वे तो बहुत ही ऊपर थे। अब नीचे कैसे उतरें ? वापस सूरज के पास जाकर वे कहने लगे, 'सूरज, सूरज, हम धरती पर कैसे उतरें ? कोई पुल बना दो।' सूरज ने अपनी किरणें काली घटाओं के आर-पार फैला दीं और आकाश में सुनहरा पुल चमकने लगा। धरती पर लोगों को इन्द्रधनुष दिखाई दिया। सुनार इस पुल से उतरकर लोगों के पास आए, उनसे लोहा लिया और फिर पुल पर चढ़कर वापस चले गए। सुनारों को लौटा देखते ही सूरज ने अपनी सुनहरी किरणें समेट लीं, इन्द्रधनुष खत्म हो गया। तब से जब भी काली घटाएं छाती हैं, सूरज भीमकाय सुनारों को लोहा लेने पृथ्वी पर भेजता है। जाड़ों में सुनहरा इन्द्रधनुष नहीं होता, क्योंकि दिन छोटे होते हैं और सुनार बहुत कम ही तार कूटते हैं।'

मैं इस बात पर बहुत खुश था कि यहां सभी बच्चों ने अपनी-अपनी कहानी बनाई। ग्रीष्म ऋतु की एक शान्त सुहावनी सन्ध्या सदा के लिए मेरे स्मृति-पटल पर अंकित हो गई है। सूरज डूब गया था, आकाश भस्मवर्ण-सा हो गया था। जब ग्रीष्म ऋतु अपनी भरपूर जवानी में होती है, उन दिनों हमारे यहां कुछ ऐसी सन्ध्याएं होती हैं। लगता है, मानो आकाश स्वयं ही आलोकित हो रहा है। ऐसी सन्ध्याओं में गोधूलि की वेला अधिक लम्बी होती है, देर तक तारे नहीं निकलते....बच्चे प्राकृतिक सौन्दर्य पर विमुग्ध हुए चुपचाप बैठे थे। ऐसे क्षणों में कल्पना की लौ विशेषतः प्रखर हो उठती है। सहसा नीना अपनी कहानी सुनाने लगी–

'सूरज अपने जादुई बाग में आराम करने चला गया। वह आराम करने लेटा, पर आंखें बन्द करना भूल गया। भीमकाय सुनारों ने सोचा अभी दिन ही है। वे चांदी के तार कूटते ही जा रहे थे। तार बारीक धूल में बदल गए। यह रजत धूल आसमान में फैल गई, अब वह चमक रही है....'

यह आश्चर्यजनक कहानी सुनते हुए मेरा दिल अभिभूत हो उठा। कितनी खुशी की बात है कि प्राकृतिक सौन्दर्य पर विमुग्धता, कथा-कहानियों के रोमांचकारी बिंब–यह सब बाल-चेतना में विचारों को प्रस्फुटित करता है। मैं नहीं जानता कि इसका कारण क्या है, परन्तु जून की सबसे लम्बी सन्ध्याओं में, जब धूसर आसमान रहस्यमयी चादर सा लगता है–ऐसे क्षणों में बच्चों की कल्पना शक्ति विशेषतः सक्रिय हो उठती थी।

तीसरी कक्षा के बाद बच्चों ने 'अजूबों के टापू' पर 'छापामार टुकड़ी का हेडक्वार्टर' बनाना चाहा। जैसा कि होना भी चाहिए 'हेडक्र्वाटर' जमीन में एक

तहखाने में था। इसके लिए गड्ढा खोदने और उसे ठीक-ठाक करने में बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने हमारी सहायता की। बच्चों का रोचक खेल शुरू हुआ, जो कई महीनों तक चला। बच्चे रात को खेलना चाहते थे। वे 'शत्रु' की टोह लेने जाते थे, कुतुबनुमे का इस्तेमाल करना सीख गए। बच्चों ने लकड़ी की 'मशीनगनें' और 'सबमशीनगनें' बना लीं, सैनिक कार्रवाई पर निकलने से पहले बिल्कुल फौजी ढंग से आदेश दिए जाते थे।

प्राथमिक विद्यालय के अन्तिम वर्ष में बच्चे रूसी लेखक पावेल बाझोव की पुस्तक 'मैलाकाइट मंजूषिका' से बहुत प्रभावित हुए। जब मैं बच्चों को उराल पर्वत में पाए जाने वाले रत्नों की और उन गुफाओं की अनुपम छटा की कहानियां सुनाता था, जिनमें 'ताम्र पर्वत की उदार रानी' के अथाह भण्डार हैं, तो बच्चों की आंखें हर्षोत्साह से चमकने लगती थीं। उन दिनों बच्चों का मन हो रहा था कि कोई सुन्दर, रहस्यमयी और रोमांचकारी काम करें। किसी को यह सूझा कि क्यों न 'पाताल महल' बनाया जाए। हम कांच के लाल, पीले, नीले, हरे, बैंगनी, नारंगी, आसमानी, टुकड़े इकट्ठे करने लगे। इन्हें हमने अपनी गुफा की दीवारों में लगा दिया। गुफा में जब छोटा-सा बल्ब जलता था और दीवारों पर चमकीला इन्द्रधनुष खिल उठता था, उस वक्त बच्चों में जो उल्लास, जो विस्मय-विमुग्धता की भावना संचारित होती थी, उसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। यहां नई-नई कहानियां बनीं, यहां एक बार फिर मैंने प्रत्यक्षतः यह देखा कि बौद्धिक शक्ति के विकास में, उसे सुदृढ़ बनाने में सौन्दर्यबोधात्मक भावनाओं की भूमिका कितनी विशाल है। मेरे देखते-देखते वाल्या, पेत्रिक और नीना की चिन्तन-शक्ति में नया निखार आया—बच्चों ने अपनी कहानियां बनाईं, जिनमें कल्पना की समृद्धता देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। यहीं पर ल्यूदा ने भी कहानी रची। मैं समझ गया कि इस बच्ची के चुप-चुप रहने का कारण उसका मंथर बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि उसका सपनों में खोए रहने, विचारमग्न रहने का स्वभाव है।

संगीत बच्चों को संसार का सौन्दर्य दिखाता है

'खुशियों के स्कूल' की ही भांति प्राथमिक कक्षाओं में हम प्रकृति का संगीत सुनते थे, जो शब्दों की भावनात्मक रंगत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत है तथा धुनों के सौन्दर्य को समझने और अनुभव कर पाने की कुंजी है। प्रकृति का संगीत सुनते हुए बच्चे समूह-गान के लिए भावनात्मक रूप से तैयार होते थे। मैं यह प्रयत्न करता था कि जो गीत हम गाएंगे उसके समस्वर संगीत बच्चे प्रकृति में पहचानें, सुनें।

स्कूल से थोड़ी ही दूर एक रमणीय स्थल है। सन्ध्याकालीन गगन यहां सरोवर के दर्पण के प्रतिबिंबित होता है, चरागाह से पंछियों के गीत के स्वर आते हैं, टिड्डे

गुंजायमान गीत से सन्ध्या की शीतलता का स्वागत करते हैं। उक्राइनी संगीतकार स्तेपोवोई का गीत 'मेरी सन्ध्या वेला' सीखने से पहले हमने कई बार यहां आकर प्रकृति का संगीत सुना। इस गीत में सन्ध्या वेला के सौन्दर्य की अनुभूति को अद्वितीय कौशल के साथ व्यक्त किया गया है। इसकी धुन में बच्चे उस संगीत को पहचानते थे, जिसने उन्हें ग्रीष्म की शान्त सन्ध्याओं में मोहित किया था। यहीं, इसी रमणीय जगह पर हमने यह गीत सीखा। बच्चे गाना चाहते थे। फिर कुछ सप्ताह पश्चात स्कूल के 'संगीत-कक्ष' में बच्चों ने यही गीत गाया। बच्चों को सन्ध्या वेला का मनोहारी दृश्य याद हो आया था, उनके चेहरे हर्ष से प्रदीप्त हो उठे।

जंगल में हम धुपहली दुपहरी का संगीत सुनते थे। ऊंचे-ऊंचे पेड़ों पर पत्तियों का मन्द-मन्द मर्मर होता है, फाख्ता गुटरगूं करती है, पेड़ पर कठफोड़वा ठक-ठक करता है, कोयल की कूक सुनाई देती है। इस संगीत से उत्पन्न भावनाओं के फलस्वरूप बच्चे रूसी संगीतकार आरेन्स्की के गीत 'कोयल' का सौन्दर्य समझ सके।

बच्चे बड़े शौक से निम्न संगीत रचनाएं मिलकर गाते थे—आस्ट्रियाई संगीतकार मोजर्ट की 'लोरी', चेक लोकगीत 'मैगपाई', चाइकोव्स्की का 'बाल-गीत', श्पेयर का 'बकरी आई', वसील्येव-बुगलाई का 'शरद गीत', पोलिश लोकगीत 'पंछियों का गीत', लीसेन्को का 'लोमड़ी का गीत', इयोर्दान्स्की का 'टिटहरी का गाना', वेरीकोव्स्की का 'वोलोद्या उल्यानोव का छविचित्र', रोझ्देस्तेवेन्स्की के 'पायोनियरों का गीत', 'नन्हा ढोलची', 'लेनिन के बारे में गीत', फिलीप्पेन्को का 'मातृभूमि का गीत'। नियमतः बच्चे बिना किसी संगत के गाते थे। मुझे यह देखकर बड़ी खुशी होती थी कि सभी बच्चों को गाने का शौक है। बच्चों को कुछ गीत खासतौर पर पसन्द थे—दुनायेव्स्की का 'उड़ो, कबूतरो, उड़ो', मोजर्त की 'लोरी', सांदलेर का 'मां का गीत', उक्राइनी लोकगीत 'वसंती जल फैला', 'टीले पर हो रही कटाई', 'उक्राइनी स्तेपी में बहें हवाएं', रूसी लोकगीत 'नन्ही गई कुंज में घूमने', 'खुली सड़क', 'बगिया', बेलोरूसी लोकगीत 'दो कबूतर उड़ते गए', चेक लोकगीत 'गड़रिया', देश्किन का 'नीली रातों में भभकें अलाव', श्तोगारेन्को का 'चले जवान', क्रासेव का 'लेनिन का गीत', किश्को का 'हमें मातृभूमि प्यारी है', बोगुस्लाव्स्की का 'सीमा प्रहरी'।

बच्चों को अब अपने मन से ही इकट्ठे होकर गाने की जरूरत महसूस होने लगी। गीत उनके आत्मिक जीवन का एक अंश बनते जा रहे थे, वे उनके विचारों को भावनाओं से रंगते थे, उनमें मातृभूमि के प्रति तथा संसार के सौन्दर्य के प्रति प्रेम जगाते थे।

उक्राइनी लोकगीत 'टीले पर हो रही कटाई' से बच्चे बहुत प्रभावित हुए। यह गीत सुनकर उनकी कल्पना में हमारे जनगण के अतीत के बारे में, शत्रुओं के विरुद्ध

उसके वीरतापूर्ण संघर्ष के बारे में सजीव चित्र बनते थे। गीत की धुन बच्चों को मानो मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए संघर्ष के कठिन वातावरण में ले जाती थी, वे संसार को वैसे ही देखते थे जैसे कई सौ साल पहले हमारे पूर्वजों ने उसे देखा था। खेत में किसान फसल काट रहे हैं, रह-रहकर स्त्रियां-पुरुष क्षितिज की ओर चिन्तित नजरों से देखते हैं, उधर से किसी भी क्षण शत्रु आ सकता है और तब उन्हें हंसिया छोड़कर तलवार उठानी होंगी, अपने घर की, उन नन्हे बच्चों की, जो वहां अनाज के पूलों की छाया में लेटे हुए हैं, रक्षा करनी होगी। गीत और उनकी मनोहारी धुन में ही मनोमस्तिष्क तक इन चित्रों को पहुंचाने की क्षमता है। केवल गीत ही जन-मानस के सौन्दर्य को उजागर कर सकता है। अपने जनगण के गीत की धुन और शब्द ऐसी प्रबल शिक्षण शक्ति हैं, जो बच्चे को जनता के आदर्शों और आकांक्षाओं से परिचित कराती है।

मानव स्वभाव का एक गुण है—सूक्ष्मता और भावनात्मकता। यह गुण इस तरह व्यक्त होता है कि इर्द-गिर्द का संसार सुख-दुख भोगने की योग्यता को बढ़ाता है। ऐसे स्वभाव वाला आदमी दूसरे के दुख-दर्द और मुसीबतों को भुला नहीं सकता; उसकी अन्तरात्मा उसे इस बात पर विवश करती है कि वह दूसरे की सहायता करे। संगीत यह गुण विकसित करता है।

स्वभाव की भावनात्मक नैतिक और सौन्दर्यबोधात्मक दृष्टि से शिक्षित व्यक्तियों में पाई जाती है। इस गुण के फलस्वरूप हृदय नेक शब्दों, सीख, नसीहत, परामर्श के प्रति ग्रहणशील हो जाता है। अगर आप चाहते हैं कि शब्द जीना सिखाएं, कि आपके शिष्य भलाई करना चाहें, तो उनके तरुण हृदयों में सूक्ष्मता, भावनात्मक संवेदनशीलता परवान चढ़ाइए। तरुण हृदय पर प्रभाव डालने के अनेक साधनों में संगीत को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं। संगीत और नैतिकता—इस समस्या का गहन और विशद अध्ययन होना अभी शेष है।

गीत संसार की काव्यमय दृष्टि प्रदान करता है। मुझे याद है, एक बार हम एक लोकगीत गाने के बाद, जिसमें लोगों की गहन भावनाएं व्यक्त हुई हैं, हम स्तेपी में गए। हमारे सामने जहां तक नजर जाती थी, गेहूं का सागर था, क्षितिज पर आसमानी धुंधलके में टीले सिर उठाए खड़े थे, सुनहरी खेतों के बीच एक तंग-सा रास्ता बल खाता चला गया था, नीले आकाश में भरत पंछी गा रहा था। बच्चे जड़वत खड़े हो गए, मानो वे पहली बार अपनी जन्मभूमि के इस कोने को देख रहे थे। 'यह सब तो फसल काटते लोगों के गीत-सा है,' संवेदनशील वार्या ने कहा। मैं महसूस कर रहा था—इस क्षण हर बच्चे के मन में अपने लोकगीत के शब्द गूंज रहे हैं। गीत मानो जन्मभूमि के सौन्दर्य को नये रूप में दिखाता है, और यह सौन्दर्य पहले से भी अधिक अपना, अधिक प्रिय हो जाता है।

लोकगीत मातृभाषा के शब्दों को जनता की अमूल्य आत्मिक सम्पदा के रूप में बच्चों के सम्मुख उजागर करता था। गीत की बदौलत बच्चे शब्द की ध्वनि की सूक्ष्म छटाओं को ग्रहण कर पाते थे।

आरम्भ में हमारे पास वाद्य-संगीत की उन रचनाओं की काफी रिकार्ड नहीं थे, जिन्हें सुनना मेरे विचार में तोलस्तोय, चेखोव, गोर्की, कोरोलेन्को, गाइदार, चेकोव्स्की, सेन्केविच और जैक लंडन की कहानियां, पुश्किन, शेव्चेन्को की कविताएं तथा एंडरसन और ग्रीष्म बंधुओं की परीकथाएं पढ़ने के समान ही आवश्यक था। मैं यह मानता था कि संगीत के बिना मेरा शिक्षण-कार्य अधूरा होगा। मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि बचपन में ही इन्सान की अपनी प्रिय धुनें न हों। हमारा 'खुशियों का स्कूल' खुलने के समय ही स्कूल के अध्यापकों ने कुछ संगीत रचनाओं के रिकार्ड और टेप इकट्ठे कर लिए। हम इसे अमूल्य निधि मानते थे और हमें इस बात का खेद था कि हमारी इस निधि से बच्चों को मानवजाति की आत्मिक सम्पदा का पूरा परिचय नहीं मिल सकता। मेरे छात्रों की शिक्षा के पहले वर्ष के अन्त तक हमारे पास 27 संगीत रचनाएं थीं—इनमें 7 गीत थे और 20 वाद्य-संगीत रचनाएं। हम हफ्ते में दो बार अपने 'संगीत-कक्ष' में जाकर संगीत सुनते थे। कुछ धुनों और गीतों से बच्चे परिचित थे, 'खुशियों के स्कूल' में ही इन्होंने बच्चों के आत्मिक जीवन में अपना स्थान बना लिया था। चाइकोव्स्की का 'भरत पंछी का गीत', 'वसंत का पहला फूल', मोजर्ट की 'लोरी', शूमन का 'वीर घुड़सवार', ग्रीग का 'पहाड़ी राजा की गुफा में', लीसेन्को के बाल-आपेरा 'लड़ाकू बकरी' में से लोमड़ी, बकरी, नन्हें भेड़िए के गीत, उक्राइनी लोक-गीत 'कैसा अनोखा है आसमान', 'दुनेप्र का चौड़ा पाट' तथा 'सूरज डूबा, टीलों पर अंधेरा छाया'—ये सब रचनाएं बच्चों ने अनेक बार सुनीं।

बच्चों के साथ कार्य के चार वर्षों के दौरान हमारे रिकार्डों और टेपों की गिनती दुगनी हो गई। यह बहुत अधिक नहीं था, लेकिन मुझे संख्या की नहीं, बल्कि इस बात की परवाह थी कि मानवजाति की संगीत-निधि की श्रेष्ठतम रचनाएं (सर्वप्रथम उक्राइनी और रूसी संगीत रचनाएं) बच्चों के आत्मिक जीवन में अपना स्थान बना लें, कि बच्चे एक ही रचना को बार-बार सुनते हुए उसका रसास्वादन कर सकें, कि संगीत उनके चिन्तन पर और भावनात्मक जीवन पर अपनी छाप छोड़े।

बच्चा भले ही महीने में केवल एक नई संगीत धुन सुने, लेकिन ऐसे कि वह जीवनपर्यंत उसके लिए रसास्वादन का स्रोत रहे। मैं संगीत की अतितृप्ति से डरता था, नित नई संगीत रचना सुनने से बच्चों का मन-बहलाव भले ही होता, किन्तु उनके हृदय पर उसकी कोई छाप न पड़ती।

उपरोक्त रचनाओं के अलावा बच्चों ने चार बरसों के दौरान निम्न रचनाएं भी

सुनीं—ग्लीन्का के आपेरा 'रूसलान और ल्यूद्मीला' की 'चेर्नोमोर का मार्च', गूनो के आपेरा 'फाउस्ट' का मार्च, ग्रीग का 'नार्वे का नृत्य' और 'कोबोल्द', चाइकोव्स्की की धुनें—'हरी घास', 'नटक्रेकर' बैले से 'गड़रिया का नाच', 'परी द्राजे का नाच', 'काठ के सिपाहियों का मार्च', 'प्राचीन फ्रांसीसी गीत', 'बीमार गुड़िया', 'इतालवी गीत', 'बाल-गीत', 'कमारीन्स्काया' तथा 'राजहंस झील', बैले की 'नन्हे राजहंसों का नाच', रीम्स्की-कोर्साकोव के 'जार सल्तान का किस्सा' आपेरा में से 'भौंरे की उड़ान' तथा 'तीन चमत्कार', शूमन—'हंसमुख किसान'; ग्रीग—'ऐल्फो का नाच'; शूबर्ट—'ऐकोसेज'; दुनायेव्स्की—'मैनाएं आ गईं'; स्तेत्सेंको के आपेरा 'लोमड़ी, बिल्ली तथा मुर्गा' का एक अंश; लीसेन्को के आपेरा 'जाड़ा और वसंत' का एक अंश; बीथोवन—'बाबाक'; स्वीट्जरलैंड का लोकगीत 'कोयल'; पोलैंड का लोकगीत 'पंछियों का गीत'; उक्राइनी का लोकगीत 'पड़ोसिन', 'टीले पर पटसन उगे', 'ऊंचा टीला', हंगरी के लोकगीत 'बुलबुल', रूसी लोकगीत 'खेत में खड़ा भोज वृक्ष'; कबालेव्स्की का गीत 'पायोनियर टोली', ओस्त्रोव्स्की का 'पायोनियर', मुरादेली का पायोनियरों का अलाव'; 'कदम बढ़ाए चलो, साथियो' (एक पुराना क्रांति गीत, जिसका रूपांतरण लोबाच्योव ने किया है); 'गुलामी का सताया' (लेनिन का प्रिय गीत)।

संगीत सुनने से पहले मैं बच्चों को उस वास्तविकता या काल्पनिक चित्रों के बारे में बताता था, जो संगीत बिम्बों में प्रतिबिम्बित हैं। इस कहानी को मैं बहुत महत्व देता था, वह एक तरह से बच्चों को संगीत रचना ग्रहण करने के लिए तैयार करती थी। उदाहरणतः, 'परी द्राजे का नाच' धुन सुनने से पहले मैंने बच्चों को जर्मन लेखक होफमान की लिखी वह बाल-कथा सुनाई, जिसके कथानक के आधार पर चाइकोव्स्की ने बैले संगीत रचा। सुस्पष्ट, ज्वलंत शब्दों में मैंने बच्चों की कल्पना में हल्की- फुल्की, गरिमामयी उदार परी की तस्वीर खींचने की कोशिश की। मैंने बच्चों से कहा, 'तुम छोटी-छोटी बिल्लौरी घंटियों की टनाटन सुनोगे। यह संगीत परी के चारों ओर के संसार को चित्रित करता है। मैं एक अद्भुत महल के हल्के-फुल्के सुघड़ स्तम्भों की कल्पना करता हूं, जो उज्ज्वल प्रकाश में चमक रहे हैं।' बच्चों ने संगीत सुना और फिर यह बताने लगे कि वे परी के महल की कल्पना कैसे करते हैं। उनकी कल्पना में सरोवरों, फव्वारों, छायादार कुंजों और रहस्यमयी गुफाओं के चित्र उभरे थे। इन रोमांचक, कल्पनाजनित बिंबों के फलस्वरूप बच्चों को एक बार फिर संगीत सुनने की इच्छा हुई।

संगीत रचनाओं को, खासतौर पर ऐसी रचनाओं को, जिनसे बच्चे अपरिचित हों, समझाते हुए बड़ी सूझ-बूझ और कौशल से काम लेना चाहिए। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि संगीत की भाषा भावनाओं की भाषा है; सीधे-सादे, बिल्कुल साधारण

से शब्दों वाला लोकगीत भी धुन की बदौलत ही एक कलात्मक रचना लगता है। संगीत रचना के कलात्मक बिंबों का सार समझाने के लिए अध्यापक को यह ज्ञान होना चाहिए कि संगीतकार ने अपनी रचना में अभिव्यक्ति के किन साधनों का उपयोग किया है। अध्यापक की व्याख्या भी एक सम्पूर्ण कलात्मक कहानी ही होनी चाहिए। इस कहानी को सुनकर ही बच्चों में विभिन्न भावनाएं जागनी चाहिए, उनकी कल्पना में सजीव चित्र उभरने चाहिए।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि संगीत का सौन्दर्य विचारों का सशक्त स्रोत है। संगीत के प्रभाव में बच्चे की कल्पना में बनने वाले ज्वलंत बिम्ब चिन्तन को सजीव बनाते हैं, उसकी अनेक छोटी-छोटी धाराओं को एक सरित-प्रवाह में मिलाते हैं। बच्चों की कल्पना में जो चित्र बनता है, वे जो अनुभव करते हैं, उसे शब्दों में उतारने की कोशिश करते हैं। मंथर चिन्तन वाले बच्चों के लिए तो संगीत सुनना सचमुच ही विचारों का सशक्त स्रोत था। मैं यह चेष्टा करता था कि संगीत सुनने के पश्चात बच्चे सहज भाव से अपनी छापों को अपने शब्दों में व्यक्त करें।

'संगीत-कक्ष' में हम बांसुरी बजाते थे, अपनी प्यारी धुनें बजाना सीखते थे। दूसरी कक्षा में हमारी बांसुरी मण्डली में 9 मेरे छात्र थे और चार दूसरी कक्षाओं के छात्र। बच्चे खुद ही बांसुरियां बनाते थे। सेर्योझा, यूरा, तीना और लीदा ने बांसुरियां बनाने की दक्षता पा ली थी। वे उपवन में जाकर उपयुक्त टहनियां ढूंढते थे, फिर कटी हुई टहनियों को छाया में सुखाते थे, बांसुरी की आवाज परखते थे, उसे साफ और सुरीली बनाने की कोशिश करते थे। तीसरी कक्षा में हमें दो अकार्डियन और तीन वायलिनें मिलीं। यूरा, सेर्योझा, फेद्या, लीदा, कोल्या, तीना, लरीसा, सान्या और शूरा ने ये वाद्य बजाने सीखे।

प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा पूरी करते समय 19 बच्चों के घर पर अकार्डियन या वायलिन थे। हां, बच्चों ने बांसुरी को भी नहीं भुलाया था। कुछ बच्चों में संगीत के प्रति विशेष रुझान था, लेकिन मैं कुछ प्रतिभाओं को संवारना, निखारना ही अपना प्रमुख ध्येय नहीं समझता था, बल्कि यह कि सभी छात्रों को संगीत से प्रेम हो, कि वह सभी के लिए मन की प्यास बन जाए।

बचपन में जो कमी रह जाए, उसे तरुणाई में या इन्सान के वयस्क हो जाने पर तो बिल्कुल भी पूरा नहीं किया जा सकता। यह नियम बच्चे के आत्मिक जीवन के सभी क्षेत्रों पर और विशेषतः सौन्दर्यबोध शिक्षा पर लागू होता है। व्यक्तित्व के विकास के बाद के कालों की तुलना में बचपन में सौन्दर्य के प्रति ग्रहणशीलता, संवेदनशीलता कहीं अधिक गहरी होती है। प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यभार है बच्चों में सौन्दर्य-पिपासा विकसित करना, जो बहुत

हद तक बच्चे का सारा आत्मिक जीवन और समुदाय में दूसरों के साथ उसके परस्पर सम्बन्ध भी निर्धारित करती है। सौन्दर्य-पिपासा नैतिक सौन्दर्य की पुष्टि करती है और वह सब कुछ जो भोंडा है, कुरूप है, उसके प्रति मनुष्य को असहनशील बनाती है।

'हाथ में वायलिन लेकर आदमी बुरा काम नहीं कर सकता'—एक प्राचीन उक्राइनी सूक्ति है, जो विलक्षण चिन्तक ग्रीगोरी स्कोवोरोदा की कही बताई जाती है। बुराई और सच्चा सौन्दर्य साथ-साथ नहीं रह सकते। शिक्षक का एक प्रमुख कार्यभार यह है कि वह, लाक्षणिक अर्थ में, हर बच्चे के हाथ में वायलिन पकड़ाए, ताकि हर कोई यह अनुभव कर ले कि संगीत का जन्म कैसे होता है। आजकल, जबकि संगीत के प्रसार के तकनीकी साधन इतने फैल गए हैं, यह शिक्षण कार्यभार विशेष अर्थ रखता है। युवा पीढ़ी के सौन्दर्य का उपभोक्ता मात्र ही न हो जाने देना—यह न केवल सौन्दर्यबोधात्मक शिक्षा की, बल्कि नैतिक शिक्षा की भी समस्या है।

बच्चे के आत्मिक जीवन में पुस्तक

पुस्तकें बच्चों के आत्मिक जीवन में बड़ी भूमिका अदा करती हैं, लेकिन केवल तभी, जबकि बच्चे अच्छी तरह पढ़ना जानते हों। 'अच्छी तरह पढ़ने' का क्या अर्थ है ? सर्वप्रथम इसका अर्थ यह है कि पढ़ने का बुनियादी तौर-तरीका आना चाहिए। मेरी चेष्टा यह थी कि हर बच्चे के लिए स्वयं पढ़ना एक आत्मिक आवश्यकता बन जाए। पहली और दूसरी में हर छात्र पुस्तकालय से प्रत्येक सप्ताह-दो सप्ताह के लिए एक पुस्तक लेता था और उसे ऊंचे-ऊंचे पढ़ता था। इसके बिना धाराप्रवाह पढ़ने और पढ़ी हुई बात समझने की पक्की योग्यता नहीं विकसित की जा सकती।

दूसरी कक्षा में हर छात्र के पास अपनी एक डायरी, 'शब्दों की पिटारी' थी। इसमें बच्चे वे सब शब्द लिखते थे, जो पुस्तक में उन्हें रोचक लगे या जिनका अर्थ वे नहीं समझ पाए (बाद में मैं बच्चों के शब्दों के अर्थ या उनकी भावनात्मक रंगत समझाता था)। तीसरी और चौथी में शब्दों के अलावा छात्र अपनी पसन्द के वाक्यांश, मुहावरे और पूरे वाक्य भी 'शब्दों की पिटारी' में लिखते थे।

मनोमस्तिष्क को, आत्मा को समृद्ध करने का एक स्रोत के रूप में पठन-पाठन केवल पढ़ने की योग्यता तक ही सीमित नहीं है; इस योग्यता से तो यह प्रक्रिया केवल आरम्भ होती है। प्रायः ऐसा होता है कि बच्चा बिना किसी गलती के धाराप्रवाह पढ़ सकता है, लेकिन पुस्तक उसके लिए वह पगडंडी नहीं बन पाई है, जो बौद्धिक, नैतिक और सौन्दर्यबोधात्मक विकास के शिखर की ओर ले जाती है। पढ़ने की योग्यता का मतलब है शब्द का अर्थ और सौन्दर्य के प्रति, उसकी सूक्ष्मतम छटाओं के

प्रति संवेदनशील होना। केवल वही छात्र 'पढ़ता' है, जिसकी चेतना में शब्द इर्द-गिर्द के संसार के रंगों में जगमगाता है, उसकी धुनों को प्रतिध्वनित करता है। पठन-पाठन वह खिड़की है, जिसके जरिए बच्चे संसार को और स्वयं अपने आपको देखते और समझते हैं। यह खिड़की बच्चे के सम्मुख केवल तभी खुलती है, जबकि पढ़ने के साथ-साथ, बल्कि नहीं, पहली बार पुस्तक खोलने से पहले ही ऐसे शब्दबोध का काम बड़े लगन से शुरू कर दिया जाए, जिसकी परिधि में बच्चों की गतिविधियों, उनके आत्मिक जीवन के सभी क्षेत्र—श्रम, खेल, प्रकृति से संसर्ग, संगीत और सृजनात्मक कार्य—आ जाएं। सौन्दर्य की रचना करने वाले सृजनात्मक श्रम के बिना, बाल-कथाओं और कल्पना की उड़ान के बिना, खेल, और संगीत के बिना बच्चे के आत्मिक जीवन के क्षेत्र के रूप में पठन-पाठन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विचारों के सजीव स्रोत की 'यात्राएं', शब्दों का भावनात्मक-सौन्दर्यबोधात्मक रंगत, जो वाणी के सौन्दर्य को अनुभव कर सकने की क्षमता के फलस्वरूप समझ में आती है, तथा पुस्तक में मूर्तित कलात्मक सम्पदा—यह सब ही वाणी और चिन्तन के विकास का आधार है।

इससे पहले कि बच्चा पहला शब्द पढ़े, उसे माता, पिता, शिक्षक को पढ़ते सुनना चाहिए, कलात्मक बिंबों के सौन्दर्य की अनुभूति होनी चाहिए। प्रकृति की 'यात्राओं' को ऐसे नहीं समझना चाहिए, मानो यह पुस्तकों से बिल्कुल अलग ही कोई चीज हो। अगर बच्चे ने पुस्तक में पढ़े शब्द के सौन्दर्य को अनुभव नहीं किया है, तो वह अपने इर्द-गिर्द के संसार के सौन्दर्य को नहीं देख पायेगा। बच्चे के हृदय और चेतना की ओर दो दिशाओं से रास्ता जाता है, जो पहली नजर में एक दूसरे के विपरीत लगती है—पुस्तक से, पढ़े हुए शब्दों से मौखिक वाणी की ओर तथा बच्चे के आत्मिक जगत में स्थान बना चुके सजीव शब्द से पुस्तक की ओर तथा पठन-पाठन और लेखन की ओर। पठन-पाठन और लेखन की भावनात्मक-सौन्दर्यबोधात्मक तैयारी इस बात का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पूर्वाधार है कि बच्चा पढ़ना-लिखना सीख जाए और वह भी अंक पाने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि पठन-पाठन और लेखन आत्मिक जीवन के लिए आवश्यक हैं—पढ़ना और लिखना न आने से वह अनेक खुशियों से वंचित हो जाएगा।

मेरे बच्चे 'खुशियों के स्कूल' में ही अपने चारों ओर के संसार के सौन्दर्य के बारे में भावनाओं और विचारों को चित्रों और उनके अभिव्यंजनात्मक शीर्षकों में व्यक्त करने लगे थे—यह पठन-पाठन और लेखन की भावनात्मक-सौन्दर्यबोधात्मक तैयारी का ही परिणाम था। हमारी शिक्षा प्रणाली में प्रकृति की 'यात्राएं' कोई अन्तिम लक्ष्य नहीं है, बल्कि शब्द के जरिए बच्चे के बौद्धिक विकास का साधन हैं। यदि शब्द न होते, बौद्धिक शिक्षा न होती, शिक्षा के सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य—बच्चों को

सोचना, वस्तुओं, परिघटनाओं के बीच परस्पर सम्बन्ध देख पाना, सामान्यीकरण करना, प्रकृति की, दृष्टव्य बिंबों और चित्रों को अमूर्त रूप में देख सकना सिखाना—इस लक्ष्य की प्रेरणा न होती, तो बच्चे प्रकृति के सौन्दर्य, रंगों और ध्वनियों के खेल के प्रति जीवन के असीम विविधता के प्रति उदासीन होते।

मेरी चेष्टा यह थी कि पहली कक्षा में ही पठन-पाठन बच्चों के लिए आत्मिक आवश्यकता हो, कि वह बच्चों को एक ही नजर में शब्द को पहचानना और पढ़ लेना सिखाने मात्र का अभ्यास न हो। केवल वही बात, वही चीज छात्र के आत्मिक जीवन का अंश बन सकती है, जो उसके बौद्धिक, भावनात्मक, सौन्दर्यबोधात्मक विकास के स्तर के अनुकूल हो और साथ ही आगे भी विकास में सहायक हो। बच्चे क्या पढ़ें, यह सही-सही चुनना शिक्षक का बहुत बड़ा कार्यभार है। खेद की बात है कि पाठ्य-पुस्तकों में वे सब कलात्मक रचनाएं नहीं होतीं, जिन्हें बच्चे समझ सकते हैं। पढ़ाई शुरू होने के तीन महीने बाद ही हम ऐसी रोचक कहानियां और बाल-कथाएं पढ़ने लगे, जो पाठ्य-पुस्तक में नहीं थीं।

मैं बच्चों को 'उक्राइनी और रूसी लोक-कथाएं' पुस्तक देता हूं। उन्हें उक्राइनी लोक-कथा 'पुआल का बछड़ा' पढ़ने के लिए तैयार करता हूं—कहानी का सारांश बताता हूं और साथ में चित्र दिखाता हूं। बच्चे अपनी किताबें खोलते हैं। पहले एक छात्र, फिर दूसरा, तीसरा कहानी पढ़ता है। एक ही कहानी, बशर्ते वह बच्चों के लिए दिलचस्प हो, कितनी भी बार क्यों न पढ़ी जाए, उससे बच्चे ऊबते नहीं हैं, क्योंकि बार-बार पढ़ना बच्चों के लिए दोहराने का अभ्यास नहीं होता। कहानी के बिम्ब हर बार प्रत्येक बच्चे के मन में भावनाओं का आवेग लाते हैं। सभी बच्चे शब्दों को अपने-अपने ढंग से ग्रहण करते हैं। बच्चे बड़े ध्यान से दूसरों को पढ़ते हुए सुनते हैं, वैसे ही जैसे मानो वे एक के बाद एक किसी गीत को गा रहे हों, जिसके शब्द और संगीत उन्हें उद्वेलित करते हैं। हर कोई अपने ढंग से गाता है, हरेक के गान में शब्दों की अपनी रंगत होती है, जो उसकी अनुभूतियों, कल्पनाओं, प्रत्यक्षबोध को व्यक्त करती है। ऐसे पठन-पाठन में शब्द संगीत की भांति, धुन की भांति ध्वनित होते हैं।

व्यक्तिगत भावनात्मक पठन-पाठन की तैयारी में यह बात बहुत मानी रखती है कि बच्चा अनेक बार विचारों के स्रोत तक पहुंचा हो, उसे शब्दों के सौन्दर्य की अनुभूति हुई हो। उदाहरणतः, छात्र पढ़ता है, 'बछड़ा अंधेरे जंगल में गया, वहां उसे भूरा भेड़िया मिला'। 'अंधेरे जंगल' शब्दों के साथ बच्चे की चेतना में अविस्मरणीय चित्र जुड़े हुए हैं—जंगल में सांझ को झुटपुटा, रात की रहस्यमयी सरसराहट, बिजली कड़कने से पहले पत्तियों की खड़खड़ाहट। यह सब उसके आत्मिक जीवन का एक अंश बन चुका है और जब वह 'अंधेरा जंगल' शब्द सुनता है, तो प्रकृति के ये रंग

और ध्वनियां सजीव हो उठते हैं। अगर बच्चा सजीव शब्दों और विचारों के स्रोत की पगडंडी से अपरिचित है, तो अध्यापक चाहे कितना भी समझाए कि वह कैसे पढ़े, कैसे उच्चारण करे, स्वर का उतार-चढ़ाव कैसा हो—यह सब बच्चे को भावनात्मक पठन-पाठन नहीं सिखा सकता।

स्कूल में अपने काम के पहले दिन से ही मैं इस बात का बहुत ख्याल रखता था कि बच्चों के हाथों में एक भी खराब किताब न पड़े, कि बच्चे ऐसी रोचक पुस्तकों के संसार में रहें, जो राष्ट्रीय और सारी मानवीय संस्कृति की स्वर्ण निधि हैं। यह अत्यंत महत्वपूर्ण कार्यभार है—मनुष्य अपने पूरे जीवन में 2,000 से अधिक पुस्तकें नहीं पढ़ सकता—अतः बचपन में और किशोरावस्था में बहुत सोच-समझकर बच्चों के लिए पठन-पाठन सामग्री चुननी चाहिए। बच्चा भले ही थोड़ी-सी पुस्तकें पढ़ें, परन्तु हर पुस्तक की उसके मन और चेतना पर गहरी छाप पड़नी चाहिए, ताकि इन्सान बार-बार उसे पढ़ना चाहे और हर बार उसमें नई आत्मिक सम्पदा पाए। यहां यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि बच्चे को अभिव्यंजनात्मक पठन-पाठन से आनंद और संतोष प्राप्त हो। शब्द की शक्ति और उसका सौंदर्य उसकी ध्वनि में उजागर होते हैं, इसलिए यह बात बहुत मानी रखती है कि शब्द की भावनात्मक रंगत की अनुभूति श्रवण-बोध से, अभिव्यंजनात्मक पाठन के जरिए हो।

पहली कक्षा में ही हमारे यहां बाल-पुस्तकालय बनाया गया। इसमें चार विभाग थे। पहले भाग में ऐसी कहानियां थीं, जो, मेरे विचार में, बच्चों के नैतिक, बौद्धिक और सौन्दर्यबोधात्मक विकास के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। (हर पुस्तक की हम 15 प्रतियां खरीदते थे, ताकि पाठ में हर डेस्क पर एक किताब हो।) यह भाग प्राथमिक विद्यालय में शिक्षा के चार वर्षों के लिए था। इसमें ऐसी कहानियां हैं, जिनमें बच्चों की समझ में आ सकने वाले मानवीय विचार ज्वलंत बिंबों में मूर्तित हैं। ये कहानियां हैं—लेव तोलस्तोय—'शार्क', 'छलांग', 'कोहकाफ का बन्दी'; येर्शोव—'कुबड़ा घोड़ा'; कोत्सूबीन्स्की—'नव वर्ष वृक्ष'; झुकोव्स्की—'सोती रानी', 'एक आंख वाले दैत्यों की गुफा में'; मामिन-सिबिर्याक—'हिरनौटा', 'नदी के तट पर', 'सेठ और येर्योमका', 'गोद लिया बच्चा'; एंडरसन—'कनक रानी', 'बदसूरत बत्तख', 'राजा की नई पोशाक'; विक्टर ह्यूगो—'कोजेट', 'हाव्रोश', ('अभागे' पुस्तक में से); ग्रीम बंधु—'हेजल और ग्रेटेल', 'आलसी हांस', 'तीन खुशकिस्मत'; पुश्किन—'जार सल्तान का किस्सा', 'मृत रानी की कहानी', 'स्टेशन मास्टर', 'अंचार', 'बन्दी', 'दाई', 'चिड़िया', 'शीत सन्ध्या'; यानुश कोर्चाक—'जब मैं फिर छोटा हो जाऊंगा'; कोरोलेन्को—'तहखाने में वच्चे'; नेक्रासोव—'किसान बच्चे', 'याकोव चाचा', 'मजाइ दादा और खरगोश'; तुर्गेनेव —'बटेर'; ग्रीगोरोविच—'रबड़ का लड़का'; गार्शिन—'सिगनल'; क्रूपीन—'मैनाएं'; चेखोव

–'लाखी', 'टीकरा', 'वान्का', 'भगोड़ा', 'लड़के', 'गिरगिट'; स्तान्युकोविच–'मक्सीम्का', 'दाई', 'छुटकारा'; सेन्केविच–'यान्को-संगीतकार'; जैक लंडन–'कीश का किस्सा'; मार्क ट्वेन–'टाम सायर की साहसिक यात्राएं'; मक्सीम गोर्की–'पेपे', 'पार्मा के बच्चे', 'येव्सेइका', 'इल्या का बचपन', 'सुबह'; गाइदार–'चुक और गेक', 'दूर-दराज के देश', 'तिमूर और उसकी टोली'; बोन्च- ब्रुयेविच–'लेनिन और बच्चे'; तेस्लेन्को –'स्कूल छात्र'; पनास मीर्नी– 'मोरोजेन्को'; फ्रान्को–'ग्रीत्स का स्कूल', 'पेन्सिल'; कोनोनोव–'लेनिन के बारे में कहानियां'; कोस्मोदेम्यान्स्काया–'जोया और शूरा की वीरगाथा'; 'वीर पायोनियरों की कहानियां'; बेदजिक–'ओलेग कोशेवोई का बचपन'; कतायेव–'रेजीमेंट का बेटा'; गोलोव्को–'पिलीप्को', 'लाल रूमाल'।

इन रचनाओं को पढ़कर बच्चे न केवल संसार का ज्ञान पाते थे, बल्कि यह उनके लिए भावनात्मक-नैतिक शिक्षा भी थी। प्रत्येक पुस्तक बाल-आत्मा पर गहरी छाप छोड़ती थी। मामिन-सिबिर्याक की कहानी 'नदी के तट पर' पढ़कर बच्चे बहुत प्रभावित हुए। इसमें एक बूढ़े आदमी के बारे में बताया गया है, जिसकी इस दुनिया में किसी को परवाह नहीं है। वह घने ताइगा जंगल में नदी के तट पर अकेला रहता है। मैंने देखा कि ऐसी रचनाएं पढ़ने के पश्चात अपने इर्द-गिर्द के संसार के प्रति बच्चों की संवेदनशीलता बढ़ जाती है।

ये कहानियां हम पाठों में भी पढ़ते थे और पाठों के अलावा खाली समय में भी। हमारे पुस्तकालय के इस भाग की तुलना संगीत-कक्ष के हमारे रिकार्डों और टेपों के संग्रह से की जा सकती है, जो सामूहिक तौर पर सुनने के लिए था।

हमारे पुस्तकालय के दूसरे भाग में आधुनिक रूसी और उक्राइनी लेखकों को हमारे समसामयिक जीवन, सोवियत लोगों के श्रम तथा शान्ति के लिए संघर्ष के बारे में, महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में वीरों के पराक्रमों, नन्हे वीरों के बारे में रचनाएं थीं।

तीसरे भाग में कथाएं और कविताएं थीं। ये पुस्तकें केवल पाठ्येतर पठन-पाठन के लिए थीं। हर बच्चा वह पुस्तक लेता था जिसमें उसकी रुचि होती थी और रुचि अच्छे चित्रों से या साथियों द्वारा पढ़ी पुस्तक के वर्णन से या अध्यापक के शब्दों से जागती थी।

पुस्तकालय के चौथे भाग में यूनानी पौराणिक कथाएं थीं। ये पुस्तकें हमने काफी कठिनाई से ढूंढकर एकत्रित की थीं। इनमें प्राचीन कथाएं बच्चों के लिए सुबोध रूप में दी गई थीं। पौराणिक कथाएं बच्चों के बौद्धिक और सौन्दर्यबोधात्मक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे बच्चों को मानव संस्कृति के एक आश्चर्यजनक पृष्ठ से तो परिचित कराती ही हैं, साथ ही उनकी कल्पना-शक्ति और बुद्धि का विकास करती हैं, उनमें अतीत के प्रति रुचि जगाती हैं।

पहले वर्ष के मध्य में हम सामूहिक पठन-पाठन आयोजित करने लगे। मैं बच्चों को एक पुस्तक की सभी प्रतियां बांट देता था, ताकि वे उसे घर पर पढ़ लें। यह सामूहिक पठन-पाठन की तैयारी होती थी। वह कहानी पढ़ने के लिए 'कथा-लोक' में जाना, जिससे बच्चे पहले से ही परिचित हैं ? बच्चों में ऐसी इच्छा कहां से आई, और इसकी क्या आवश्यकता है, क्या यह बेहतर नहीं होगा कि नई पुस्तक पढ़ें ?

बेशक, नई, अज्ञात पुस्तकें भी पढ़नी चाहिए और हम नई पुस्तकें पढ़ते थे। किन्तु कोई रचना आत्मिक जीवन में केवल तभी अपना स्थान बनाती है, जबकि बच्चा अपने साथियों को वह चीज पढ़कर सुनाना चाहता है, जिसने उसकी भावनाओं को झकझोरा है, जबकि वह शब्दों में अपनी भावनाएं और अनुभूतियां व्यक्त करना चाहता है। हमारे पुस्तकालय के पहले भाग की प्रत्येक पुस्तक हम कम से कम 10 बार ऊंचे-ऊंचे पढ़ते थे, और दुबारा पढ़ने से बच्चों की रुचि कम नहीं होती थी....2-3 सप्ताह पहले बच्चों ने कोई पुस्तक पढ़ी है, परन्तु बच्चे उसे भूलते नहीं हैं, वे उसे फिर से दोहराना चाहते हैं और इसके लिए ही स्कूल आते हैं। 3-4 महीने बीतने पर बच्चे फिर वह पुस्तक पढ़ना चाहते हैं, जो उन्हें अच्छी लगी है—फिर सामूहिक पठन-पाठन होता है।

परन्तु रचना की शक्ति और सौन्दर्य मनोमस्तिष्क को केवल तभी छूते हैं, जबकि पढ़ना सीखने से पहले ही बच्चे ने शब्द की सूक्ष्मतम छटाओं को अनुभव कर लिया हो। जिस व्यक्ति को विचारों के सजीव स्रोत की 'यात्राओं' के समय शब्द के मनोहारी सौन्दर्य की अनुभूति नहीं हुई, वह कभी भी उसे ज्ञात कहानी को दूसरी, तीसरी, दसवीं बार नहीं सुनना चाहेगा।

हमारी कक्षा में कुछ पाठ प्यारी कहानी के होते थे। बच्चे बड़ी उमंग से पठन-पाठन की तैयारी करते थे। हर कोई अपनी मनपसन्द कहानी पढ़ता था।

कविता पाठ का हमारे यहां विशेष स्थान था। मैं बच्चों को वे कविताएं सुनाता था, जो मानव संस्कृति की स्वर्ण निधि मानी जाती हैं। इनमें रूसी कवियों—पुश्किन, लेर्मोन्तोव, झूकोव्स्की, नेक्रासोव, फेत, उक्राइनी कवियों—शेव्चेन्को और लेस्या उक्राईन्का, जर्मन कवि शील्लर और हाइने, पोलैंड के मित्स्केविच, फ्रांसीसी कवि बेरांजे तथा अन्य कवियों की रचनाएं थीं। बच्चों ने अपनी मनपसन्द कविताएं याद करनी चाहीं। चार वर्षों में बच्चों ने अनेक कविताएं याद कर लीं। परन्तु जब तक उन्हें काव्यमय शब्दों की अद्‌भुत ध्वनि का रोमांच न हो जाता, तब तक वे कविता याद नहीं करते थे।

अच्छी कविताओं में शब्दों, बिम्बों और धुन—इन तीनों के सौन्दर्य का समागम होता है। मेरी चेष्टा यह थी कि बच्चे छोटी उम्र में ही इन सौन्दर्यबोधात्मक सम्पदाओं

की एकता को अनुभव कर लें—मैं उन्हें रूसी और उक्राइनी कवियों की कविताएं सुनाता था। हमने पुश्किन की कविता 'ओलेग का गीत' और शेव्चेन्को का 'गरीबनी' काव्य कई बार पढ़े। लगभग सभी बच्चों को ये रचनाएं याद हो गईं, हालांकि इन्हें याद करने के लिए कोई खास अभ्यास उन्होंने नहीं किया था। बच्चों ने कई ऐसी छोटी-छोटी सरस कविताएं भी याद कर लीं, जिनमें प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन है। धारावाहिक पठन-पाठन बच्चों को बहुत पसन्द था। 'स्वप्न लोक' में हमने कई सप्ताह तक 'टाम सोयर की साहसिक यात्राएं' पुस्तक पढ़ी। बच्चों के चारों ओर जो वातावरण था, वह पुस्तक से पढ़ने वाली छापों को अधिक गहरा बनाता था। गोर्की का 'बचपन', कतायेव का 'एक अकेली नौका', और बाझोव का 'मैलाकाइट मंजूषिका' भी हमने थोड़ा-थोड़ा करके पढ़ लिए।

धीरे-धीरे हम स्कूल में अभिव्यंजनात्मक पठन-पाठन की सन्ध्याएं और प्रातः सभाएं आयोजित करने लगे। जो कोई भी इसमें भाग लेना चाहता था, वह अपनी मनपसन्द कहानी या कविता का पाठ करने की तैयारी करता था। दूसरी कक्षाओं के बहुत से बच्चे भी इन सभाओं में आते थे, धीरे-धीरे यह सारे स्कूल की सभाएं हो गईं।

साल में दो बार—पहली छमाही के बाद और शैक्षिक वर्ष के अन्त में हम मातृभाषा का त्यौहार मनाते थे। इन त्यौहारों में कुछ रस्मों की परम्परा बनी। बच्चे गांव के वयोवृद्ध लोगों को इसमें आमंत्रित करते थे, जो यह फैसला करते थे कि कौन कविता या कहानी का सबसे अच्छा पाठ करता है। यह एक तरह से सृजनात्मक प्रतियोगिता थी, जिसके विजेताओं को पुरस्कार में पुस्तकें मिलती थीं। फार्म के वयोवृद्ध किसान— मातृभाषा के कद्रदान—बच्चों को पुरस्कार देते थे। वे भी परी-कथाएं और कविताएं सुनाते थे। ऐसा भी होता था कि एक ही रचना का पाठ कोई छात्र भी करता था और वयोवृद्ध किसान भी। चौथे वर्ष के वसंत में कविताओं, कथा-कहानियों का पाठ करने के इच्छुकों की संख्या इतनी अधिक थी कि यह त्यौहार दो दिन चला।

बड़ों—माता-पिता, दादा-दादी के साथ निरन्तर सम्पर्क के फलस्वरूप एक और रोचक परम्परा बनी। हमारे सर्वश्रेष्ठ वाचक घर पर माता-पिता को विभिन्न रचनाएं सुनाने लगे, बड़े लोग स्कूल में आने लगे बच्चों का पाठ सुनने के लिए। मातृभाषा के कद्रदानों की कुछ मंडलियां बन गईं, इनमें आदरणीय वयस्क भी थे। बच्चे एक प्रकार से इन मण्डलियों के आयोजक थे, इस अनुभूति से पुस्तकों और पठन-पाठन में उनकी रुचि और भी गहरी होती थी।

स्कूल में 'पुस्तक-समारोह' बनाने की भी परम्परा बन गई। पढ़ाई शुरू होने से एक दिन पहले, 31 अगस्त को बच्चे और माता-पिता स्कूल आते थे। उस दिन अब पुस्तकें उपहार में देते—बच्चे एक दूसरे को, माता-पिता बच्चों को। हमारे सामूहिक

फार्म के संचालक मण्डल की ओर से मातृभाषा मण्डलियों के सर्वश्रेष्ठ आयोजकों को पुस्तकें भेंट की जाती थीं।

मेरी कोशिश यह थी कि हर बच्चा धीरे-धीरे अपना निजी पुस्तकालय बनाए, ताकि पुस्तकें पढ़ना उसके मन की प्यास बन जाए। पहले दो वर्षों में ही मेरे आग्रह से सभी बच्चों के घर में अपना-अपना पुस्तकालय बन गया। कुछ परिवारों के पुस्तकालय में 500 से अधिक पुस्तकें थीं, कुछ के पास इससे कम, परन्तु प्रत्येक परिवार में हर महीने यह पुस्तक भण्डार बढ़ता जाता था। अगर महीनेभर के दौरान पारिवारिक पुस्तकालय में एक भी नई पुस्तक नहीं आती थी, तो मैं इसे चिन्ताजनक बात समझता था।

पुस्तक से ही आत्मशिक्षा और व्यक्तिगत आत्मिक जीवन का आरम्भ होता है। शिक्षण-प्रक्रिया में एक ऐसा क्षण आता है, जब शिक्षक, जो अब तक बड़े ध्यान से शिष्य का हाथ पकड़कर उसे चलाता लाया था, अब यह समझता है कि वह उसका हाथ छोड़ सकता है और कहता है, 'जाओ, स्वयं आगे बढ़ो, जीना सीखो'। ऐसा निर्णय करने के लिए गहरा शिक्षण विवेक होना चाहिए। इन्सान को स्वावलम्बी जीवन के लिए आत्मिक रूप से तैयार करने के वास्ते उसे पुस्तक जगत में प्रविष्ट कराना चाहिए। हर छात्र के लिए पुस्तक को मित्र और विवेकी शिक्षक हो जाना चाहिए। मैं इसे अपना एक बहुत बड़ा चरित्र-निर्माण कार्यभार समझता था कि प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा पूरी करते हुए प्रत्येक बालक, प्रत्येक बालिका कुछ क्षण पुस्तक के साथ एकांत पाना, सोचना, मनन करना चाहे। एकांत पाने की कामना अकेलापन नहीं है। यह तो विचारों, भावनाओं, आस्थाओं और दृष्टिकोण के आत्मशिक्षण की आरम्भ है। यह केवल तभी सम्भव है, जबकि पुस्तक आत्मिक आवश्यकता के रूप में नन्हे इन्सान के जीवन में प्रवेश करती है। मैं अलग-अलग बच्चों में बातें करते हुए, उनसे यह पूछता था कि उन्हें कैसी किताबें अच्छी लगती हैं, पुस्तक में वे किन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ते हैं—यह सब जानना मेरे लिए आवश्यक था, क्योंकि ऐसी हालत में ही मैं उन्हें सही सलाह दे सकता था, सही पुस्तक ढूढ़ने में उनकी मदद कर सकता था।

स्कूल सच्चे अर्थों में संस्कृति का मन्दिर केवल तभी बन पाता है, जबकि उसमें चार देवता प्रतिष्ठित हों—मातृभूमि, मनुष्य, पुस्तक और मातृभाषा।

अपने इन छात्रों के साथ काम शुरू करने से पहले ही मैंने किशोरों के साथ शिक्षण-कार्य की कठिनाइयों के बारे में बहुत कुछ सुना था। लोग मुझसे कहते थे, 'छोटे बच्चों के साथ काम करना सबसे आसान है। लेकिन जैसे ही छोटा बच्चा किशोरावस्था में पहुंचेगा, वह एकदम बदल जाएगा, आप उसे पहचान ही नहीं सकेंगे।

उसकी नेकी, संवेदनशीलता, लजीलापन–सब कुछ गायब हो जाएगा, उसमें बदतमीजी, धृष्टता, उदासीनता आ जाएगी।' आगे चलकर मैं इस बात का कायल हुआ कि ये शब्द कितने गलत थे। किशोर में सभी अच्छे गुण 'गायब' हो जाएंगे, अगर उसमें उनकी जड़ नहीं बिठाई गई, अगर अध्यापक यह सोचता रहा कि बच्चे में अच्छे गुण जन्म से ही होते हैं। यदि बचपन से ही बच्चे में पुस्तक के प्रति प्रेम नहीं विकसित किया गया है, यदि पठन-पाठन उसके लिए जीवनभर की आत्मिक आवश्यकता नहीं बन गया है, तो किशोरावस्था में उसकी आत्मा खाली होगी, और न जाने कहां से उसमें दुगुर्ण निकलते आएंगे।

मातृभाषा

हम उक्राइनी लोगों की मातृभाषा उक्राइनी है। आजकल साढ़े तीन करोड़ से अधिक लोग यह भाषा बोलते हैं। हमारे जनगण की ऐतिहासिक नियति ऐसी रही है कि हम उक्राइनियों के लिए बंधु रूसी जनगण की भाषा भी बहुत प्रिय है। दो सजातीय भाषाएं अनेक सूत्रों से एक दूसरी से जुड़ी होती हैं। इससे हमारे लिए अपनी मातृभाषा और रूसी भाषा सीखना आसान भी हो जाता है और साथ ही मुश्किल भी। सैकड़ों ऐसे शब्द हैं, जो दोनों भाषाओं में एक ही तरह से ध्वनित होते हैं, पर उनके अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। सैकड़ों मामलों में एक ही शब्द की उक्राइनी भाषा में एक भावनात्मक छटा है और रूसी में दूसरी। एक भाषा में, जो मर्मस्पर्शी होता है, दूसरी में वही कभी-कभी व्यंग्यात्मक होता है। शब्दों की भावनात्मक-सौन्दर्यबोधात्मक रंगत का, सूक्ष्मतम छटाओं का यह खेल उस आत्मिक सम्पदा का स्रोत है, जिसे युवा पीढ़ी को प्रदान करना हम शिक्षकों का कर्त्तव्य है।

भाषा जनगण की आत्मिक सम्पदा होती है। एक लोकोक्ति है, 'जितनी भाषाएं मैं जानता हूं, उतनी ही बार मैं मनुष्य हूं।' परन्तु अगर मनुष्य ने अपनी मातृभाषा पर अधिकार नहीं पाया है, उसके सौन्दर्य की गहन अनुभूति उसे नहीं है, तो दूसरे जनगण की भाषाओं की सम्पदा भी उसकी पहुंच से बाहर रहती है। मनुष्य अपनी मातृभाषा की बारीकियों को जितनी अधिक गहराई से जाने-समझेगा, मातृभाषा के शब्दों की छटाओं के खेल के प्रति उसकी संवेदनशीलता जितनी तीव्र होगी, उतनी ही अधिक उसकी बुद्धि दूसरी भाषाओं पर अधिकार पाने में सक्षम होगी उसका हृदय शब्दों के सौन्दर्य को उतनी ही अधिक तीव्रता से ग्रहण करेगा।

मैंने यह लक्ष्य रखा था कि मातृभाषा की सम्पदा का यह जीवनदायी स्रोत स्कूली जीवन के पहले ही कदमों से बच्चों के सम्मुख खुल जाए। विचारों और शब्दों के सजीव स्रोतों की 'यात्राएं' करते हुए मेरे छात्र अपनी भाषा और रूसी के शब्दों की

भावनात्मक, सौन्दर्यबोधात्मक और अर्थ-छटाओं का बोध पाते थे। मैं यह चेष्टा करता था कि वे भाषा के सौन्दर्य को अनुभव करें, शब्दों के प्रति उनके मन में अनुराग हो, वे उनकी शुद्धता का ध्यान रखें।

मनुष्य की वाणी उसकी आत्मा का दर्पण होती है। बच्चे पर प्रभाव डालने, उसकी भावनाओं, आत्मा, विचारों और अनुभूतियों को उदात्त बनाने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है मातृभाषा का सौन्दर्य और भव्यता, शक्ति और अभिव्यंजनात्मकता। प्राथमिक विद्यालय में, जहां अपने इर्द-गिर्द के संसार की नई परिघटनाओं में हर भेंट बाल-हृदयों में विस्मय-विमुग्धता की भावना जगाती है, इस साधन की भूमिका का अतिमूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

हम जब प्रकृति की गोद में—जंगल में, बाग में, खेत में, चरागाह में, नदी के तट पर जाते, तो शब्द मेरे हाथों में वह उपकरण बन जाते, जिसकी सहायता से मैं बच्चों को चारों ओर के संसार की विविधता के दर्शन कराता था। बच्चे जो देखते और सुनते थे उसके सौन्दर्य को अनुभव करते हुए शब्दों की सूक्ष्मतम छटाओं का हृदयंगम करते थे और शब्दों के माध्यम से सौन्दर्य उनकी आत्मा में पैठता था। प्रकृति की 'यात्राएं' सृजनात्मक कार्य के लिए पहला प्रेरणा-आवेग थीं। बच्चों के मन में यह इच्छा जागी कि वे अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को शब्दों में व्यक्त करें, सौन्दर्य के बारे में बताएं। बच्चे प्रकृति के बारे में छोटी-छोटी रचनाएं बनाते थे। ये रचनाएं वाणी और विचारों के विकास-कार्य का अत्यंत महत्वपूर्ण रूप हैं। हर बच्चा अपनी रचना बनाता था और फिर उसे क्लास में लिखता था। उदाहरण के तौर पर मैं यहां कुछ लघु रचनाएं उद्धृत कर रहा हूं, जो बच्चों ने पहली कक्षा में मौखिक रूप से रचीं और बाद में उन्हें 'हमारी मातृभाषा' की कापी में या अपनी-अपनी कापी में लिखा।

भरत पंछी का गीत (लरीसा)

नीले आकाश में भूरा जीव फड़फड़ा रहा है। यह भरत पंछी है। मैं उसका अनोखा गीत सुनती हूं, सुनती जाती हूं, सुनती जाती हूं, पर मन नहीं भरता। लगता है वह चांदी के पतले-पतले तारों को झनझना रहा है। भरत पंछी सुनहरे गेहूं से सूरज तक तार खींचता है। गेहूं की बालियां कान लगाकर उसका गीत सुनती हैं।

सूरज डूब गया (सेर्योझा)

सूरज डूब गया है। खड्ड में से झुटपुटा निकलकर खेतों-मैदानों में बढ़ रहा है। नदी की तरह बहता जा रहा है। पेड़ के शिखर पर सुनहरी चिनगारियां चमक उठी हैं।

चमकती हैं और बुझ जाती हैं। यह तो सूरज इन खेतों-मैदानों से विदाई ले रहा है। अलविदा, सूरज !

मधुमक्खियां पानी पीती हैं (गाल्या)

मैंने मधुमक्खियों को पानी पीते देखा है। पानी की बूंदें पतले से सरकंडे पर ढुरकती हुई बेदमजनूं के चिकने खुत्थे पर गिरती जाती हैं। खुत्था गीला हो जाता है। मधुमक्खियों को बेदमजनूं की गंध अच्छी लगती है। वे खुत्थे पर पानी पीने उड़ आती हैं, सुनहरे पंख फड़फड़ाती हैं। मधुमक्खियों, थोड़ा आराम कर लो, तुम्हें तो बड़ी दूर जाना है, न !

कूटू का खेत खिला (वार्या)

कूटू के फूल खिले, खेत में जैसे किसी ने सफेद कालीन बिछा दिया। पर यह कालीन जीता-जागता है और उसकी सुगन्ध कितनी प्यारी है। हर फूल पर मधुमक्खी मंडराती है। कालीन गूंजता है—मधुमक्खियां भिनभिना रही हैं। बड़ा-सा रोयेंदार भौंरा फूल पर आ बैठा। डंठल हिलने लगा, झुक गया। भौंरे से टिका नहीं गया, वह गिर पड़ा और गुस्से से भिनभिनाने लगा।

कम्बाइन (यूरा)

मेरे मामा कम्बाइन चलाते हैं। कम्बाइन बहुत बड़ी है। वह अपने तेज फलकों से गेहूं काटती चलती है और कटे डंठलों को पीछे के हिस्से में मांड़ने के लिए डालती जाती है। वहां से दानों की पतली-सी धार बंकर में गिरती जाती है। ट्रक आता है और अनाज लादकर खलियान में ले जाता है। अनाज से सबके लिए रोटी बनेगी।

हमारी मंड़ाई मशीन (वान्या)

हमारे सकूल में एक छोटी-सी मंड़ाई मशीन है, इतनी-सी....छात्रों ने स्कूल के खेत में गेहूं उगाया था। गेहूं कटा, तो उसके पांच पूले बने। छोटी-सी मशीन घरघर करती चलने लगी, उसने गेहूं मांड़ दिया। हमने गेहूं को बोरी में भर दिया। अब हम इसे बोएंगे।

सेब के फूल खिले (पाव्लो)

वाह, कितना सुन्दर लगता है बाग, जब सेबों के फूल खिलते हैं। सफेद फूल धूप में पंखुड़ियां खोलते हैं। हवा फूलों को झुलाती है और वे गूंजती हैं—चांदी की

घंटियों की तरह। सारा बाग गूंजता है, धूप में चमकता है और जब हवा रुकती है, तो मधुमक्खियों का गुंजन सुनाई देता है। वे पेड़ों के ऊपर उड़ती हैं, देखती हैं–ये कौन-सी घंटियां टनटना रही हैं ? और बाग गूंजता है, जैसे हजारों तार झन्कार कर रहे हों। मधुमक्खी घंटी पर बैठ जाती है, अपने पंजों को हिलाती है, पंख फड़फड़ाती है और घंटी से सुनहरे पराग का बादल उठता है।

दाशा मौसी (कोल्या)

हम दाशा मौसी के काम पर–गोशाला में–गए थे। वह तीस गायें दोहती हैं। बड़े-बड़े डोलों में दूध भरा जाता है। डोलों को गाड़ी पर रखकर डेरी में ले जाया जाता है। वहां दूध से मक्खन निकालते हैं।

सारस उड़ आए (तीना)

सूरज पहाड़ी के पीछे छिप गया। नीले आसमान में सारस उड़ रहे थे। वे कह रहे थे, 'नमस्ते, हरे-भरे मैदानों, हम गरम देशों से आए हैं।' पेड़ों की टहनियां कंपकंपाई। घास की हरी पत्तियां सरसराईं। तालाब गूंज उठा, 'नमस्ते, सारसो, क्या देखा तुमने गरम देशों में ?'

स्नेही झुटपुटा-दादा (सान्या)

आसमान में तारे चमके। खड्ड में से स्नेही झुटपुटा-दादा निकले–लम्बे-लम्बे बालों वाले, झबरीले बूढ़े दादा। लाठी का सहारा लिए गांव को चल दिए। वह घर में जाते हैं, अपने नरम-नरम हाथों में बच्चों को उठाते हैं। बच्चों को नींद आ जाती है। वे मीठे सपने देखते हैं।

('खुशियों के स्कूल' में ही सान्या ने झुटपुटे की कहानी सोची थी। अब उसकी स्मृति में वह फिर सजीव हो उठी थी।)

कुज्मा चचा (फेद्या)

हम कुज्मा चचा के पास गए थे। वह राजगीर हैं। ईंटों को चीन-चीनकर दीवार खड़ी करते हैं। आजकल वह दुकान बना रहे हैं। कुज्मा चचा पचास मकान बना चुके हैं। इन मकानों में बहुत सारे लोग रहते हैं। कुज्मा चचा कहते हैं, 'मेरे मकान दो सौ साल तक बने रहेंगे। बहुत सारे लोग याद करेंगे–कैसा राजगीर था कुज्मा चचा !'

वसंत का फूल (कात्या)

सूरज ने जंगल को जगा दिया। चीड़ के शिखर पर पड़े हिम कण को पिघला दिया। गरम बूंद हिम के ढूह पर गिरी। ढूह को और उसके नीचे दबी सूखी पत्तियों को चीरती हुई वह धरती तक जा पहुंची। जहां गरम बूंद धरती पर पड़ी, वहां हरा अंकुर फूटा और फिर उस नीला-नीला फूल खिला। फूल ने चारों ओर पड़े हिम को देखा और हैरान हुआ, 'क्या मैं जल्दी तो नहीं जाग गया ?' 'नहीं, नहीं, जागने का समय आ गया,' चिड़ियां चहचहाने लगीं, और वसंत आ गया।

सूरज और घटा (तोल्या)

सुनहरी खेत लहलहा रहा है। हर बाली में सूरज की किरणें खेल रही हैं। खेत, खेत, तू कितना सुन्दर है। पर लो, घटा आ गई। उसने सूरज को छिपा दिया। बालियों में चमकती सुनहरी चिनगारियां बुझ गईं। खेत मटमैला हो गया, मानो किसी ने धरती पर मटमैली चादर बिछा दी हो। सूरज, सूरज, जल्दी से घटा के पीछे से निकल आ। बालियां तेरा इन्तजार कर रही हैं। हम भी तेरी राह देख रहे हैं, सूरज!

आसमान से तारे गिरते हैं (ल्यूबा)

अगस्त में आसमान से तारे गिरते हैं। अंधेरे जंगल में एक बड़ा मैदान है। आसमान से तारा मैदान में गिरा। वहां लाल सुर्ख फूल खिल उठा।

हमारी क्लास में ठण्ड नहीं होती (साशा)

बाहर चाहे कितना भी पाला पड़े, हमारी क्लास में ठण्ड नहीं होती। लोहे की पाइपों में गरम पानी बहता है। तहखाने में बायलर है। बड़ी-सी भट्ठी में कोयला जलता है—बायलर में पानी को गरम करता है। कोयला खनिकों ने जमीन में से निकला है। मालगाड़ी में भरकर उसे हमारे यहां लाया गया। मालगाड़ी से उसे जमीन पर उतारा गया। फिर ट्रकों में लादकर हमारे स्कूल में लाया गया। खानों में और खानों में और रेलवे पर लोग काम करते हैं, तभी हम ठण्ड से बचते हैं।

जाड़ों में मैनाएं (मीशा)

पिछले जाड़ों में मैनाएं गरम देशों को नहीं उड़ गईं। उन्हें कैसा पता चल गया कि इस बार तेज पाला नहीं पड़ेगा ? मैंने देखा था कैसे शाम को चिड़ियां झुण्ड बनाकर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उड़ रही थीं, वे देख रही थीं, कहां ज्यादा गरमाहट है, और बेचैन-सी चिचिया रही थीं। जब हिमानी आंधी चली, तो वे हमारे बाड़े में उड़ आईं। चारों ओर बैठ गईं, कुछ मैनाएं तो गाय की पीठ पर भी बैठ गईं। जब धूप निकलती थी, तो मैनाएं हिम में नहाती थीं। मैना हिम के नरम ढूह पर पत्थर की तरह

गिरती है, हिम में धंस जाती है, फिर ढूह से बाहर निकल आती है और खुशी से चहचहाती है।

नया साल (दान्को)

नया साल आ रहा था। मां के साथ मिलकर हमने मेज पर नये साल का पेड़ सजाया। उसके नीचे हिम-बाबा को खड़ा किया। रात हो गई। आंगन में चांदनी फैली हुई थी। मेरा मन हुआ, देखूं हिम-बाबा क्या करेंगे। उन्होंने अपनी छड़ी उठाई और मेज पर चलने लगे। चलते-चलते कांख रहे थे। टहनियों पर लटकते हिम-कण फुसफुस करते आपस में बात कर रहे थे। एक टहनी पर खरगोश छिपकर बैठा हुआ था। अचानक वह कूदा और हिम-बाबा के झोले में घुस गया। अब हिम-बाबा नए साल का उपहार लाएंगे।

मेरा नाना (ल्यूदा)

मेरे नाना जंगल लगाते और उनकी देखभाल करते हैं। वह पच्चीस बरस से हमारे सामूहिक फार्म में काम कर रहे हैं। गांव के बाहर बलूत कुंज है। ये नाना के बलूत हैं, उन्होंने ये पेड़ लगाए थे। नाना कहते हैं मेरे पेड़ तीन सौ साल जीएंगे। मैं भी बलूत का पेड़ लगाऊंगी।

दुष्ट मकड़ी (कोस्त्या)

कोठरी के अंधेरे कोने में मकड़ी दीवार पर दुबककर बैठ गई और अपने पंजे हिलाने लगी, मानो जाल को हिला रही हो। मक्खी उड़ती, भिनभिनाती उधर आई। मकड़ी उसकी ओर मुड़ी, कान लगाकर सुनने लगी। मक्खी जाले से टकराई और उसमें फंस गई। वह बेचैन होकर जोर-जोर से भिनभिनाने लगी। उधर मकड़ी जल्दी-जल्दी मक्खी की ओर बढ़ रही थी। नहीं, दुष्ट मकड़ी, तू मक्खी को नहीं मार पाएगी। मैंने जाल को तोड़ दिया और मक्खी को छुड़ा दिया। उड़ जा मक्खी, फिर कभी दुष्ट मकड़ी के जाल में मत फंसना।

टमाटर (स्लावा)

हरे-हरे पौधों पर लाल-लाल टमाटर लगे हैं। सुबह टमाटरों पर ओस पड़ी होती है। ओस की हर बूंद में सूरज की सुनहरी किरण खेलती है। सफेद तितली लाल टमाटर पर बैठ गई। मधुमक्खी भिनभिनाती आई। उसने सोचा, यह बड़ा-सा लाल फूल है। थोड़ी देर तक फूल पर मंडराती रही और फिर उड़ गई।

बच्चों की रचनाएं विशाल कार्य का परिणाम हैं। बच्चों के साथ विचारों और शब्दों के सजीव स्रोत पर जाना चाहिए, यह चेष्टा करनी चाहिए कि चारों ओर के संसार की वस्तुओं, परिघटनाओं के चित्र शब्दों के माध्यम से बच्चों की चेतना में ही न बनें, बल्कि उनके हृदय में भी उतर जाएं। शब्दों की भावनात्मक-सौन्दर्यबोधात्मक रंगत, उसकी सूक्ष्मतम छटाएं—यही है बच्चों के लिए सृजनात्मक कार्यों का जीवनदायी स्रोत। मेरे बच्चे की चेतना में शब्द ज्वलंत बिंबों से जुड़े हुए थे, इसलिए कक्षा में अपनी रचनाएं लिखते समय वे साथ में चित्र भी बनाते थे।

यह आशा करना तो भोलापन ही होगा कि अपने आस-पास के सौन्दर्य के प्रभाव में बच्चा तुरन्त ही कोई रचना रच लेगा। बच्चे किसी सहज अन्तःप्रेरणा से ही सृजन नहीं करते। बच्चा केवल तभी रचना बनाएगा, जबकि वह अध्यापक के मुंह से प्रकृति का वर्णन सुनेगा। मैंने बच्चों को जो पहली रचना सुनाई वह सन्ध्या की शान्त घड़ी में तालाब के तट पर रची गई थी। मैं बच्चों को यह दिखाना चाहता था कि किस प्रकार उसकी आंखों के सामने जो जीती-जागती तस्वीर है उसे शब्दों में उतारा जा सकता है। पहले तो बच्चे मेरी बनाई रचनाएं दोहराते रहे और फिर शनैः शनैः वे स्वयं अपने शब्दों में उन प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करने लगे, जिनसे उन्हें रोमांच होता था—इस प्रकार बच्चों के व्यक्तिगत सृजन की प्रक्रिया आरम्भ हुई। इस कार्य में शब्दों की भावनात्मक-सौन्दर्यबोधात्मक छटाओं की अनुभूति बहुत मानी रखती है। बच्चा केवल तभी रचनाएं लिखना सीखेगा, जबकि उसके लिए हर शब्द एक ईंट की भांति हो, जिसका स्थान पहले से निर्धारित है। बच्चे वही एकमात्र ईंट चुनते हैं, जो इस मामले में ठीक बैठती हो। वे सबसे पहले दिमाग में जो शब्द आया उसे ही नहीं बिठा सकते। उनकी भावनात्मक-सौन्दर्यबोधात्मक संवेदनशीलता उन्हें ऐसा नहीं करने देती।

रचनाएं रचना मेरे बच्चों को मनपसन्द काम हो गया। वे जो कुछ भी देखते, अनुभव करते, उसे शब्दों में व्यक्त करने की कोशिश करते। शब्द बच्चों के लिए अपने चारों ओर के संसार के प्रति अपना रुख व्यक्त करने का साधन होते हैं। दूसरी, तीसरी, चौथी कक्षाओं में बच्चे अपने बड़ों—फार्म के किसानों और मजदूरों—के बारे में, सोवियत लोगों के श्रम के बारे में, सेब के पेड़ों की फूटती कोंपलों और मुरझाते फूल के बारे में, शरद के अन्तिम सुहावने दिनों में खेतों-मैदानों में उड़ते रजत तारों और बाग में सेब की फसल बटोरने के बारे में रचनाएं रचने लगे। चार बरसों, प्रत्येक छात्र ने 40-50 लघु रचनाएं रचीं। लीजिए, देखिए कुछ रचनाएं, जो बच्चों ने दूसरी, तीसरी और चौथी कक्षाओं में लिखीं।

खिड़कियों पर बर्फीले फूल कैसे बनते हैं (तान्या, चौथी कक्षा)

मैंने मां से पूछा, 'खिड़की के शीशों पर बर्फ के फूल कैसे बनते हैं?' मां ने कहा, 'हिम-बाबा का छोटा-सा पोता ये फूल बनाता है। वह रात को हिम-बाबा के साथ घूमता है और खिड़कियों पर फूल बनाता है....'मेरा मन हुआ, देखूं कैसे वह फूल बनाता है। रात हुई, तो मैं सोने के लिए बिस्तर में लेट गई, पर आंखें बन्द नहीं कीं। सब सो गए। खिड़की के बाहर पेड़ चरमराया। एक छोटा-सा लड़का खिड़की के पास आया। वह खिड़की पर चांदी की पेन्सिल चलाता जा रहा था और गुनगुनाता जा रहा था। देखती क्या हूं कि बड़ा ही अनोखा फूल बन गया—चौड़ी-चौड़ी पत्तियां और छोटी-छोटी पंखुड़ियां। सुबह धूप निकली और फूल जी उठा। पता नहीं, मुझे सपना आया था या मैंने सचमुच ही यह देखा था।

पाले में फूलों की बहार (गाल्या, तीसरी कक्षा)

शरद ऋतु में तापघर के पास गुलदाउदी के फूल खिले। वे ठण्डे कोहरे से नहीं डरते। पर उत्तर से पाला आया। बाल्टी में पानी जम गया। अब फूलों को ठण्ड से बचाना चाहिए। हमने उन्हें गमलों में लगाकर तापघर में रख दिया। उनकी पत्तियां काट दीं। थोड़े दिनों बाद पौधे फिर हरे-भरे हो गए और फिर उनमें फूल भी आ गए। सुबह मैं जागी, देखा बाहर हिम ही हिम था। हिम और धूप। मैं जल्दी-जल्दी तापघर में गई। वहां गुलदाउदी के सफेद, नीले, आसमानी फूल खिल रहे थे और बाहर पाला पड़ रहा था। फूल उजली धूप देखकर खुश हो रहे थे।

जब हम चरागाह से लौट रहे थे (पाव्लो, दूसरी कक्षा)

गर्मियों में हम चरागाह से घास लेने गए थे। मां ने गाड़ी पर ढेर सारी घास लाद दी और रस्सी से बांध दिया। घोड़े धीरे-धीरे चल रहे थे। हम घास पर बहुत ऊंचे बैठे हुए थे। सूरज डूब गया, तारे चमकने लगे। मैं घास पर लेट गया और आकाश को निहारने लगा। हमारी गाड़ी गाड़ी नहीं रही, वह बड़ी नाव हो गई। वह समुद्र में बढ़ रही थी। हमारे ऊपर तारे थे, बिल्कुल पास ही। बस हाथ उठाओ और तारों को छू लो। दूर कहीं हरे-भरे किनारे थे। वहां बटेर गा रहा था, टिड्डे वायलिन बजा रहे थे। हमारी नाव रुक गई, पर तारे डोल रहे थे। नाव किनारे लग गई। मां उठ खड़ी हुईं, पर मेरा जी करता था और थोड़ी देर लेटा रहूं।

शरद का उदास दिन (शूरा, तीसरी कक्षा)

दिन छोटे हो गए हैं और रातें लम्बी। सुबह दिन के ऊपर कोहरा बहता है।

कहां गया सूरज ? क्यों नहीं वह कोहरे के फाहों को छांट देता? आसमान से शरद ऋतु की वर्षा की छोटी-छोटी बूंदें गिर रही हैं। पेड़ टहनियां झुकाए खड़े हैं। पत्तियां झड़ रही हैं। कोहरे में से कहीं किसी पंछी की लम्बी चीख आती है। शायद वह गरम देशों को नहीं जा सकता है। और लोगों से शिकायत कर रहा है। जंगल में नीरवता छाई हुई है। कठफोड़वे ने कुछ बार ठक-ठक की और फिर खामोश हो गया। बलूत के सुनहरे फल पत्तियों पर गिर रहे हैं। सारी दुनिया दूधिया कोहरे की चादर ओढ़े हुए है।

जब शरद ऋतु आती है (सेर्योझा, चौथी कक्षा)

सुबह को अबाबीलें हैरान-परेशान-सी गांव के ऊपर उड़ रही थीं। फिर उन्होंने एक बड़ा-सा झुण्ड बना लिया। टेलिफोन के तारों पर पास-पास बैठ गईं और धीमी-धीमी आवाज में चिचियाने लगीं। वे सोच-विचार कर रही थीं कि कब गरम देशों को जाया जाए। अगले दिन अबाबीलें नहीं रहीं। कहां उड़ गईं वे ? कैसे उन्हें पता चल जाता है कि शरद ऋतु आ रही है ? दिन तो अभी गरम ही हैं। गुलाबी धूप खिलती है। मुझे शरद की उजली सन्ध्याएं बड़ी प्यारी लगती हैं। बड़ी देर तक आसमान में डूबते सूरज की लाली छाई रहती है। पेड़ों की पत्तियां भी लाल लगती हैं। यह डूबते सूरज की ललिमा की छाया है। शान्त तालाब के जल में भी लाली है। हां, शाम को तालाब पर बड़ा कोलाहल होता है—गरम देशों को जा रहे पक्षी यहां रात काटते हैं। सुबह होते-होते तालाब पर कोहरे की चादर बिछ जाती है। घास पर ओस पड़ी होती है। ओस सन-सी सफेद होती है, वैसी नहीं, जैसी गर्मियों में होती है। यह शरद आने की निशानी है।

जीवन में सबसे आवश्यक क्या है (वार्या, चौथी कक्षा)

जीवन में सबसे आवश्यक क्या है ? खनिक कहता है—सबसे आवश्यक है—कोयला। अगर कोयला न हो, तो मशीनें रुक जाएं, लोहा न बने, लोग ठण्ड से अकड़ जाएं।

धातुकर्मी कहता है—सबसे आवश्यक है—धातु। धातु के बिना न कोई मशीन बन सकती है, न कोयला निकाला जा सकता है, न अनाज उगाया जा सकता है, न ही कपड़ा बनाया जा सकता है।

किसान कहता है—सबसे आवश्यक है—रोटी। रोटी के बिना न खनिक काम कर सकता है, न धातुकर्मी, न पायलट और न सीमा प्रहरी ही।

किसकी बात सच है ? जीवन में सबसे आवश्यक क्या है ? सबसे आवश्यक

है—श्रम। श्रम के बिना न कोयला मिल सकता है, न धातु और न रोटी ही।

घोड़ा (सान्या, चौथी कक्षा)

मां ने मुझे यह घटना सुनाई। बहुत पहले की बात है, जब हमारे गांव में सामूहिक फार्म बन ही रहे थे। फार्म वालों ने एक घोड़ा खरीदा। वह किसी को हाथ ही नहीं लगाने देता था। बहादुर से बहादुर लोग भी उसके पास जाते हुए डरते थे। वह सुमों से जमीन खोदता था, दांत मारता था।

एक दिन यूर्को नाम का नौजवान उस पर सवार हो ही गया। घोड़ा जोरों से हिनहिनाया, उसने अगली टांगें ऊपर उठाईं, फिर दौड़ चला, सड़क पर उसने यूर्को को अपनी पीठ से गिरा दिया। कुछ देर तक वह दौड़ता गया, आखिर गांव के पास रुका। सड़क पर दो छोटे बच्चे खेल रहे थे। वे भागकर घोड़े के पास गए और उसकी अगली टांगों से चिपक गए। मां की डर के मारे जान सूख गई। वह सोच रही थी—अभी यह घोड़ा बच्चों को कुचल देगा। पर घोड़ा बिल्कुल शान्त खड़ा था। वह टांग को जरा सा हिलाता और फिर खड़ा हो जाता था। तिरछी नजरों से बच्चों को देख रहा था, मानो डरता हो कि उन्हें चोट न पहुंचा दे। बच्चे थे कि खेलते जा रहे थे। फिर घोड़ा धीरे-धीरे बड़ी सावधानी से बच्चों के पास से हट गया और गांव में से होता हुआ दौड़ चला। लोगों ने उसे पकड़कर घुड़साल में खड़ा कर दिया।

साहियां (फेद्या, चौथी कक्षा)

हमारे घर के ओसारे के नीचे साहियां रहती हैं। शाम को छोटे से छेद में से उनका सारा परिवार निकलता है और तालाब की ओर जाता है। आगे-आगे बूढ़ी पापा साही होती है, उसके पीछे पांच छोटे-छोटे बच्चे और सबसे पीछे मां साही। क्या करते हैं ये वहां ? मैं चुपके-चुपके देखने लगा, पता चला—वे पानी पीते हैं और नहाते हैं। फिर मां और पापा साही अपने छोटे-छोटे पंजों से जमीन खोदते हैं और वहां से कोई जड़ें निकाल-निकालकर खाते जाते हैं। साही बच्चे उधर खेलने में मस्त होते हैं। साहियों ने एक एकांत जगह ढूंढ ली है, वहां कोई नहीं जाता।

एक दिन न जाने कहां से एक कुत्ता उधर आ निकला। वह बूढ़ी साही के पास गया। बूढ़ी साही ने अपने कांटे खड़े कर लिए और गोल-मटोल हो गई। दूसरी साहियों ने भी ऐसा ही किया। कुत्ते ने बूढ़ी साही को अपने दांतों में दबोचा और तालाब की ओर ले चला। उसे पानी में फेंक दिया। साही किनारे की ओर तैरने लगी। कुत्ता बड़े मजे से उसे देख रहा था। फिर वह उसके साथ खेलने लगा। मैंने कुत्ते को भगा दिया।

अगले साल वसंत में ओसारे के नीचे अकेली बूढ़ी साही ही रह गई। बाकी साहियां कहां गईं ? शायद, दूसरी जगह जा बसी थीं और बूढ़ी साही ने अपनी पुरानी जगह नहीं छोड़नी चाही। मैंने ओसारे के पास तश्तरी में दूध रखा। साही ने दूध पी लिया। अब वह मुझसे नहीं डरती थी। एक दिन मैं उसे पुचकारता-पुचकारता कमरे में ले आया। मैंने बत्ती जलाई। साही बत्ती की ओर टकटकी लगाकर देखने लगी। मैंने फर्श पर पुराना अखबार रखा। साही उससे खेलने लगी। रात बिताने वह ओसारे के नीचे अपने बिल में चली गई।

आर्त्योम मिखाइलोविच (दान्को, चौथी कक्षा)

हमारी पायोनियर रैली में आर्त्योम मिखाइलोविच आए थे। वह सब्जियां उगाने वाली टोली में काम करते हैं। हम तो सोचते थे कि वह बस दादाजी ही हैं। पता चला वह तो गृहयुद्ध के वीर हैं। उन्होंने बताया कैसे वह दुश्मन की टोह लेने जाते थे, कैसे प्रतिक्रांतिकारियों पर हमला करते थे। एक बार वह घायल हो गए और उन्हें बन्दी बना लिया गया। उन्हें गोली मारने का हुक्म दिया गया। पर गोली नहीं मारी गई, बस दुबारा बुरी तरह से घायल कर दिया गया। रात को वह रेंग-रेंगकर वहां से दूर चले गए। एक किसान से उन्होंने शरण मांगी। किसान ने उन्हें अपने घर की दुछत्ती पर छिपाकर रखा, उनका इलाज किया। ठीक होने पर वह फिर सफेद गार्डों से लड़ने चले, ऐसे हैं हमारे दादा आर्त्योम मिखाइलोविच। मैं भी ऐसा बनना चाहता हूं।

विजय दिवस (वोलोद्या, तीसरी कक्षा)

विजय दिवस आया। इस दिन लड़ाई खत्म हुई थी। हमारी सोवियत सेना ने फासिस्टों पर विजय पाई थी। बम और गोले फटने बन्द हो गए थे। अब हर साल लोग विजय दिवस मनाते हैं, शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। व्लादीमिर इल्यीच लेनिन ने हमारी कम्युनिस्ट पार्टी बनाई थी और सब लोगों से कहा था, 'उक्राइनी, रूसी, बेलोरूसी, जार्जियाई, मोल्दावियाई—सब लोग मिल-जुलकर रहो, तब तुम्हें कोई नहीं जीत सकेगा।

हम सब मिलकर भी रचनाएं रचते थे। एक बार शरद में बच्चे 'स्वप्न लोक' में अलाव के पास बैठे थे। बाहर सारा दिन बादल छाए रहे थे, बारिश हो रही थी। मैं बच्चों को उष्णकटिबंधीय द्वीपों के बारे में बता रहा था। बच्चों को गर्मियां, नदी का किनारा, पालेज पर बिताए दिन याद हो आए। बच्चों की इन यादों से एक रचना बनी, जिसे बाद में उन्होंने 'हमारी मातृभाषा' की कापी में लिखा।

पालेज पर बिताए दिन

तपी जमीन पर बड़े-बड़े तरबूज उग रहे थे—कोई हरा, कोई गहरा हरा, कोई नीलापन लिए हरा। सुबह उन पर ओस पड़ी होती थी, ठण्डी-ठण्डी ओस। घास पर भी ओस होती और हमारे टहनियों और घास-पात के झोंपड़े पर भी ओस की अनगिनत बूंदें होतीं। एक दिन दान्को सुबह तड़के उठ गया और एक खूब बड़ा तरबूज झोंपड़े में ले आया। उसको काट लिया। जो-जो उठता जाता उसको ठण्डा तरबूज मिलता जाता। 'जो सबसे बाद में उठेगा, उसे तरबूज का सबसे मजेदार बिचला हिस्सा, 'बाबा'—मिलेगा।' सब उठ गए, अकेला साश्को ही सोया हुआ था। हम बैठे इन्तजार कर रहे थे कि कब वह उठे। आखिर हम इन्तजार करते-करते थक गए और हमने खुद ही 'बाबा' खा लिया। फिर हम एक और तरबूज ले आए। इसका 'बाबा' साश्को को मिला।

कोहरे भरी शान्त सुबह थी। कोहरा खड्ड से आया था और सारे पालेज पर फैल गया था। बादलों के पीछे से सूरज झांका, तरबूज चमक उठे। लगा, वह तरबूज नहीं, हरे, नीले, भूरे कांच के गोले हैं, जो सफेद नदी में तैर रहे हैं।

दिन को पालेज पर गरम हवा चलती थी। नीले आकाश में भरत पंछी गाते थे। वे पालेज पर क्यों नहीं उतरते ? भरत पंछी गेहूं, जौ, बाजरे के खेत में ही क्यों घोंसला बनाते हैं, अंडे देते हैं ? कूटू के खेत में भरत पंछी के सबसे ज्यादा घोंसले होते हैं।

पालेज से थोड़ी दूर खड्ड के पास हमें एक बांबी मिली। दादा ने देखा कि चींटियां जल्दी-जल्दी कहीं आ-जा रही हैं। उन्होंने कहा—पास ही कहीं बड़ी बांबी है, अभी चींटियां हमें खुद ही बता देंगी कि वह कहां है। दादा ने तरबूज के कुछ टुकड़े चींटियों के रास्ते के पास रख दिए। चींटियां तुरन्त मीठे तरबूज पर टूट पड़ीं। हमने देखा कैसे वे छोटे-छोटे टुकड़े उठाकर एक दिशा में ले जा रही हैं। उनके पीछे चलते-चलते हम बांबी तक पहुंच गए। झाड़ी के नीचे मटमैला ढूह जीता-जागता-सा लगता था। चींटियां बांबी के अन्दर कहीं तरबूज के टुकड़े ले जा रही थीं और फिर पालेज पर लौट रही थीं। दादा ने हमें बताया कि चींटियां जंगल को और लोगों को कितना लाभ पहुंचाती हैं। एक बांबी कई हैक्टर जंगल को हानिकारक कीड़ों से बचाती है। हम चींटियों की रक्षा करने लगे। दादा ने हमें नई बांबियां बनाना भी सिखाया।

जब हम पालेज से घर लौट रहे थे, तो दादा ने सबको एक-एक बड़ा तरबूज दिया। तरबूज कई दिनों तक हमारे घरों में रखे रहे। वे हमें गरम हवा की, स्तेपी के खुले मैदानों की, भरत पंछी और दादा की और हमारे झोंपड़े के पास ही आ बसे झींगुर के गीत की याद दिलाते थे। कहां है अब वह झींगुर ?

कविता में ही शब्दों का सौन्दर्य सबसे अधिक उज्ज्वल रूप में मूर्तिमान होता है। कविता या गीत पर विमुग्ध होते हुए बच्चे शब्दों का संगीत सुनते हैं। श्रेष्ठ कविताओं में शब्द मातृभाषा की सूक्ष्मतम भावनात्मक छटाओं को उजागर करते हैं। इसलिए बच्चे कविता को याद करना चाहते हैं। बच्चे के मन में जो शब्द पैठ गए हैं, उन्हें दोहराते हुए उसे सच्चा आनन्द प्राप्त होता है।

मैं यह चेष्टा करता था कि बच्चे काव्यमय शब्दों के संगीत को अनुभव करें। प्रकृति के आंचल में, उन क्षणों में, जब बच्चे अपने चारों ओर के सौन्दर्य पर मंत्र-मुग्ध होते थे, मैं उन्हें कविताएं सुनाता था। एक बार हम खेत में गए; हमारे सामने तालाब का मनोहारी दृश्य था, उसकी पारदर्शी गहराई में बेदमजनूं की परछाइयां कंपायमान हो रही थीं। मैंने बच्चों को तरास शेव्चेन्को की ये पंक्तियां सुनाईं—

मन्द-मन्द बहता था समीर,
घाटियां थीं ऊंघती।
तालाबों-झीलों के तटों पर
हरियाली थी डोलती....

बच्चे ये पंक्तियां दोहरा रहे थे। वे यह अनुभव कर रहे थे कि सजीव बिंब की सृष्टि करने वाले इन शब्दों का मेल उन्हें संगीतमय बना देता है और इस तरह शब्दों में न केवल नई भावनात्मक छटा आती है, बल्कि वे चारों ओर के संसार में भी नए सौन्दर्य को उजागर करते हैं। संसार के श्रेष्ठतम कवियों की रचनाओं के प्रभाव में बच्चों के मन में यह इच्छा जाग रही थी कि वे भी शब्दों में संगीत लाएं। वसंती दिन के सौन्दर्य का रसपान करते हुए बच्चे अपने भाव ऐसे शब्दों में व्यक्त करने का प्रयत्न करते थे कि उनमें संगीत ध्वनित हो। बाल-हृदयों में काव्य-प्रेरणा का आवेग उठता था—वे कविताएं रचते थे।

लरीसा दूर-दूर तक फैले खेतों को देखती है, उसकी आंखें चमकती हैं, वह हौले से कुछ शब्द कहती है, उनकी ध्वनि को सुनती है—

'गेहूं के पीले सागर में लहरें उठ रही हैं।'

'तपी हवा में नीले टीले थरथरा रहे हैं,' सेर्योझा उसके विचार में अपनी कड़ी जोड़ता है।

सब में हर्षमय उत्तेजना आती है, सभी शब्दों की अपनी लय ढूंढना चाहते हैं। ऐसे क्षणों में, जब बाल-हृदय में काव्य-प्रेरणा का संचार होता है, शब्द—भरे-पूरे, सजीव शब्द, जिनमें इन्द्रधनुष के सभी रंग चमकते हैं, खेतों-मैदानों की सुरभि है—बच्चों के आत्मिक जीवन में अपना स्थान बनाते हैं; बच्चे उनमें अपनी भावनाओं, विचारों और अनुभूतियों को व्यक्त करने का साधन खोजते और पाते हैं। बाल-हृदय में काव्य

प्रेरणा जगाने का अर्थ है विचारों का एक और जीवनदायी स्रोत खोलना। इस स्रोत की शक्ति इस बात में है कि शब्द केवल उन वस्तुओं और परिघटनाओं को ही नहीं व्यक्त करते हैं, जिनको वे मानव-वाणी में निर्दिष्ट करते हैं, अपितु वे भावनाओं और अनुभूतियों के गूढ़तः व्यक्तिगत बोध को भी व्यक्त करते हैं।

काव्य-सृजन की शिक्षा कवियों की पौध उगाने के लिए नहीं, बल्कि तरुण हृदयों में उदात्त बनाने के लिए आवश्यक है। बाल-हृदयों में काव्य प्रेरणा संचारित करने के लिए प्रत्येक अवसर का मैं लाभ उठाता था, ताकि हर बच्चे की आत्मा में शब्दों की अपनी काव्यमय ध्वनि हो।

जाड़ों को शान्त प्रभात वेला है। वृक्ष तुषारमंडित हैं। सुइयों जैसे बारीक तुषार कणों से ढकी टहनियां चांदी की बनी लगती हैं। हम स्कूल के बाग में जाते हैं, कोशिश करते हैं कि कहीं अनजाने में कोई टहनी न हिल जाए और अद्वितीय सौन्दर्य का आकर्षण विलुप्त न हो जाए। हम खड़े हो जाते हैं। मैं बच्चों को शीत-सौन्दर्य पर पुश्किन और हाइने की कविताएं सुनाता हूं। कविता और सौन्दर्य के प्रभाव में बच्चे वे शब्द ढूंढते हैं, जिनकी सहायता से तुषारमंडित वृक्ष को चित्रित किया जा सकता है और कविता बनाते हैं। सब मिलकर कविता बनाते हैं—हम कई बार तुषारमंडित बाग में आते हैं। कविता में वे बिंब भी सजीव हो उठते हैं, जो बच्चों ने पहले कहानियों में बनाए थे—

जादूगर सुनार आया,
सुनहरी भट्ठी लाया;
चांदी उसमें ली गला
और पेड़ों पर दी डाल।
रातभर वह रहा कूटता,
हथौड़ा रहा गूंजता....
बाग ने ओढ़ी रुपहली चादर।
रजत सुइयां टकरातीं,
बाग में झन्कार गूंज जाती।
कहां है जादूगर सुनार ?
सुनहरे पंखों पर उड़कर
गया वह सूरज के पास।
लेकर और चांदी,
डालकर उसे झोले में,
लौटेगा वह धरती पर।

फिर गलेगी चांदी
और गूंज उठेगा बाग....
सूरज देख रहा राह सुनार की,
कहां गए तुम सुनार मेरे ?
क्यों गलाते हो बाग में,
चांदी मेरी इतनी ?
भूल गए क्या सुनार मेरे
मुकुट तुम्हें है बनाना ?
और लाल किरण लगी झांकने
रुपहले बाग में हमारे।
विस्मित रह गया सूरज,
कैसा अनुपम है यह सौन्दर्य !

बचपन में हर बच्चा कवि होता है। बेशक, यह उम्मीद करना भोलापन होगा कि बच्चे को किसी दैवी चमत्कार से काव्य-प्रेरणा मिलेगी। मैं जन्मजात प्रतिभा पर मुग्ध होने वालों में नहीं हूं, मैं यह नहीं मानता कि हर बच्चा अपनी प्रकृति से ही कवि होता है। सौन्दर्य की मानवीय भावना की गहरी और तीव्र अनुभूति ही मनुष्य को कविता बनाती है। इस भावना का अगर विकास नहीं किया गया है, तो बच्चा प्रकृति और शब्दों के सौन्दर्य के प्रति उदासीन रहेगा, उसके लिए पानी में कंकड़ फेंकना और गाती बुलबुल पर पत्थर दे मारना एक ही बात होगी। बच्चे को काव्य-प्रेरणा की सुखद अनुभूति प्रदान करना, उसके हृदय में काव्य सृजन का सजीव स्रोत जगाना—यह बच्चे को पढ़ना और सवाल हल करना सिखाने जितना ही महत्वपूर्ण कार्य है। कुछ बच्चों में यह स्रोत जोरों से फूटता है, कुछ में धीरे-धीरे बहता है। मैंने देखा कि कुछ बच्चों के लिए काव्य-प्रेरणा कोई क्षणिक आवेग नहीं है, लौ की भभक नहीं है, बल्कि यह तो उनकी आत्मा की स्थायी आवश्यकता है।

काव्य-सृजन वाक्-संस्कृति का सर्वोच्च शिखर है और वाक्-संस्कृति मानव-संस्कृति के सार को ही व्यक्त करती है। काव्य-सृजन किन्हीं असाधारण प्रतिभाशाली लोगों का विशेषाधिकार नहीं है। काव्य रचना हर कोई कर सकता है। काव्य-सृजन मनुष्य को ऊंचा उठाता है। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि सृजन का यह सबसे अधिक सूक्ष्म क्षेत्र हर बच्चे को बिल्कुल निजी, आत्मिक मामला हो।

तीसरी कक्षा में ही लरीसा, सान्या, सेर्योझा, कात्या, वार्या, कोल्या, तान्या, लीदा चुपके-चुपके मुझे अपनी कविताएं सुनाने लगे, जो उन्होंने एकांत में रची थी। मैं जानता था कि दूसरे बच्चे भी कविताएं लिखते हैं, किन्तु अपने शौक की बात करते

हुए शर्माते हैं। यह बहुत ही अच्छी बात थी।

मैं इसे कोई असाधारण बात नहीं समझता था कि बच्चे कविताएं लिखते हैं; यह तो उनकी आत्मिक शक्तियों का सामान्य खेल है, साधारण सृजन लौ है, जिसके बिना भरे-पूरे बचपन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पर हां, मुझे इस बात पर बहुत खुशी थी कि बच्चों का आत्मिक जीवन इतना समृद्ध है, ऐसे सजीव स्रोत-सा बह रहा है।

खासतौर पर मैं यह देखकर खुश होता था कि काव्य-सृजन कोल्या के हृदय को उदार, उदात्त बना रहा था। हमारी मैत्री दिनोंदिन बढ़ रही थी। स्कूल के बाग में एक जगह थी, जहां मुझे एकांत में बैठना अच्छा लगता था। अच्छा मौसम होने पर मैं यहां विश्राम करता था, वायलिन बजाता था। संयोगवश कोल्या भी मेरे इस कोने में आ पहुंचा। शायद वह स्वयं भी एकांत खोज रहा था। मुझे देखकर कोल्या सकपका गया, वह वहां से चला जाना चाहता था, पर मैंने उससे अनुरोध किया कि वह वहीं रह जाए। मैं वायलिन बजा रहा था—ग्रीष्म सन्ध्या के सौन्दर्य को संगीत में व्यक्त करने का मन हो रहा था। कोल्या ध्यान से धुन सुन रहा था। फिर मैं वायलिन बजाने में इतना लीन हो गया कि मैंने नहीं देखा कब कोल्या मेरे पास आकर बैठ गया। मैंने उसे वायलिन थमा दी। मैं जो धुन बजा रहा था, कोल्या ने उसे दोहराने की कोशिश की, लेकिन नहीं कर पाया। उसने वायलिन बजाना बन्द कर दिया। हम दोनों चुपचाप बैठे डूबते सूरज को निहार रहे थे, सन्ध्या की नीरवता पर कान लगाए थे। शायद इसलिए कि हमें अपने चारों ओर के संसार के सौन्दर्य की एक-सी अनुभूति हो रही थी, कोल्या ने अपनी एक कविता सुनाई। कविता यह थी—

> हरी-हरी पत्तियों में नीले-नीले फूल,
> मंडराता है भौंरा फूलों पर।
> शाम ढली, बुलबुल उड़ आई,
> छेड़ दिया गीत उसने।
> सुबह हुई, बादल गरजे,
> फूलो को नहलाया बरखा ने।
> बाग पर मंडराए काली घटा,
> और फूल खिलें जैसे नीले गगन।

उस दिन शाम को हम दोनों काफी देर तक बाग में बैठे रहे। कोल्या अक्सर यहां आने लगा, अब वह प्रायः हर बार एक छोटी-सी कविता सुनाता था। देखिए एक और कविता। यह मेरे स्मृति-पटल पर इतनी अच्छी तरह अंकित हो गई थी कि मैंने इसे सुनने के सालभर बाद कापी में लिखा—

> छिप गया सूरज टीले पीछे,

लाला हो उठा आसमान :
कल बहेगी तेज हवा।
चीखता-चिल्लाता कौवों का झुण्ड
उड़ गया आसमान में,
बढ़ चला पश्चिम को,
काले जंगल की ओर।
ऊंचे पेड़ पर होती
पत्तियों की सरसराहट....
लो, छा गया सन्नाटा।
दूर कहीं चली जाती
गाड़ी घड़घड़ाती।
काला पड़ गया लाल आसमान,
तपी धरती ने ओढ़ी धूसर चादर।
टिमटिमाया तारा आकाश पर
उतर रही है रात।

मुझे पता चला कि कोल्या अपनी कविताएं कापी में लिखता नहीं है, वे उसे याद रहती है। कविताएं उसके हृदय, उसकी स्मृति में जीती थीं। मेरे छात्रों में शायद ही कोई ऐसा रहा हो, जो कागज-पेन्सिल लेकर कविता सोचने बैठता हो। कविताएं कापी में लिखने के लिए नहीं रची जाती थीं। बच्चे तो कविता के बिना रह नहीं सकते थे, ऐसे ही जैसे कि वे चित्रकारी बिना नहीं रह सकते थे।

शूरा ने भी आत्मिक निकटता के क्षणों में मुझे अपना रहस्य बताया। जाड़ों में एक दिन स्कींइग करने जंगल हुए थे। लाल सूरज क्षितिज की ओर झुक रहा था। डूबते सूरज की किरणों में चीड़ के तने ऐसे लगते थे, मानो लोहा कूटकर बनाए गए हों। हम जंगल के सिरे पर खड़े इस मनोहर छटा का रसपान कर रहे थे और तब शूरा ने मुझे कठफोड़वे के बारे में अपनी कविता सुनाई—

चीड़ की छाल तले छिपे हैं हजार तार,
जा बैठता है कठफोड़वा चीड़ शिखर पर,
चोंच मारता है ऊपरी तार पर,
मन्द-मन्द होती है झन्कार।
पतला है तार शिखर के पास
और धरती के निकट यह नहीं तार;
यहां तो गूंजता है घंटा,

लाल छाल तले कांसे का घंटा।
फुदकता है कठफोड़वा, खोजता है तार,
चोंच जो मारता, बज उठता है तार....
जंगल भी लगा गाने,
और कठफोड़वा ढूंढ़ता नया तार।

वार्या ने बचपन में दसियों कविताएं रचीं। इस बच्ची का हृदय अत्यंत संवेदनशील था। एक बार मैंने देखा, कैसे वार्या ग्रीष्म सन्ध्या के सौन्दर्य से मंत्र-मुग्ध हुई तालाब के किनारे खड़ी थी और पानी पर टहनियां लटकाए बेदमजनूं के पेड़ों और तालाब के दर्पण को, जिसमें नीला आकाश प्रतिबिंबित हो रहा था, निहार रही थी। कुछ दिनों वाद बच्ची ने मुझे इस सन्ध्या के बारे में कविता सुनाई—

नीला गगन, हरे वृक्ष, सफेद मकान—
झिलमिलाते हैं सब जल में।
नीले दर्पण के सामने खड़ी हूं मैं,
और फैला है सामने असीम संसार।
वहां है सूर्यास्त लाल,
और तैरता बादल का टुकड़ा सफेद।
वहां टिमटिमाता है तारा, और लम्बी राह पर
उड़ चली है चिड़िया—लेती सूरज से विदाई।
है संगीत अपना इस अनोखी दुनिया में।
सुनो—छुआ किसी ने मोटा तार
और गा उठा नीला गगनमंडल, गाते हैं वृक्ष
और मकान गाते हैं।
सांझ ढले, झील के तट पर
सुनती हूं मैं यह संगीत,
जब सूरज आग लगाता
दूर कहीं समुद्र के पार।
जब उतावले कबूतर उड़ते जाते
रैन-बसेरे को,
और दिनभर की थकी हवा जा छिपती है
अंधेरे खड्ड में
विश्राम करने को।

हर साल शरद के आगमन पर बच्चे गर्मियों में विदाई लेना चाहते थे। हम

अपने बलूत वृक्ष के पास जाते थे और बीती गर्मियों, सारसों और शरद के गुलाबी दिनों के बारे में कविताएं रचते थे।

सबसे अधिक ध्यान देने योग्य और प्रशंसनीय बात यह थी कि बच्चों की कल्पना में कितने सजीव, ज्वलंत बिम्ब बनते हैं। मैं यह चेष्टा करता था कि जिन बच्चों के लिए काव्य-प्रेरणा आत्मिक आवश्यकता बन गई है, वे संसार के श्रेष्ठतम कवियों की रचनाएं पढ़ें। हमने इन रचनाओं का एक संग्रह बनाया। इसकी आवश्यकता विशेषतः उन बच्चों के लिए थी, जिनके लिए काव्य-सृजन अभी आत्मा की मांग नहीं बनी थी, जिनमें अभी काव्यमय शब्दों के प्रति अनुराग विकसित करना था। एक बार फिर मैं यह दोहराता हूं कि काव्य-सृजन को किसी असाधारण प्रतिभा का लक्षण नहीं समझना चाहिए। यह वैसी ही नियमबद्ध बात है, जैसे कि चित्रकारी—आखिर चित्र तो सभी बच्चे बनाते हैं, हर बच्चा इस चरण से गुजरता है। लेकिन काव्य-सृजन केवल तभी बच्चों के आत्मिक जीवन में एक आम बात हो जाता है, जब शिक्षक बच्चों के सम्मुख संसार के और शब्दों के सौन्दर्य को उजागर करता है। जिस प्रकार संगीत के बिना संगीत के प्रति प्रेम नहीं विकसित किया जा सकता, उसी प्रकार काव्य-सृजन के प्रति प्रेम सृजन के बिना नहीं जगाया जा सकता।

वह मनुष्य, जिसे पुश्किन और हाइने, शेव्चेन्को और लेस्या उक्राईन्का की कृतियों से अनुराग है, वह मनुष्य, जो अपने चारों ओर के सौन्दर्य के बारे में सुन्दर शब्दों में कहना चाहता है, वह मनुष्य, जिसके लिए सही शब्द की खोज वैसी ही आवश्यकता है, जैसे कि सौन्दर्य की निहारने की आवश्यकता, वह मनुष्य, जिसके लिए मानव-सौन्दर्य की अवधारणा सर्वप्रथम मानव-गरिमा के प्रति आदर में, लोगों के बीच सर्वाधिक न्यायपूर्ण—कम्युनिस्ट—सम्बन्धों की पुष्टि में ही व्यक्त होती है, ऐसा मनुष्य कभी भी अशिष्ट और मानवद्वेषी नहीं हो सकता।

हमारा सौन्दर्य विहार

पहली कक्षा की पढ़ाई खत्म होने के कुछ समय पहले, वसंत में हम अपना सौन्दर्य विहार बनाने लगे। बच्चे काफी पहले से ही इसका सपना देख रहे थे। हम इसकी कल्पना एक शान्त, एकांत जगह के रूप में करते थे, जहां मानव हाथी से बना सौन्दर्य प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य को निखारेगा। हम भविष्य के सपने देखते थे कि कैसे वर्ष प्रति वर्ष हमारी यह जगह अधिकाधिक हरी-भरी होती जाएगी। यहां हम आराम करेंगे और श्रम करेंगे, वसंत का स्वागत करेंगे और गर्मियों से विदाई लेंगे।

स्कूल से थोड़ी दूर झाड़ियों के झुरमुट के पास बच्चों को एक छोटा-सा मैदान मिला, जिसके एक सिरे पर खड्ड था। खड्ड की ढलान पर घनी घास उग रही थी।

बारिशों के दिनों में यहां काफी नमी जमा हो जाती थी। हमने यहां उग रहे झाड़-झंखाड़ को उखाड़ा। इसे हरा-भरा मैदान बनाने में लग गए।

'यहां हरियाली का राज होगा। खड्ड की ढलान पर हम बेलें उगा देंगे। उनमें बुलबुलें और पीलक पंछी रहेंगे। यह हमारा सौन्दर्य विहार होगा,' मैंने बच्चों से कहा।

इस सपने से बच्चों को प्रेरणा मिली। इस झंखाड़ वाले जमीन के टुकड़े को हरा-भरा मैदान बनाने के लिए काफी मेहनत करनी पड़ी। घास की थिगलियां लाकर हमने यहां बिछाईं, घास को पानी दिया। बच्चे बड़ी अधीरता से बारिश का इन्तजार करते थे, ताकि वह हरी घास को सींचे। जंगल में हमने बेलों की कलमें काटीं और उन्हें खड्ड की ढलान पर लगाया। खुशकिस्मती से उस साल गर्मियों में काफी बारिशें हुईं, सो सभी पौधों ने अच्छी तरह जड़ पकड़ ली। जंगल में तरह-तरह के फूलों के पौधों को खोदकर उन्हें मैदान के एक कोने में लगाया। जंगली गुलाब की तीन झाड़ियां लगाईं—उनमें गुलाब की 'आंखें' लगाएंगे। मैदान के चारों ओर जंगली हेजलनट की झाड़ियां लगाईं। बच्चे चाहते थे कि हमारे मैदान में खेतों-मैदानों में उगने वाले फूल भी उगें। गुलदाउदी के कुछ पौधे तापघर से लाकर यहां लगा दिए—शरद के अन्त तक वे यहां खिलेंगे।

वार्या ने सूरजमुखी बोए। मैदान के दूर के कोने में बच्चों ने मुट्ठीभर कूटू के बीज बो दिए। नीना और साशा के पिताजी ने बौनी किस्म के सेब के दो पेड़ दिए। वीत्या ने बताया कि उसकी नानी ट्यूलिप उगाती हैं। हमने ट्यूलिप की गांठों समेत कुछ पौधे लगाए। गर्मियों में एक दिन जंगल में बच्चों ने एक बड़ा लिंडन वृक्ष देखा, जिस पर छोटे-छोटे फूल खिल रहे थे। पेड़ की टहनियों में हजारों मधुमक्खियां गुंजार कर रही थीं, लगता था जैसा जंगल हार्प के मधुर स्वर से ध्वनित हो रहा हो। बच्चों का मन हुआ कि हम भी अपने सौन्दर्य विहार में लिंडन वृक्ष लगाएं। शरद ऋतु में हम जंगल से लिंडन के कुछ पौधे ले आए और उनकी वीथिका बना दी। 'जब पेड़ बड़े हो जाएंगे, तो इनके शिखर मिल जाएंगे और यहां छायादार गलियारा बन जाएगा,' बच्चे सपने देखते थे।

शायद ही कोई दूसरी ऐसी इच्छा हो, जिससे श्रम करने की इतनी प्रेरणा मिलती हो, जितनी की सौन्दर्य रचना की अभिलाषा से मिलती है। इस अभिलाषा ने हमारे सारे समुदाय को प्रेरित किया। एक भी ऐसा बच्चा नहीं था, जो पौधों की देखभाल में हाथ न बंटाता हो। पहली गर्मियों में प्रकृति ने हमारे श्रम को पुरस्कृत नहीं किया, परन्तु बच्चों को अपने सपनों के सच होने का पूरा विश्वास था। अगले साल जब वसंत ऋतु आई, तो हमारा मैदान हरे कालीन सा लगता था, वहां जंगली फूल खिल उठे। तीसरी गर्मियों में यह सचमुच सौन्दर्य विहार बन गया, यहां हरियाली

और फूलों का राज था। बच्चे अक्सर यहां इकट्ठे होते थे, पढ़ते और कहानियां सुनाते थे।

सभी कक्षाएं अपना सौन्दर्य विहार बनाने लगीं और सभी यह कोशिश करते थे कि उनका सौन्दर्य विहार दूसरों से भिन्न हो। 1955 के शदर में सारे स्कूल का सौन्दर्य विहार बनाया जाने लगा। स्कूल की इमारत के पास ही हमने गुलाब वाटिका लगाई। जंगली गुलाब की झाड़ियों में कई किस्मों के गुलाबों की 'आंखें' लगाकर उगाई दसियों कलमें हमने यहां लगाईं। वर्ष प्रतिवर्ष यह वाटिका अधिक रमणीय होती जा रही है। वसंत और गर्मियों में तो यहां गुलाबों का समुद्र हिलोरें लेता है। सब लोग यहां सौन्दर्य का रसपान करने और सौन्दर्य-सृजन हेतु श्रम करने आते हैं।

अब यह गुलाब वाटिका सारे स्कूल के संरक्षण में है। जिस कक्षा को सामाजिक दृष्टि से उपयोगी श्रम में सबसे सफल माना जाता है, उसे वाटिका की देखभाल का अधिकार मिलता है। प्रायः यह अधिकार छोटी और बिचली कक्षाओं के छात्रों को दिया जाता है। उन्हें प्रतिदिन दस-बीस गुलाब चुनने की इजाजत होती है। फूलों को बच्चे कक्षाओं में ले जाते हैं, शिक्षकों, माताओं और गांवों के सर्वश्रेष्ठ कर्मियों को भेंट करते हैं। फसल कटाई का उत्सव पर गुलाबों का बड़ा गुलदस्ता बनाकर समाजवादी प्रतियोगिता के विजेताओं को दिया जाता है।

सौन्दर्य-सृजन के लिए किया गया श्रम बाल-हृदयों को उदात्त बनाता है, उन्हें उदासीनता के जंग से बचाता है। धरती को सुन्दर बनाते हुए स्वयं बच्चों की उदारता, उनके हृदय की निर्मलता और सौन्दर्य में भी निखार आता है।

जीवन-आदर्श का स्रोत

मैं अपनी कल्पना में हर छात्र को वयस्क व्यक्ति के रूप में देखने का प्रयत्न करता था। मुझे ये विचार व्यथित करते थे—नन्हे-मुन्ने, तुम कैसे नागरिक, कैसे मनुष्य बनोगे ? तुम समाज को क्या दोगे, तुम्हारी खुशी किस बात में होगी, क्या चीज तुम्हें विमुग्ध करेगी और क्या तुम्हारे मन में आक्रोश जगाएगी, धरती पर तुम कैसा चिह्न छोड़ जाओगे ?

शिक्षक और चरित्र-निर्माता के नाते मेरी चेष्टा यह थी कि युग-युग के दौरान मानवजाति ने जिन नैतिक मूल्यों का सृजन किया है, जो उसकी उपलब्धि हैं, उन्हें बाल-हृदयों में उतारा जाए। ये नैतिक मूल्य हैं—मातृभूमि से प्रेम, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को कभी स्वीकार न करना तथा उच्च आदर्शों—लोगों के सुख और स्वाधीनता—के लिए अपने प्राण तक न्योच्छावर करने की तत्परता। यहां यह बात महत्वपूर्ण है कि बच्चों की चेतना में मातृभूमि और उच्च आदर्शों के बारे में शब्द आडम्बरपूर्ण और

अर्थहीन शब्द बन जाएं, फीके न पड़ जाएं, बार-बार दोहराए जाने से घिस न जाएं। बेहतर हो कि बच्चे उच्च आदर्शों के बारे में कम ही बोलें, परन्तु उनके हृदय की उमंग में, उनकी गतिविधियों में, प्रेम और घृणा में, निष्ठा और असहनशीलता में ये आदर्श जिएं।

बच्चों के मुंह से वे शब्द को कतई नहीं कहलवाने चाहिए, जिनका अर्थ अभी वे नहीं समझते हैं। इसका नतीजा यह हो सकता है कि जनमानस के लिए जो पावन है, वह बच्चों के लिए कोरे शब्द हो जाएगा।

जिस प्रकार माली बड़े ध्यान से छोटे पौधे की जड़ें मजबूत करता है, जिन पर कई दशकों तक वृक्ष का जीवन निर्भर होगा, उसी प्रकार शिक्षक को भी यह चिन्ता करनी चाहिए कि उसके छात्रों के मन में मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम, मेहनतकश जनता से गहरी अनुरक्ति और कम्युनिज्म के उच्च आदर्शों के प्रति निष्ठा जागे। इन गुणों का विकास उसी समय शुरू होता है, जब बच्चा अपने चारों ओर के संसार को देखने, जानने-समझने और उसका मूल्यांकन करने लगता है।

यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि बड़ी पीढ़ियों ने मातृभूमि की मुक्ति और स्वाधीनता के लिए मेहनतकशों के सुखी जीवन के लिए संघर्ष में जो कुछ जीता है, पाया है, जिसका उन्होंने सृजन किया है, वह सब बच्चों के लिए प्राणों से भी प्यारा हो। रोटी का टुकड़ा और गेहूं का खेत, जंगल और नीला आसमान, सिरहाने बैठी मां की कहानियां और लोरियां—बाल-मस्तिष्क में मातृभूमि की यही पहली छवियां बनती हैं। बचपन के सुनहरे दिनों में, जबकि बच्चे शब्दों, बिंबों और दूसरों के आत्मिक जीवन के प्रति विशेषतः संवेदनशील होते हैं, तभी बाल-हृदयों को उस सबकी अनुभूति करानी चाहिए, जिस पर बड़ी पीढ़ियों को गर्व है, उन्हें यह बताना चाहिए कि बिना किसी शोषण के श्रम करने का सुख पाने के लिए हमारे दादाओं-परदादाओं ने क्या कीमत अदा की है। मैं यह प्रयत्न करता था कि बच्चे निश्चिंत होकर जीवन के सुखों का भोग ही न करते जाएं। अपने इर्द-गिर्द के संसार का और स्वयं अपना संज्ञान एकतरफा नहीं होना चाहिए। संसार का और स्वयं अपना संज्ञान पाते हुए बच्चों को धीरे-धीरे यह आभास भी होना चाहिए कि वे बड़ी पीढ़ियों द्वारा निर्मित भौतिक और आत्मिक सम्पदाओं के लिए उत्तरदायी हैं।

हम खेतों-मैदानों और जंगल में, नदी के तट पर और आस-पास के गांवों में हमारे इलाके के 'अतीत की यात्राओं' पर जाते थे। इन 'यात्राओं' के दौरान मैं बच्चों को यह दिखाने की कोशिश करता था कि हमारे जनगण के आत्मिक जीवन में वे कौन-से सूत्र हैं, जो अतीत और वर्तमान को जोड़ते हैं। उदाहरणतः मैं बच्चों से कहता हूं—

'तुम्हारे सामने यह लहलहाता खेत है, गेहूं की बालियां भर रही हैं। इसी खेत में, वहां जंगल के पास गृहयुद्ध के दिनों में सफेद गार्डों ने लाल छापामार को गोली मार दी थी। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के पहले कठिन वर्ष की गर्मियों में यहां हमारे मुट्ठीभर सैनिकों और फासिस्टों की कम्पनी के बीच लड़ाई हुई थी। यहां हमारे वीर शहीद हुए। बच्चो, दूर-दूर तक फैले इन खेतों को देखो। बीच-बीच में जो टीले तुम देख रहे हो, ये अनाम कब्रें हैं; धरती ने इन वीरों को अपने आंचल में समेट रखा है। हजारों टीले—हजारों अनाम कब्रें हैं, धरती इन वीरों के रक्त से सिंची हुई है और जनमानस इनके पराक्रमों की स्मृति संजोए हुए है। यदि इन्होंने मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि न दी होती, तो आज तुम अपनी मातृभूमि के सौन्दर्य का रसपान न कर रहे होते, फासिस्ट तुम्हें गुलाम बना देते।'

बच्चे को अपनी मातृभूमि की नियति के बारे में सोचने दीजिए, उसके हृदय को इसके भविष्य के लिए उद्विग्न होने दीजिए। उसे यह देखने दीजिए कि अतीत की घटनाएं वर्तमान का स्रोत हैं।

बचपन, जिसे हम खुशियों, खेलकूद और कथा-कहानियों की उम्र मानते हैं—इसी में ही जीवन आदर्श के स्रोत निहित हैं। इसी आयु में ही नागरिक चेतना की नींव पड़ती है। बचपन में बच्चे अपने चारों ओर के संसार में क्या देखा है, किन बातों पर वह विस्मय-विमुग्ध हुआ है, किन बातों पर उसका रोष जागा है और उसके आंसू बहे हैं—अपने साथ हुए दुर्व्यवहार के कारण नहीं, बल्कि दूसरों के भाग्य की चिन्ता के कारण—इसी बात पर यह निर्भर होता है कि हमारा छात्र कैसा नागरिक बनेगा। बच्चों के सामने बहुमुखी संसार होता है, जिसमें वे अन्तर्विरोध और जटिलताएं, सौन्दर्य और कुरूपता, सुख और दुख देखते हैं। चारों ओर के संसार में जो कुछ भी होता है, अतीत और वर्तमान में, जो कुछ लोगों के जीवन का आधार है, उसे बच्चा भलाई और बुराई में बांटता है। बचपन में ही मानवीयता और नागरिक चेतना की नींव डालने के लिए बच्चे को भलाई और बुराई की सही दृष्टि प्रदान करनी चाहिए।

इन शब्दों का अर्थ मैं यह समझता हूं—बच्चे अपने चारों ओर के संसार में जो कुछ भी जानते हैं, सभी सामाजिक परिघटनाएं, अतीत और वर्तमान में लोगों के कार्य—इस सबसे उनके हृदयों में गहरी नैतिक भावनाएं जागनी चाहिए। भलाई और बुराई को समझने की सही दृष्टि से अभिप्राय यह है कि बच्चा जो कुछ भी जानता-समझता है, उस सबको अपने दिल से लगाता है। भलाई से उसके हृदय में हर्षमय उत्तेजना और प्रशंसा का भाव उठता है, वह नैतिक सौन्दर्य का अनुसरण करना चाहता है; बुराई देखकर उसका हृदय आक्रोश से भर उठता है, वह उसे सह नहीं सकता, उसमें सच्चाई और न्याय के हेतु संघर्ष करने के लिए आत्मिक शक्ति का संचार होता है।

बाल-आत्मा को सत्यों का भण्डार मात्र नहीं होना चाहिए। मैं एक बहुत बड़े दोष से बच्चों की कोशिश करता था, और वह है—वह उदासीनता, आवेशहीनता। वह नन्हा इन्सान जिसके हृदय में कोई जोश नहीं है, भविष्य में कूपमंडूक ही होगा। बचपन में ही हर इन्सान के दिल में नागरिक आवेश की तथा उस सबके प्रति असहनशीलता की, जो बुराई है या बुराई में सहायक है चिनगारी जला देनी चाहिए।

बच्चों की चेतना में इस बात की पुष्टि करना कठिन नहीं है कि मनुष्य द्वारा मनुष्य का उत्पीड़न बहुत बड़ी बुराई है। बच्चे शिक्षक के इस प्रश्न का उत्तर तो सही ही देते हैं कि बुराई किस बात में है। परन्तु अगर बच्चे इन्सान द्वारा इन्सान को दास बनाए जाने के ज्वलंत चित्र पर अवाक् नहीं रह गए हैं, उससे स्तंभित नहीं हुए हैं, अगर उनके हृदयों में इस बुराई के दोषियों के प्रति घृणा नहीं जागी है, तो वे सच्चे नागरिक और उच्च आदर्शों वाले व्यक्ति नहीं बनेंगे।

मानवीय उदासीनता खतरनाक और घिनौनी होती है, परन्तु बच्चों की उदासीनता तो भयावह होती है। मैं यह चेष्टा करता था कि मेरे हर छात्र का मन दूसरे लोगों के सुख-दुख से बेचैन हो—जो चाहे संसार के दूसरे कोने में रहते हों, या जो 100 वर्ष पहले इस संसार में रहते थे। बेचैनी की यह भावना ही उदासीनता से बचने का विश्वसनीय साधन है, कूपमंडूकता के बीच—हृदय की आवेशहीनता--की दवा है।

मैं बच्चों को ऐसी घटनाओं के बारे में बताता था, पुस्तकें पढ़कर सुनाता था, जिनमें मानव-गरिमा के लिए इन्सान द्वारा इन्सान के शोषण को कभी न सहने का विचार ज्वलंत रूप में व्यक्त होता है। बच्चों ने कई बार पोलिश लेखक सेन्केविच की कहानी 'यान्को गवैया' सुनी। पहली बार यह कहानी सुनकर बच्चे स्तंभित रह गए। जिस जमींदार ने असहाय बच्चे की सारी जिन्दगी ही खराब कर डाली थी, वह उन्हें खूनी जल्लाद लगा। गुस्से से उनकी मुट्ठियां भिंच गईं और आंखों से अंगारे बरसने लगे। यान्को गवैया सदा के लिए मेरे छात्रों के आत्मिक जीवन का एक अंश बन गया। बाद में हमने कई बार यह कहानी पढ़ी और कुछ बच्चों को तो वह शब्दशः याद हो गई। बच्चे यान्को गवैये के बारे में बार-बार क्यों सुनना चाहते थे ? मेरे ख्याल में इसका कारण यह है कि आक्रोश से आत्मिक शक्तियों का आवेग उठता है। बच्चे अनुभव करते हैं कि वे बुराई के अनम्य विरोधी हैं और यह अनुभूति उन्हें अधिक शक्तिशाली बनाती है। बच्चे नैतिक शक्ति की पूर्णता अनुभव करना चाहते हैं, मन ही मन आश्वस्त होना चाहते हैं कि वे सत्य के लिए संघर्ष करने को तत्पर हैं। जिस हृदय में यह भावना विकसित होती है, वह चारों ओर की भलाई और बुराई के प्रति संवेदनशील हो जाता है।

जाने-माने उक्राइनी लेखक आर्खीप तेस्लेन्को की गरीब किसानों के बच्चों की

मुश्किलों भरी जिन्दगी की कहानियों की बच्चों के मन पर गहरी छाप पड़ी। मैंने उन्हें एक बहुत ही प्रतिभाशाली किसान लड़की की कहानी सुनाई, जिसे जमींदारों और ज़ारशाही अफसरों ने इतना सताया कि उसने तंग आकर आत्म-हत्या कर ली। यह कहानी सुनते हुए बच्चों की आंखों में क्रोध भरा हुआ था।

तीसरी और चौथी में हमने दो बार बिचर-स्टो का उपन्यास 'अंकल टोम की झोंपड़ी' पढ़ा। गुलामों के जीवन का वर्णन सुनकर बच्चों को बहुत दुख हुआ। उनके लिए यह कल्पना करना ही कठिन था कि लोगों को भी जानवरों की तरह खरीदा-बेचा जा सकता है। धीरे-धीरे बच्चों की चेतना में इस बात का एक सुस्पष्ट चित्र बनता गया कि आजकल भी भलाई और बुराई के बीच कैसा संघर्ष चल रहा है—पूंजीवाद देशों में करोड़ों लोग अपने लिए नहीं, बल्कि जमींदारों और पूंजीपतियों के लिए काम करते हैं, वहां बच्चों से उनका बचपन छिना हुआ है, अपनी मातृभूमि की मुक्ति और स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने वाले सपूतों को फांसी पर चढ़ाया जाता है, उन्हें बेड़ियों में जकड़ा जाता है।

यूनानी जन-नायक नीकोस बेलोयानिस का दुखद अन्त बच्चों के स्मृतिपटल पर सदा के लिए अंकित हो गया। यूनान पर फासिस्ट कब्जे के दिनों में बेलोयानिस के कब्जावरों के खिलाफ संघर्ष किया; और जब देश को हिटलरी दरिंदों से मुक्त करा लिया गया, तब बुर्जुआ अदालत में इस देशभक्त पर देशद्रोह का आरोप लगाकर उसे फांसी की सजा दे दी। कार्नेशियन का लाल फूल हाथ में लेकर नीकोस बेलोयानिस ने मृत्यु का आलिंगन किया और उसी दिन उसके बेटे का जन्म हुआ। उसकी पत्नी को भी मृत्यु-दण्ड सुनाया गया था और वह तब जेल में थी। मेरे छात्र जेल में जन्मे और वहीं रह रहे बच्चे की दुर्दशा के बारे में सुनकर विचलित हो उठे, वे मुझसे पूछने लगे—हम कैसे उसकी सहायता करें। उदात्त भावनाएं बच्चों को कुछ करने की प्रेरणा देती हैं। छात्रों ने छोटे निकोस की माता के नाम पत्र लिखा और एक उपहार तैयार किया—सफेद रेशम पर कढ़ा कार्नेशियन का लाल फूल। पत्र और उपहार उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास के जरिए यूनान भेजा और फिर हर साल वे यूनानी जन-नायक की पत्नी को पत्र और उसके बेटे को जन्मदिन पर अपना उपहार—सफेद रेशम पर कढ़ा गुलाब, लाला या लिलक का फूल भेजने लगे। पहली नजर में साधारण-सा लगने वाला यह काम बाल-हृदयों में गहरी छाप छोड़ता है, क्योंकि इस तरह वे बुराई की निन्दा करते हैं, अन्याय से जूझते हैं।

बच्चों को सामाजिक जीवन से परिचित कराते हुए मैं उनके मन में यह बात बिठाने की कोशिश करना था कि मानव-इतिहास के सबसे अंधकारमय कालों में भी, जब लगता था कि चारों ओर बुराई का राज है और जब लाखों-करोड़ों लोग उत्पीड़त

होते थे, उन कालों में भी ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने अन्याय से टक्कर ली। इन लोगों के नाम, उनका जीवन और उनके पराक्रम युवा पीढ़ियों के लिए ध्रुवतारा रहे हैं। मैं यह चेष्टा करता था कि मानवजाति के सर्वश्रेष्ठ सपूतों–जिन्होंने अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए, शोषण से छुटकारा दिलाने और मानव-गरिमा की पुष्टि करने के हेतु अपने प्राणों की आहुति दी–उनकी धीरता, उनके दृढ़ संकल्प और साहस तथा अपनी धारणाओं के प्रति उनकी निष्ठा बच्चों के मन में प्रशंसा का भाव जगाए।

मेरा प्रयत्न यह था कि मानवजाति ने अतीत में जिन नैतिक मूल्यों का सृजन किया है, जो उसकी उपलब्धि हैं और जो अब समाजवादी समाज में निखरे हैं, वे हर बच्चे की आत्मिक सम्पदा बन जाएं, बाल-हृदयों को उद्विग्न करें, उन्हें संसार भर में सत्य की विजय के लिए सक्रिय कार्य करने की प्रेरणा दें। अन्तोनियो ग्राम्शी ने कहा था–सत्य सदा क्रांतिकारी होता है। मैं यह चेष्टा करता था कि बिना किसी शब्दाडंबर के बच्चों को नैतिक सत्यों से, उनके सारे सौन्दर्य सहित, परिचित कराऊं। मानवजाति के नैतिक मूल्यों का सौन्दर्य केवल तभी बच्चों की आत्मिक सम्पदा हो जाता है, जबकि हृदय की उद्विग्न करने वाले ज्वलंत उदारहणों में बच्चों के सम्मुख उसका क्रांतिकारी सार उजागर हुआ हो। एक लैटिन कहावत है–शिक्षा शब्दों से मिलती है, परन्तु प्रेरणा उदाहरणों से ही मिलती है। मानवजाति के सुख के लिए संघर्ष को अर्पित जीवन का उदाहरण वह प्रकाश है, जो बच्चे के जीवन को प्रदीप्त करता है। किन्तु उदाहरण भी केवल तभी जीना सिखाते हैं, जबकि के मानवीय, प्रगतिशील और क्रांतिकारी विचारों का मूर्तरूप हों। जो कोई भी विचारों से दूर हटता है, वह अन्ततः मात्र अनुभूतियों का ही बन्दी होकर रह जाता है, महान जर्मन कवि गेटे ने कहा था।

मैंने बच्चों को ऐसे कई लोगों के जीवन के ज्वलंत उदाहरण दिए, जिनके नाम अनेक पीढ़ियों के लिए ध्रुवतारे के समान रहे हैं। निस्संदेह बच्चों को सब कुछ नहीं बताया जा सकता। नन्हे बच्चे पर चित्रों और बिंबों की बौछार नहीं की जानी चाहिए, उसके हृदय को निरन्तर झकझोरा नहीं जाना चाहिए। बच्चे को थोड़ी-सी ही बात बताइए, लेकिन इस तरह कि वह इसमें नैतिक मूल्यों का सौन्दर्य देख ले। बच्चों के मनोमस्तिष्क में विचारों और भावनाओं का जो बवंडर उठा है, उन्हें उस पर सोचने दीजिए, बच्चों के मन में बात उतर जाने दीजिए। चार बरसों के दौरान मैंने अपने छात्रों को विभिन्न युगों में मानवजाति के उच्च आदर्शों के लिए संघर्ष करने वालों के पराक्रमों की कहानियां सुनाईं। स्पार्टकस और कम्पानेल्ला, इवान सुसानिन और स्तेपान खल्तूरिन, सोफिया परोव्स्काया और निकोलाई किबाल्चिच, तरास शेव्चेन्को, टामस म्यूनजर, ख्रीस्तो बोतेव और यानुश कोर्चाक जैसे महापुरुषों के उदाहरण मैंने दिये। महान लेनिन और कम्युनिस्ट वीरों–इवान बाबुश्किन, सेर्गेई लाजो, कामो, याकोव

स्वेर्दलोव, फेलिक्स द्जेर्झीन्स्की, जूलियस फूचिक, ऐर्नस्ट थेल्मान के बारे में महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के वीरों निकोलाई गस्तेल्लो और अलेक्सान्द्र मत्रोसोव के बारे में, मध्य युग के महान वैज्ञानिक और सत्य-सेनानी जोर्दानो ब्रूनो तथा महान यात्री और मानव-सेवक मिक्लूखों-मक्लाई के बारे में मैंने बच्चों को बताया।

बाल-आत्मा पर ऐसे उदहारणों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है, जिनमें उदात्त विचार मनुष्य के मनोवेग, उसके कार्यों और पराक्रमों में मूर्तित होता है। बच्चों को यह समझाने की जरूरत नहीं होती कि मनुष्य के किसी कार्य का क्या अर्थ समझना चाहिए; जब विचार और बिंब एकीकार होते हैं, तो बच्चा खूब अच्छी तरह से विचार को समझता है। मैंने अपने छात्रों को जिन वीर पुरुषों के बारे में बताया, उन्होंने अपनी सारी शक्ति, सारा जीवन लोगों के सुख के लिए संघर्ष में लगाया था। यह उनके चरित्र का विशेष लक्षण था, जो नैतिक सौन्दर्य के सार को व्यक्त करता है। यह लक्षण ही बाल-हृदयों में प्रशंसा भाव जगाता है, उन्हें दूसरों के बारे में सोचने को प्रेरित करता है। मानवजाति की सेवा में ही जिन लोगों ने परम सुख पाया है, वे बच्चों के लिए नैतिक आदर्श होते हैं।

चहुंमुखी नैतिक शिक्षा की मैं इस बात के बिना कल्पना भी नहीं कर सकता कि बच्चा आधी रात तक महान कार्यों के बारे में पुस्तक न पढ़ता रहे, कि उसका हृदय हर्षोत्साह से स्पंदित न होने लगे। नैतिक आदर्श तभी बनता है, जब इन्सान मानो अपने मन में झांककर देखता है, अपनी तुलना उससे करता है, जो उसके लिए नैतिक सौन्दर्य—धारणाओं के प्रति निष्ठा, साहस, धीरता और कठिनाइयों के सम्मुख अडिगता—का उदाहरण हो।

शिक्षक को काफी सोच-समझकर इस तरह कहानियां चुननी चाहिए, ताकि उनकी सहायता से बच्चे नैतिक आदर्श के स्रोतों को देख पाएं। यहां वे तथ्य और घटनाएं ही सबसे महत्वपूर्ण हैं, जिन्हें लेकर वैचारिक अन्तर्य बनता है। जो लोग युवा पीढ़ी के लिए आदर्श हैं, उनके जीवन में यह दिखाना चाहिए कि किस प्रकार उनकी व्यक्तिगत नियति मानवजाति की नियति से जुड़ी रही है।

व्लादीमिर इल्यीच लेनिन के जीवन और संघर्ष के बारे में बच्चों को बताते हुए मैं उन तथ्यों पर विशेषतः विस्तारपूर्वक प्रकाश डालता था, जिनसे यह पता चलता है कि लेनिन को मेहनतकश जनता के जीवन की कितनी चिन्ता थी। महान नेता जो कुछ भी करते थे, उसका लक्ष्य जनता का सुख ही था। गृहयुद्ध और आर्थिक तबाही के कठिन दिनों में भी लेनिन अनाथ बच्चों का कितना ध्यान रखते थे, यह सुनकर बच्चों का हृदय हर्षोद्वेग से भरपूर हो उठता था। मैं यह प्रयत्न करता था कि लेनिन की यह मानवीयता बाल-हृदयों में महान नैतिक मूल्य के रूप में स्थान बना ले, कि वे

नैतिक सौन्दर्य और सत्य के इस शिखर से अपने चारों ओर के संसार को तथा स्वयं अपने आपको देख लें।

पोलैंड के जन-नायक यानुश कोर्चाक के बारे में कहानियों की बाल-हृदय पर गहरी छाप पड़ी। यानुश कोर्चाक को अपने बच्चों से इतना अनुराग था कि उन्होंने उनके साथ मरना स्वीकार किया—यह सुनकर बाल-हृदयों का एक-एक तार झंकृत हो उठा। वह चाहते, तो अपनी जान बचा सकते थे, लेकिन जब फासिस्ट जल्लाद हजारों निर्दोष बच्चों को मौत के घाट उतार रहे थे, तो ऐसा करना उनके लिए अपना ईमान बेचने के समान था। यानुश कोर्चाक बच्चों के लिए सच्ची मानवीयता के प्रतीक बन गए।

'नेरोद्नाया वोल्या' (जन-संकल्प) संगठन के वीरों—स्तेपान खल्तूरिन, सोफिया पेरोव्स्काया, निकोलाई किबाल्चिच के बारे में कहानियां सुनकर बच्चों के मन उनके प्रति श्रद्धा से भर उठे। वीर कम्युनिस्टों जूलियस फूचिक और कामों की धीरता, साहस और अपनी धारणाओं के प्रति निष्ठा की कहानियां सुनते हुए बच्चों के मन में मनुष्य पर गर्व की भावना जागती थी, वे कहते थे, 'हमें भी ऐसा ही बनना चाहिए। ये सच्चे वीर हैं।'

वीर पायोनियरों वाल्या कोतिक, वीत्या कोरोब्कोव, ल्योन्या गोलिकोव, वोलोद्या दुबीनिन, वास्या शिश्कोव्स्की के पराक्रमों के बारे में मैंने बच्चों को बहुत कुछ बताया। इन किशोरों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी। मेरी कोशिश यह थी कि कम्युनिस्ट नैतिकता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण—समाजवाद, शान्ति, स्वाधीनता और जनवाद के शत्रुओं के प्रति अनम्य रुख, विचारधारात्मक दृढ़ता और साहस—बच्चों के सम्मुख उजागर होने लगे। बच्चों में अपनी धारणाओं की अपने आत्म-सम्मान की भांति रक्षा करने की क्षमता विकसित करता चरित्र-निर्माण का एक महत्वपूर्ण कार्यभार है और इसे केवल तभी पूरा किया जा सकता है, जबकि छोटी उम्र में ही इन्सान के मन में भलाई और बुराई का ज्वलंत चित्र बनने लगे। परन्तु चित्र बनना ही काफी नहीं। व्यक्तिगत भावनात्मक मूल्यांकन भी अनिवार्य है। नैतिक परिघटनाओं को स्पष्टतः दो वर्गों में विभाजित होना चाहिए, एक वे बातें जो बच्चे को जान से भी प्यारी हैं, दूसरी वे, जिन्हें वह कभी भी सहन करने को तैयार नहीं होगा। छोटी उम्र में नैतिक शिक्षा का अर्थ है—नैतिक सौन्दर्य से प्रेरणा दिलाना, जिससे लोगों को खुशियां प्रदान करने, अपनी मानव-गरिमा की रक्षा करने तथा कम्युनिज्म के नैतिक सिद्धान्तों की रक्षा की अभिलाषा जागती है।

नैतिक आदर्शों के स्रोत छोटी उम्र में इन्सान के समीप ही होते हैं। हम शिक्षकों को चाहिए कि प्रत्येक छात्र को नैतिक पराक्रम के सौन्दर्य से परिचित कराएं, उसके

मन में कम्युनिस्ट धारणाओं के प्रति निष्ठा बिठाएं, ताकि प्राथमिक विद्यालय के छात्र भी यह समझने लगें कि वे उसका, जो शाश्वत है, अनश्वर है, अर्थात् मेहनतकश जनगण का, एक अंश हैं।

दूसरों के लिए व्यग्रता से भरपूर जीवन

हमारा जीवन-अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि अगर बच्चा जीवन की खुशियों का केवल 'उपभोग' ही करता है, इन खुशियों को अपने श्रम से, अपनी आत्मिक शक्ति पर जोर लगाकर नहीं पाता, तो उसका हृदय निष्ठुर और उदासीन हो सकता है।

लोगों के लिए भलाई करना ऐसी प्रबल नैतिक शक्ति है, जो बाल-हृदयों को उदात्त बनाती है। सोवियत स्कूलों का एक कार्यभार बच्चे को अपने हृदय से यह अनुभव करना सिखाना है कि उसके चारों ओर ऐसे लोग हैं, जिन्हें उसकी सहायता, उसकी सहृदयता, उसके स्नेह और चिन्ता की आवश्यकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चों को अन्तःकरण उन्हें ऐसे लोगों के पास से न गुजरने दे, कि बच्चा दूसरों की नजरों में अच्छा बनने के लिए इन्सान का भला न करे, बल्कि निस्स्वार्थ भावना से ऐसा करे।

बच्चा जब ऐसे लोगों की भावनाओं को समझने लगता है, जिनके मन पर दुख का बोझ पड़ा हो, तभी उसका अन्तःकरण जागता है, वह दूसरों का भला करने को तत्पर होता है। मनुष्य के आत्मिक जगत के प्रति संवेदनशीलता, पराये दुख को बांटने की क्षमता से ही सर्वोच्च मानवीय आनन्द प्राप्त होता है, जिसके बिना नैतिक सौन्दर्य नहीं हो सकता। 'खुशियों के स्कूल' में ही मेरे छात्रों ने नैतिक सौन्दर्य के शिखर की ओर पहले कदम बढ़ाए—उन्होंने मानवीयता के पहले पाठ पढ़े, दैनंदिन जीवन में जिन लोगों से उनका मिलना होता था, उसकी आंखों में वे दुख, उदासी, दर्द, बेचैनी देखना सीखने लगे। यह क्षमता वयस्क मनुष्य के आत्मिक जीवन का एक अभिन्न अंश केवल तभी हो पाती है, जबकि बचपन में उसका एक-एक दिन लोगों के लिए व्यग्रता से भरपूर रहा हो।

मैं सदा अपने छात्रों को यह सिखाता था कि वे दूसरों की भावनाओं को अनुभव करें, यह चेष्टा करता था कि बच्चे स्वयं को उस व्यक्ति के स्थान पर रखकर देखें, जिसे सहायता, सहानुभूति की जरूरत है। दूसरे इन्सान का दुख-दर्द बच्चे का दुख-दर्द हो जाना चाहिए, उसे इस सोच में पड़ना चाहिए कि वह जरूरतमन्द आदमी की मदद कैसे करे। मानवीयता के विकास में दो लोगों का आत्मिक सम्पर्क, उनके व्यक्तिगत परस्पर सम्बन्ध बहुत अधिक महत्व रखते हैं। मानवजाति से प्रेम अपने पड़ोसी से

प्रेम करने की अपेक्षा बहुत आसान है। ठोस मानव व्यक्तित्व को जाने बिना लोगों को नहीं जाना जा सकता। अगर बच्चा अपने मित्र की पीड़ा से कातर आंखों में गहरा नहीं देख सकता, तो मानव दुख कभी उसके हृदय को स्पर्श नहीं करेगा। जिस बच्चे ने मानव जीवन के सभी पहलुओं—सुख और दुख दोनों को नहीं देखा है, नहीं जाना है, वह कभी भी संवेदनशील नहीं होगा, उसके मन में दूसरों के लिए सहानुभूति नहीं जागेगी।

दुख देखने के लिए हमें दूर जाने की जरूरत नहीं थी, हमारी क्लास में ही इसकी कमी न थी। बच्चों की हंसी गूंजती थी, बच्चे खेलते-कूदते चुस्त नजर आते थे, लेकिन बच्चों की आंखों में विषाद भरा होता था। वाल्या जब तीसरी कक्षा में थी, तो उसके पिता की हालत बहुत बिगड़ गई। बच्ची गुम-सुम रहने लगी। नीना और साशा की मां सख्त बीमार थीं, वे अक्सर गृहस्थी के काम में पिता का हाथ बंटाने घर पर रह जाती थीं। साश्को की नानी बीमार हो गईं। कई बार उन्हें अस्पताल में रहना पड़ा, कभी हफ्ते और कभी दो महीनेभर। लड़के के लिए यह बड़ा भारी दुख था। नानी के बीमार होने पर साश्को चाची की देखभाल में रहता था। वह उसका बहुत ख्याल रखती थी, लेकिन फिर भी बच्चे को नानी से जुदाई से बड़ा कष्ट पहुंचता था। शरद के एक ठण्डे दिन वह चाची को बताए बिना नानी से मिलने अस्पताल चल दिया। रास्ते में बारिश में भीग गया, उसे ठण्ड लग गई। कुछ दिन बाद साश्को को भी उसी अस्पताल में भर्ती कर दिया गया, जहां उसकी नानी थीं।

वोलोद्या के परिवार में दुर्घटना हुई। उसकी मां राजगीर थीं। वह रोजना बस में काम पर जाती थीं। वसंत में एक दिन सुबह सड़क पर बर्फ जम गई, बस की ट्रक से टक्कर हो गई। वोलोद्या की मां को सख्त चोट लगी। डॉक्टरों का कहना था कि वह सारी उम्र के लिए अपाहिज हो जाएंगी। इसी बीच वोलोद्या के दादा बीमार पड़ गए और चल बसे। दादा ने वोलोद्या को जीवन में सही रास्ते पर चलाने के लिए बहुत कुछ किया था।

कोल्या के परिवार पर एक और ही तरह की मुसीबत आई। उसके पिता को चोरी की चीजें छिपाकर रखने के अपराध में दो साल की कैद की सजा दी गई। परिवार का नैतिक वातावरण साफ हो गया, लेकिन इस घटना ने बालक को तो झकझोरा ही था।

रोजाना बच्चों से मिलने पर मैं बड़े गौर से उनके चेहरों को देखता था। बच्चे की दुख भरी आंखें देखना—यह चरित्र-निर्माण की जटिल प्रक्रिया की राह में सबसे अधिक कठिन बात थी। अगर बाल-हृदय में दुख बैठा है, तो बच्चा नाममात्र को ही कक्षा में उपस्थित होता है। वह कसकर खिंचे तार के समान होता है—असावधानी से

किया गया स्पर्श उसे पीड़ा पहुंचा सकता है। हर बच्चा अपने ही ढंग से दुखी होता है—एक को दुलारो, तो उसे राहत मिलती है, दूसरे को लाड़-प्यार से और अधिक कष्ट होता है। शिक्षक का कौशल ऐसे मामलों में यह साधारण मानवीय बुद्धिमत्ता याद रखने में ही निहित है—बच्चे की भावनाओं पर रहम करो, छात्र को और अधिक तकलीफ मत पहुंचाओ, उसके दिल के जख्मों को मत कुरेदो। दुख का मारा छात्र वैसे नहीं पढ़ सकता, जैसे वह पहले पढ़ता था—उसके चिन्तन पर दुख की छाप पड़ती है। शिक्षक के लिए सबसे बड़ी बात यह है कि वह बच्चे के दुख-दर्द को, उसके शोक, उसके कष्टों को देखे। बाल-आत्मा को देखना और अनुभव करना—यही शिक्षक की बुद्धिमत्ता है। शिक्षक बच्चे के दुख के प्रति क्या रवैया है, किस हद तक वह बाल-आत्मा को समझ सकता है और अनुभव कर सकता है—इसी में शिक्षक के कौशल का आधार निहित है।

बच्चा जब अपने दुख से पीड़ित हो, तो उससे कक्षा में सवाल नहीं पूछा जा सकता, उससे यह मांग नहीं की जा सकती कि वह टिककर, लगन से पढ़े। उससे यह नहीं पूछना चाहिए कि क्या हुआ—बच्चे के लिए यह बताना आसान नहीं होता। अगर बच्चों को शिक्षक पर भरोसा है, अगर वह उसका मित्र है, तो बच्चा स्वयं ही, जो बात बताई जा सकती है, वह बता देगा। अगर बच्चा चुप है, तो उसके दुखी हृदय को मत छेड़िए।....चरित्र-निर्माण में सबसे कठिन काम है—बच्चों में अनुभव करने की शक्ति जगाना। बच्चा जितना बड़ा होता है, शिक्षक के लिए मानव- हृदय के सूक्ष्मतम तारों को स्पर्श करना उतना ही कठिन होता है; इन तारों की ध्वनियों से ही उदात्त भावनाएं बनती हैं।

बच्चे को अनुभव करना सिखाने, दूसरों की आंखों में उनकी आत्मा की झलक देखना सिखाने के लिए शिक्षक को बच्चों की भावनाओं, सर्वप्रथम दुखद भावनाओं पर दया करनी आनी चाहिए। बड़ों और बच्चों के बीच भावनात्मक-नैतिक सम्बन्धों से सबसे भोंडी बात तब होती है, जब बड़े बच्चे को यह कहकर कि—अरे, तुम अभी छोटे हो, तुम्हें काहे की परवाह है, उनके मन पर छाए दुखद भावनाओं के बादलों को छांटने की कोशिश करते हैं।

सर्वप्रथम बाल-हृदय की हलचल को समझना चाहिए। यह समझ किन्हीं विशेष विधियों से नहीं हासिल की जा सकती। इस समझ का स्रोत तो शिक्षक का उच्च भावनात्मक-नैतिक स्तर ही है। बच्चों के दुख का कारण चाहे कुछ भी हो, इस दुख का आभास सदा बच्चे की आंखों से हो जाता है, जिनमें गहरा विषाद और अकेलापन छाया होता है। यह देखकर तो आदमी हक्का-बक्का रह जाता है कि बच्चों की आंखों का भाव कतई बाल-सुलभ नहीं होता। बच्चा जब अपने दुख में डूबा

होता है, तो साथियों के हंसी-मजाक और खेलकूद का उससे कोई वास्ता नहीं होता, ऐसी कोई बात नहीं होती, जो दुखद विचारों की ओर से उसका ध्यान हटा सके। नन्हे इन्सान की सबसे अधिक सद्भावनापूर्ण सहायता यह हो सकती है कि उसके दिल की गहराइयों में जो बात है उसे छेड़े बिना ही, उसका दुख बांटा जाए। भोंडा हस्तक्षेप बच्चे के मन में कटुता ही जगाता है और ऐसे परामर्शों को कि हिम्मत मत हारो, मन को काबू में रखो, निराश मत होओ, यदि उनके पीछे सच्ची मानवीय भावनाएं नहीं हैं, बच्चा निरर्थक बातें ही समझता है।

बच्चों को अनुभव करना सिखाने का अर्थ सर्वप्रथम यह है कि उन्हें अपने भावनात्मक-नैतिक स्तर तक ऊपर उठाया जाए। मनुष्य की आत्मा की स्थिति की गहरी समझ के बिना भावनाओं का उच्च स्तर नहीं बन सकता और यह समझ बच्चे को तभी आती है, जबकि वह विचारों में स्वयं को उस व्यक्ति के स्थान पर रखकर देखता है, जो किसी बात पर परेशान है या दुखी है।

जब साश्को की नानी बीमार पड़ीं, तो वह उदास और खोया-खोया-सा रहने लगा, साथ ही उसकी स्थिति कसकर तने तार जैसी थी—कुछ पूछते ही वह कांप उठता, मानो किसी ने उसके घाव को छेड़ दिया हो। एक दिन मैंने देखा कि उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखें भर आईं। बच्चों ने मुझसे कहा, 'साश्को रो रहा है'। यह उम्मीद करना भोलापन है कि बच्चे को इसीलिए अपने साथी से या बड़ों से सह-अनुभूति हो जाती है कि वह बच्चा है। सह-अनुभूति करना भी वैसे ही बड़े ध्यान से, सोच-समझकर सिखाना चाहिए, जैसे कि बच्चे को पहले कदम भरना सिखाया जाता है। सह-अनुभूति संज्ञान का, हृदय और मस्तिष्क से संज्ञान का एक सबसे सूक्ष्म क्षेत्र है। अनुभवी शिक्षक के पास सह-अनुभूति की शिक्षा देने का सशक्त साधन होना चाहिए, और यह साधन है—शब्द।

मैंने ऐसा क्षण चुना, जब साश्को कक्षा में नहीं था और बच्चों से कहा, 'अगर कोई आदमी दुखी हो, तो इस पर हैरान नहीं होना चाहिए। साश्को आजकल बहुत दुखी है। मां की उसे याद नहीं, नानी बीमार पड़ी हैं। शायद उन्हें अस्पताल ले जाया जाए—तब साश्को किसके साथ रहेगा? अपने को उसकी जगह रखकर देखो, तब तुम समझ जाओगे कि दुख क्या होता है। याद है, हमने सड़क के पास एक बूढ़े आदमी को देखा था ? उसकी आंखों में कितनी गहरी व्यथा थी ? तब तुमने यह महसूस किया था कि वह बूढ़ा दुखी है। तो तुम अपने साथी की आंखों में दुख की छाया क्यों नहीं देख रहे हो ? तुमने ख्याल नहीं किया कि इधर कई दिनों से साश्को गुम-सुम रहता है। बैठा तो वह क्लास में होता है और विचार उसके नानी के पास होते हैं। अगर वह कुछ दिन तक घर पर रहेगा, तो उससे यह पूछने मत दौड़ना कि

वह स्कूल क्यों नहीं आया। आदमी के लिए अपने दुख की बात करना आसान नहीं होता।' अगर तुम देखो कि किसी को कोई दुख है, तकलीफ है, तो कौतूहल मत दिखाओ, बल्कि उसकी मदद करो। किसी के दिल के घावों को कुरेदना नहीं चाहिए। अगर तुम जानते हो कि तुम्हारे किसी साथी पर कोई मुसीबत आ पड़ी है, तो सब कुछ तुम्हारा एक भी शब्द, एक भी हरकत उसका दुख न बढ़ाए और यह भी सोचो कि तुम साश्को और उसकी नानी की मदद कैसे कर सकते हो। पर तुम्हारी मदद डींग भरी नहीं होनी चाहिए—देखो जी, हम कितने अच्छे हैं, हम अपने साथी की मदद कर रहे हैं। अपनी भलाई का दिखावा करना तो बिल्कुल ही बेकार बात है। अगर तुम्हारा मन यह नहीं कहता कि तुम्हें अपने दोस्त की मदद करनी चाहिए, तो दिखावे की भलाई, तुम्हें भला और सहृदय नहीं बना देगी।'

साश्को क्लास में आ गया, मैंने उसके बारे में एक शब्द भी और नहीं कहा, बच्चे यह समझ गए कि मैंने क्यों बात पलट दी है। आधी छुट्टी में बच्चे आपस में सलाह-मशविरा करने लगे कि वे कैसे साश्को और उसकी नानी की मदद करें। बच्चे अपने साथी के लिए सेब और मछली लाए—यह सब उन्होंने सच्चे मन से किया। जब नानी अस्पताल चली गईं और साश्को चाची के पास रहने लगा, तो बच्चे अक्सर उससे मिलने जाते थे। यह जानकर कि साश्को बारिश में भीग गया और अब अस्पताल में है, बच्चों को दुख हुआ। छुट्टी के दिन हम सब साश्को को देखने गए। बच्चे अपने साथी के लिए सेब और बिस्कुट ले गए। शूरा एक चाकलेट ले आया, जो उसके पिता ने उसे दी थी। आधे दिन तक बच्चे एक-एक दो-दो करके साश्को के कमरे में उससे मिलने जाते रहे।

मैं इस बात पर खुश भी था और कुछ परेशान भी। बात यह थी कि यह सामूहिक उत्साह का परिणाम था। ऐसे भी बच्चे थे, जो अपने साथी के लिए सिर्फ इसलिए कुछ करना चाहते थे, ताकि दूसरे उनका यह भला काम देखें। वोलोद्या ने मुझसे कहा कि वह साश्को के लिए अपने नये स्केट ले जाएगा, जो पापा ने उसके लिए खरीदे हैं।

'तुमने पिताजी से पूछ लिया है ?' मैंने पूछा।

'हां, पूछ लिया है।'

'तो फिर अस्पताल ले जाने की कोई जरूरत नहीं। साश्को तो अभी स्केटिंग कर नहीं सकता। जब वह ठीक हो जाएगा, तो उसे घर ले जाकर दे देना।'

वोलोद्या ने अपने साथी को स्केट भेंट नहीं किया। उसका मनोवेग क्षणिक सिद्ध हुआ। यह देखकर मैं एक बार फिर इस सोच में पड़ा कि किस तरह बच्चों में उदारता, सहृदयता और संवेदनशीलता जैसे गुण विकसित किए जाए। बहुत ही

पेचीदगी और बारीकी की बातें हैं ये। कैसे यह किया जाए कि नन्हा इन्सान प्रशंसा और पुरस्कार की खातिर नहीं, बल्कि भलाई करने की आत्मिक आवश्यकता से प्रेरित होकर अच्छा काम करे ? भलाई करने की आवश्यकता क्या है, कहां से आती है यह? निस्सन्देह, संवेदनशीलता के विकास में सामूहिक मनोवेग का भी काफी महत्व है। परन्तु फिर भी सह-अनुभूति का जन्म हर बच्चे के हृदय की गहराइयों में ही होना चाहिए।

मेरी चेष्टा यह थी कि मेरे सभी छात्र अपने साथियों की या दूसरे लोगों की सहायता की उदात्त कार्य अपने अन्तःकरण की मांग पर करें और इससे उन्हें गहरा सन्तोष प्राप्त हो। नैतिक शिक्षा में यह शायद एक सबसे कठिन बात है—बच्चों को भलाई करना भी सिखाना और साथ ही ऐसे सीधे परामर्शों से भी बचना कि यह काम ऐसे करो। व्यवहार में इस समस्या को कैसे सुलझाया जाए ? प्रत्यक्षतः, सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चों में ऐसी आन्तरिक शक्ति का विकास किया जाए, जिसके फलस्वरूप वे भलाई किए बिना न रह सकें, दूसरे शब्दों में उन्हें दूसरों के दुख-सुख को अनुभव करना, सह-अनुभूति करना सिखाया जाए। लेकिन यह कैसे किया जाए? कैसे यह किया जाए कि बच्चे दूसरे का दुख देखकर अपने को उसकी जगह रखें, कि सुस्पष्ट, ज्वलन्त विचार उज्ज्वल भावनाओं को जन्म दें, कि नन्हे बच्चे का व्यक्तित्व उस मनुष्य के व्यक्तित्व के साथ एकीकार हो जाए, जिसके जीवन में तकलीफें हैं, कि दुखी व्यक्ति में बच्चा स्वयं अपने को देखे और अनुभव करे ?

हम शिक्षक बच्चों के आत्मिक जीवन और परस्पर सम्बन्धों के कठिनतम और जटिलतम क्षेत्रों में सम्बन्धित प्रश्नों पर मिलकर विचार-विमर्श करने लगे, धीरे-धीरे इन्होंने मनोवैज्ञानिक गोष्ठियों का रूप ले लिया। इनमें न केवल प्राथमिक कक्षाओं के, बल्कि सभी कक्षाओं के अध्यापक भाग लेते थे। हमारी चिन्ता का विषय था मनुष्य—बच्चा, किशोर, तरुण। इन गोष्ठियों में हम किसी एक छात्र के आत्मिक जीवन, उसके बौद्धिक, नैतिक, भावनात्मक, शारीरिक, सौन्दर्यबोधात्मक विकास के स्रोतों तथा उस परिवेश के बारे में रिपोर्ट पेश करते थे, जिसमें स्कूल आने से पहले और अब स्कूल में पढ़ते हुए बच्चे के विवेक, भावनाओं, संकल्प, चरित्र और धारणाओं का गठन हुआ और हो रहा है। प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक अपनी इन रिपोर्टों द्वारा एक तरह से माध्यमिक और उच्चतर कक्षाओं के अध्यापकों को किशोरों, युवक-युवतियों पर शैक्षणिक प्रभाव डालने के लिए तैयार करते थे। हमारा यह सामूहिक विश्वास अधिक गहरा होता जा रहा था—जिस छात्र को हम शिक्षा दे रहे हैं, जिसका चरित्र-निर्माण कर रहे हैं, उस पर स्कूल के सारे अध्यापक समुदाय का प्रभाव हो, इसके लिए यह अनिवार्य है कि हर अध्यापक हर छात्र के व्यक्तित्व को बड़ी गहराई

से उनकी बारीकियों तक जानता हो।

कुछ बच्चों के आत्मिक जीवन के जटिलतम क्षेत्रों में गहराई से पैठने के लिए हमें 2-3 घण्टे भी कम पड़ते थे। कोल्या के व्यक्तित्व के बारे में मेरी रिपोर्ट के बाद कुछ दूसरे अध्यापकों ने अपनी ओर से बहुत महत्वपूर्ण ब्योरे जोड़े—बच्चा स्कूल में जो कुछ देखता है, वह उसके भावना-जगत में कैसे उतरता है, दूसरों शब्दों में वह लोगों के बीच सम्बन्धों तथा दूसरे लोगों के साथ अपने सम्बन्धों को कैसे भावनात्मक रंग में देखता है, कैसे उन्हें अनुभव करता है। बच्चा किस तरह दूसरों की भलाई करने की कामना के वशीभूत होता है—इस बारे में तथा भलाई करने के आन्तरिक प्रेरणा के बारे में हम रोचक निष्कर्ष पर पहुंचे, जो सभी अध्यापकों के मत में नया भी था।

बच्चे दुख से पीड़ित अपने साथियों की ओर जितना अधिक ध्यान देते थे, उतने ही अधिक उनके हृदय संवेदनशील होते जा रहे थे। फरवरी की बात है (तब बच्चे तीसरी में पढ़ते थे), मीशा, कोल्या, लरीसा भागे-भागे मेरे पास आए। वे किसी बात पर परेशान थे।

'वान्या का भाई लेओनीद मर गया। उसके पिताजी को तार मिला है। वह कजाखस्तान जा रहे हैं। अब हम क्या करें ?'

बच्चों की आंखों में निवेदन था—हमें बताइए, हम कैसे अपने साथी की मदद करें ?

उसी दिन यह पता चल गया कि यह दुर्घटना कैसे हुई। 18 वर्षीय ट्रैक्टर-चालक लेओनीद पशु-फार्म में लिए सूखी घास ले जा रहा था। रास्ते में हिमानी तूफान आ गया। लेओनीद ट्रैक्टर को वहीं छोड़कर गांव चला जा सकता था, जो सड़क से थोड़ी ही दूर था। लेकिन लेओनीद ने ऐसा नहीं किया, उसे उम्मीद थी कि तूफान जल्दी खत्म हो जाएगा और वह ठीक समय पर घास पशु-फार्म में पहुंचा देगा। लेकिन तूफान तेज हो गया और साथ ही तेज पाला पड़ने लगा। लेओनीद ट्रैक्टर के केबिन में ठण्ड से अकड़ गया....कुछ दिनों तक वान्या स्कूल नहीं आया। बच्चे दुखी थे, उनकी चहक अब सुनाई नहीं देती थी। सब पूछते थे—कैसे अपने दोस्त का दुख हल्का करें ? किसी ने यह सुझाव रखा कि हम वान्या के घर चलें। मैंने उन्हें ऐसा न करने की सलाह दी, 'वान्या, उसके माता-पिता और भाई-बहन पर दुख का पहाड़ टूटा है। हम उनके घर जाएंगे, तो मां को हमें देखकर यह याद हो आएगा कि कैसे लेओनीद स्कूल जाता था। तब वह और भी ज्यादा दुखी होगी। हम कुछ दिन बाद उनके घर जाएंगे, जब मातृ-हृदय की पीड़ा इतनी तीव्र नहीं रहेगी। जब वान्या स्कूल आए, तो उससे यह मत पूछना कि उसका भाई कैसे मरा, इसके बारे में सोचना और बोलना बहुत दर्दनाक होता है। वान्या का ध्यान रखना किसी भी तरह उसका दिल न

दुखाना।'

वान्या के पिता ने कजाखस्तान से लौटकर बताया कि जिस राजकीय फार्म में लेओनीद काम करने गया था, उसकी बस्ती में एक सड़का का नाम उनके बेटे के नाम पर रखा गया है। मैंने बच्चों को यह बताया। उन दिनों हमारी कक्षा के बच्चे पायोनियर बनने की तैयारी कर रहे थे। बच्चे यह सोच रहे थे उनकी कक्षा की पायोनियर टोली और उसकी तीन टुकड़ियों को किसके नाम दिए जाएं। अब उन्होंने खुद ही वह बात कही जिसकी मुझे उनसे उम्मीद थी—जिसकी टुकड़ी में वान्या होगा, उसे उसके भाई—लेओनीद—का नाम प्रदान किया जाए, जिसने अन्तिम क्षण तक अपना कर्त्तव्य निभाया था। वान्या ने यह खबर मां को दी। मैंने बच्चों को सलाह दी—एक ड्राइंग की कापी लेकर उसमें हर कोई स्कूल के बारे में चित्र बनाए। स्वाभाविक ही था कि बच्चे लेओनीद के स्कूली जीवन से सम्बन्धित चित्र बनाना चाहते थे। बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने हमें एक सेब का पेड़ दिखाया, जो लेओनीद ने तीसरी कक्षा में पढ़ते समय लगाया था। भौतिक विज्ञान के कक्ष में एक क्रेन का मॉडल रखा हुआ था, जो लेओनीद और उसके साथियों ने बनाया था। लेओनीद को पक्षियों से बड़ा प्रेम था और उसने कबूतरों के लिए एक दरबा बनाया था। इस सबके बारे में बच्चों ने चित्र बनाए। मैंने लेओनीद का छविचित्र बनाया। यह एल्बम हमने मां को भेंट की। उनके लिए यह अमूल्य उपहार था—उन्हें यह देखकर खुशी हुई कि स्कूल में उनके बेटे की समृति जीवित है। ऐसी ही एक एल्बम हमने उस पायोनियर टुकड़ी के लिए बनाई, जिसे लेओनीद का नाम प्राप्त होगा।

इस बात का बहुत ध्यान रखना चाहिए कि नेक भावनाएं और नेक कर्म दिखावे के काम न हो जाएं। किसी ने जो नेक काम किया है, उसके बारे में कम से कम बोला जाए और भलाई के लिए तारीफों के पुल न बांधे जाएं—चरित्र-निर्माण कार्य में इस सिद्धान्त पर चलना नितांत आवश्यक है। सबसे खतरनाक बात यह है कि मामूली इन्सानियत दिखाते हुए भी बच्चा यह सोचने लगता है कि वह न जाने कितना बड़ा काम कर रहा है और यह सर्वप्रथम स्कूल का ही दोष है। किसी छात्र को दस कोपेक गिरे मिल गए, उसने लाकर क्लास में दे दिए और बस, सारे स्कूल को इसकी खबर हो जाती है। मुझे एक दिलचस्प घटना याद आती है, जो पड़ोस के एक स्कूल में हुई। एक बच्ची को पांच कोपेक मिले, उसने लाकर अध्यापिका को दे दिए, अध्यापिका ने उनकी खूब प्रशंसा की। अगली आधी छुट्टी में तीन लड़कियां और एक लड़का अध्यापिका के पास दौड़े आए—सबको साथियों के खोए पैसे मिले थे, किसी को एक कोपेक और किसी को दो। बच्चों को उम्मीद थी कि उनकी तारीफ होगी; अध्यापिका ने देखा कि दाल में कुछ काला है और उन पर बरस पड़ीं। बस ऐसे ही

बच्चों को पुरस्कार की आशा में भलाई करना सिखाया जाता है और अगर उनकी तारीफ नहीं होती, तो वे सोचते हैं कि उनके साथ बड़ा अन्याय हुआ है।

भलाई भी इन्सान के लिए ऐसी स्वाभावित् बात होनी चाहिए, जैसे की सोचना, चिन्तन करना। इसकी तो आदत ही पड़ जानी चाहिए। हम सब अध्यापक यह चेष्टा करते थे कि नेक, सहृदय, उदार कार्यों से बाल-हृदयों को गहरा सन्तोष प्राप्त हो। बचपन में दूसरे व्यक्ति के आत्मिक जगत के प्रति हार्दिक संवेदनशीलता शिक्षक के शब्दों के प्रभाव में भी और स्कूल के वातावरण के प्रभाव में भी जागती है। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि सभी बच्चों में दूसरों का दुख बंटाने, नेक काम करने की तत्परता विकसित की जाए। लेकिन यह मनोवेग हृदय को केवल तभी उदार बनाता है, जबकि वह व्यक्तिगत कार्यों का, गतिविधि का रूप धारण करता है।

मेरे छात्रों ने अपने बूढ़े मित्र आन्द्रेई दादा को नहीं भुलाया था। जाड़ों में मधुमक्खियों के छत्तों को जिस इमारत में रखा जाता था, उस जगह से थोड़ी दूर ही एक छोटे-से मकान में वह रहते थे। बच्चे उनसे मिलने जाते थे, उनके लिए सेब, बिस्कुट ले जाते थे, चित्र बनाते थे। दादा उनकी प्यार भरी बातें सुनकर खुश होते थे। बच्चे यह महसूस करते थे कि अकेले रहना बहुत मुश्किल है और जहां तक उनसे बन पड़ता था, दादा की मदद करते थे।

मार्च में एक दिन बच्चे आन्द्रेई दादा के पास जाने की जल्दी में थे—आज उन्हें छत्तों को बाहर निकालकर रखने में दादा की मदद करनी थी। यह दिन सबके लिए उत्सव के समान था—बच्चों का मन यह देखकर आह्लादित होता था कि कैसे सुनहरे पंखों वाली मधुमक्खियां पहली उड़ान भरती हैं—यह वसंत के आने का सुसमाचार था। रास्ते में हम एक वृद्धा के घर पानी पीने को रुके। उन्होंने हमें अपने हाथ के बनाए बिस्कुट दिए और हमसे आते रहने को कहा।

युद्ध ने इस स्त्री—ओल्गा फ्योदोरोव्ना—से उसके सभी सम्बन्धियों को छीन लिया था—दो बेटे, पति और भाई मोर्चे पर शहीद हुए। बेटी को फासिस्ट जर्मनी खदेड़ ले गए, जहां वह कोयले की खान में कमरतोड़ काम करती हुई मर गई। मैंने बच्चों को ओल्गा फ्योदोरोव्ना ने कठिन जीवन के बारे में बताया। बाल-हृदयों में ओल्गा दादी से मैत्री करने की इच्छा जागी। बच्चे अक्सर उनसे मिलने जाने लगे। ओल्गा फ्योदोरोव्ना ने हमें वे पदक दिखाए, जो उनके पति और बेटों को वीरता के लिए मिले थे। बच्चों के हृदय में यह अभिलाषा जागी कि वे ओल्गा दादी को खुशियां बांटें। जब फलों के पेड़ लगाने का समय आया, तो हमने उनके आंगन में सेब, नाशपाती और चैरी के पांच-पांच पेड़ और अंगूर की इतनी ही बेलें लगाईं—उनके पति, भाई, बेटों और बेटी की याद में। ओल्गा दादी के नाम के भी वृक्ष लगाए। ओल्गा

फ्योदोरोव्ना के मन में कृतज्ञता के जो भाव उभरे, उन्हें शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। गर्मियों के तपते दिनों में बच्चे पौधों को पानी देने आते थे, हालांकि ओल्गा फ्योदोरोव्ना स्वयं भी इतना कर लेती थीं। गर्मियों की छुट्टियों में बच्चे सारा-सारा दिन ओल्गा दादी के आंगन में खेलते रहते थे।

ओल्गा दादी बच्चों की मित्र हो गईं। उनके बिना वे एक भी त्यौहार नहीं मनाते थे। जब फल पकने लगते तो वे तुरन्त ही उनके यहां जाते। दादी के बाग में से पहले पके फलों को तोड़कर बच्चे दादी को देते थे। जब बच्चे सातवीं कक्षा में थे, तो ओल्गा दादी बीमार पड़ गईं। गर्मियों की छुट्टियां शुरू होने के एक सप्ताह बाद उनका देहान्त हो गया। बच्चों के लिए यह बड़ा भारी दुख था। कुछ समय बाद हमें पता चला कि ओल्गा फ्योदोरोव्ना अपना मकान और बाग बच्चों के नाम कर गई हैं। अब यह समस्या उठी कि बच्चे इसका क्या करेंगे। खैर, यह तय हुआ कि बच्चे यहां अपने नेक काम करें। बच्चों ने सुझाया कि आन्द्रेई दादा को इस मकान में रहने को कहा जाए—मकान मधुवाटिका से ज्यादा दूर नहीं था। आन्द्रेई दादा सहर्ष तैयार हो गए।

जिस मां का बेटा मातृभूमि की स्वाधीनता की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ, उसका दुख अथाह होता है। बच्चों को यह दुख महसूस करने दीजिए, इसे बांटने दीजिए। उन हजारों-हजार माताओं को जिनके सपूत वोल्गा से एल्बा तक और भूमध्यसागर से उत्तरध्रुवीय महासागर तक अनाम कब्रों में चिरनिद्रा में सोए हुए हैं, उन्हें बच्चों का मित्र बनाइए। जब तक बाल-हृदय ने हमारी मातृभूमि के अपार दुख को अनुभव नहीं किया है, तब तक हम उसे उदात्त नहीं बना सकते। यह दुख है—युद्ध में मारे गए 2 करोड़ लोगों का दुख, विभीषण यातनाओं, कष्टों और विनाश का दुख, उस सबका दुख, जिसे हमारी जनता न कभी भुला सकती, न फासिस्टों को क्षमा कर सकती है।

बच्चा शहीद की मां के दुख को जितनी अधिक अच्छी तरह समझ लेगा, जितनी गहराई से महसूस करेगा, उतनी ही उसकी नागरिक धारणाएं सुदृढ़ होंगी, मातृभूमि के भविष्य के लिए उत्तरदायित्व की भावना बाल-हृदय में उतनी ही प्रबल होगी। इसलिए शहीद की माता को स्कूल में निमंत्रित करने जैसे आयोजनों में बड़ी समझदारी और सर्तकता से काम लेना चाहिए। बच्चों के लिए यह स्कूली जीवन की आम घटना-सी नहीं होनी चाहिए। जिस व्यक्ति का निजी दुख, सारी जनता के दुख की अभिव्यक्ति है, उसके साथ भेंट की बाल-हृदयों पर गहरी छाप पड़नी चाहिए।

बच्चों को सुयोग्य नागरिक बनाना यह न केवल शिक्षा-सिद्धान्त की, बल्कि व्यहवहार की भी एक जटिलतम समस्या है। इस क्षेत्र में सबसे अधिक महत्वपूर्ण

बात यह है कि ज्ञान बच्चे के हृदय में उतरे, उसके अपने आत्मिक जगत में प्रतिबिंबित हो। मातृभूमि के बारे में और सोवियत जनता के लिए जो पावन है, अमूल्य है, उसके बारे में ज्ञान कोई ऐसी जानकारी नहीं है, जिसे एक बार याद करके रोजमर्रा के जीवन में इस्तेमाल किया जा सकता है। ये तो वे सत्य हैं, जिनसे प्रत्येक छात्र का व्यक्तिगत जीवन प्रभावित होना चाहिए। ये सत्य बच्चे के लिए केवल तभी पावन होते हैं, जबकि मातृभूमि की महानता को उसने मनुष्य की महानता के जरिए जाना-समझा हो।

'जनता की स्मृति एक विराट पुस्तक है, जिसमें सब कुछ लिखा हुआ है,' हमारे शिक्षण लेखक लेओनीद लेओनोव का कहना है। इस पुस्तक को पढ़े बिना, उसके हर शब्द, हर अक्षर को गहराई से समझे और हृदयंगम किए बिना तो नागरिक भावना के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिसे हम स्कूल का जीवन के साथ सम्बन्ध कहते हैं—उसे मैं सर्वप्रथम इस रूप में समझता हूं कि हमारे लिए जो पुनीत है, उसे जन-मानस में से बाल-हृदय और बाल-चेतना में उतारा जाए। हमारी ये पुनीत, पावन भावनाएं हैं—मातृभूमि के प्रति प्रेम तथा उसके शत्रुओं, आक्रामकों के प्रति घृणा, जिन्होंने जनता को अकथनीय यातनाएं और कष्ट पहुंचाए। जन-स्मृति की महान पुस्तक को जब भी पढ़ा जाता है, तो यह मानव-व्यक्तित्व के गठन में सबसे जटिल और सबसे अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य होता है।

उदात्त भावनाओं से प्रेरित श्रम

श्रम एक महान चरित्र-निर्माता होता है, बशर्ते वह हमारे छात्रों के आत्मिक जीवन में स्थान बना पाए, मैत्री और भाईचारे का हर्ष प्रदान करे, जिज्ञासा और कौतूहल बढ़ाए, कठिनाइयों पर विजय पाने की हर्षमय भावना जगाए, चारों ओर के संसार में नित सौन्दर्य दिखाए, पहली नागरिक भावना—भौतिक सम्पदा के, जिसके बिना मानव-जीवन असम्भव है, निर्माता की भावना—को जन्म दे।

श्रम करने का हर्ष एक प्रबल शैक्षिक शक्ति है। बचपन में हर मनुष्य को उदात्त भावना की गहरी अनुभूति होनी चाहिए।

हमारे स्कूली जीवन का पहला शरद। बड़ी कक्षाओं के छात्र स्कूल के खेत में से हमारे लिए एक टुकड़ा काट देते हैं। हम जमीन की गुड़ाई करते हैं—ग्रामीण बच्चे ऐसे श्रम के आदी होते हैं। मैं बच्चों से कहता हूं, 'यहां हम वसंती फसल के गेहूं बोएंगे, फसल काटकर उसे मांड़ेंगे। यह हमारी पहली रोटी होगी।' बच्चे अच्छी तरज जानते हैं कि रोटी क्या है और वे अपने माता-पिताओं की भांति श्रम करने की चेष्टा करते हैं। साथ ही हमारे इस काम में रोमांच का, खेल का तत्व भी है।

अपने श्रम की रोटी का सपना बच्चों को प्रेरित करता है, कठिनाइयां लांघने के लिए धीरज और साहस प्रदान करता है। कठिनाइयां बहुत हैं—बच्चे कम्पोस्ट उठाकर लाते हैं, उसे मिट्टी में मिलाते हैं, गेहूं के लिए क्यारियां खोदते हैं, एक-एक दाना करके बीज चुनते हैं। बुआई का दिन तो मानो उत्सव का दिन ही होता है। सभी बच्चों के हृदयों में श्रम का उत्साह है। खेत बोया जा चुका है, लेकिन कोई घर नहीं जाना चाहता। बच्चे भविष्य की कल्पना करना चाहते हैं, हम पेड़ तले जा बैठते हैं और मैं गेहूं के सुनहरी दाने की कहानी सुनाता हूं। मैं कहानी के बारे में और इस बारे में सोचता हूं कि मेरे छात्रों के लिए बचपन में श्रम केवल बाल-सुलभ हर्ष ही नहीं, बल्कि अपना नागरिक कर्तव्य निभाने का पहला हर्ष भी हो, कि श्रम के रास्ते, मानो एक खुली पगडण्डी पर बढ़ते हुए बच्चे सामाजिक जीवन में प्रवेश करें, लोगों और स्वयं अपने आपको जानें-समझें, उनके हृदय में नागरिक गर्व की भावना जागे। मैं यह कभी नहीं भूलता कि श्रम कोई आसान बात नहीं होनी चाहिए। बच्चों को शारीरिक और आत्मिक शक्ति पर कितना जोर पड़ता है, इसी से वह अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया निर्धारित होती है, जिसे वयस्कता कहते हैं। श्रम के बदौलत बच्चा वयस्क होता है। कठिनाई का यह माप हमें ढूंढनी चाहिए, इसे इस तरह निर्धारित करना चाहिए कि श्रम ऐसा हो, जिसे बच्चे कर सकें और साथ ही इस श्रम की बदौलत धीरे-धीरे बच्चा बच्चा न रहे। कई वर्षों के अनुभव से मैंने देखा कि यह लक्ष्य केवल तभी प्राप्त किया जा सकता है, जबकि बच्चों के श्रम में बड़ों के उत्पादन-कार्य का सबसे महत्वपूर्ण तत्व होता है—श्रम का भौतिक परिणाम प्राप्त होता है और वह बाल-समुदाय के सदस्यों के सम्बन्धों के सूत्र में बंधा होता है।

जब तक अंकुर नहीं फूटे, बच्चों के मन में यह चिन्ता रही कि कब हमारा खेत हरा होगा और जब अंकुर निकल आए, तो बच्चे रोज सुबह दौड़े-दौड़े देखने जाते थे—अंकुर ठीक बढ़ रहे हैं कि नहीं। जाड़ों में हमने उन्हें हिम से ढक दिया, ताकि उन्हें पाला न लगने पाए। वसंत आया और बच्चे यह देखकर खुशी से झूम उठे कि कैसे खेत पर हरा-हरा कालीन बिछ गया है। वे देखते थे कि कैसे पौधे बढ़ रहे हैं, उनमें बालियां आ रही हैं। बच्चे हर बाली का ध्यान रखते थे।

फसल की कटाई और बुआई से भी अधिक हर्षमय त्यौहार थी। बच्चे सुन्दर कपड़े पहनकर स्कूल आए। हर छात्र ने बड़े ध्यान से गेहूं काटा, उसे छोटे-छोटे पूलों में बांधा। फिर नया श्रम-उत्सव आया—मंड़ाई का दिन। एक-एक दाना इकट्ठा करके बोरी में डाला। आन्द्रेई दादा ने गेहूं पीस दिया, सफेद-सफेद आटा लाए। हमने तीना की मां से अनुरोध किया कि वह इस आटे की रोटियां बना दें। बच्चों ने उनकी मदद की—लड़के पानी भरकर लाए, लड़कियां उन्हें लकड़ियां पकड़ाती थीं और लीजिए,

चार बड़ी-बड़ी, गोल-गोल, मोटी-मोटी डबलरोटियां तैयार हो गईं–यह हमारे श्रम, हमारी चिन्ताओं और उद्विग्नता का परिणाम था। बाल-हृदय गर्व से भरपूर हो उठे।

चिर प्रतीक्षित दिन–पहली रोटी का उत्सव–आया। बच्चों ने आन्द्रेई दादा को और सब माता-पिताओं को निमंत्रित किया। कढ़ाईदार सफेद मेजपोश बिछाया गया, बच्चों ने रोटी के महकते टुकड़े चारों ओर रख दिए, आन्द्रेई दादा शहद से भरी रकाबियां लाए। माता-पिता शहद के साथ रोटी खा और बच्चों की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे, उन्हें श्रम के लिए धन्यवाद कह रहे थे।

यह दिन जीवनभर के लिए बच्चों के स्मृति-पटल पर अंकित हो गया। इस उत्सव पर किसी ने श्रम और मानव-गरिमा का महत्व नहीं बखाना। बच्चों के लिए सबसे बड़ी बात यह थी कि उन्हें अपने पर गर्व हो रहा था–हमने अनाज उगाया, रोटी बनाई, हमने माता-पिता को यह खुशी का दिन दिखाया है। अपने श्रम के लिए गर्व की यह भावना ही नैतिक शुद्धता और उदात्तता का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है।

पहली रोटी के हमारे उत्सव की ओर दूसरी कक्षाओं का भी ध्यान आकर्षित हुआ। सभी कक्षाओं के छात्र अपने हाथों अन्न उगाना चाहते थे। बच्चे अपनी कक्षा के अध्यापक के पीछे पड़ गए–दूसरे बच्चे रोटी का त्यौहार मनाते हैं, हम क्यों नहीं मनाते ?

इस घटना पर हम अध्यापकों ने काफी सोच-विचार किया। सबने यह देखा कि गुड़ाई करने और खाद देने जैसे साधारण काम करने की भी बच्चों को इतनी ही इच्छा हो सकती है, जितनी जंगल की सैर पर जाने या रोचक पुस्तक पढ़ने की। अध्यापक बताते थे कि बिल्कुल गए-गुजरे आलसी भी, जिन्हें लगता था, कभी किसी काम में कोई रुचि नहीं हो सकती, वे भी बिल्कुल बदल गए। वे काम करना चाहते थे। 'बात क्या है ?' हम सोचते थे और सब इस फैसले पर पहुंचे की बात भावनाओं की, उदात्त लक्ष्य की प्रेरणा की है। श्रम की लगन, अध्यवसाय सर्वप्रथम बच्चों के भावनात्मक जीवन का क्षेत्र है। बच्चा केवल तभी काम करना चाहता है, जबकि श्रम से उसे हर्ष प्राप्त हो। श्रम का हर्ष जितना गहरा होता है, उतना अधिक बच्चे अपने मान का ख्याल रखते हैं, उतनी ही अधिक स्पष्टता के साथ बच्चे अपनी गतिविधियों में अपने को, अपने प्रयासों, अपने नाम को देखते हैं। श्रम का हर्ष एक प्रबल शैक्षिक शक्ति है, जिसकी बदौलत बच्चा यह समझता है कि वह भी समाज का एक सदस्य है। इसका अर्थ यह नहीं कि श्रम मनोरंजन बन जाता है। उसके लिए लगन की, अध्यवसाय की आवश्यकता होती है। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा वास्ता बच्चों से है, जो अभी संसार में अपने पहले कदम रख रहे हैं।

यह फैसला हुआ कि पहली रोटी का उत्सव हर साल मनाया जाए। अगले

शरद में बच्चों ने खेत के नए टुकड़े पर गेहूं उगाया। इस बार फिर उन्होंने माता-पिता को और अपने नन्हे-मुन्ने मित्रों—उन बच्चों को, जो अभी स्कूल नहीं जाते थे, बुलाया। मेरे छात्र जब बड़े हो गए, तब भी वे बड़े उत्साह और उद्विग्नता के साथ स्कूल के छोटे-से खेत में अनाज काटते और मांड़ते थे, उसे पीसकर रोटियां पकाते थे—इस सब में रोमांच था, खेल था। श्रम से प्राप्त हर्ष की तुलना और किसी भी तरह के हर्ष में नहीं की जा सकती। सौन्दर्य की अनुभूति के बिना इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, परन्तु यहां सौन्दर्य केवल वह नहीं है, जो बच्चे को प्राप्त होता है, बल्कि सर्वप्रथम वह है, जिसका वह सृजन करता है। श्रम का आनन्द जीवन का सौन्दर्य है। इस सौन्दर्य का संज्ञान पाते हुए बाल-हृदय में आत्मसम्मान की और इस बात पर गर्व की भावना जागती है कि कठिनाइयों पर विजय पा ली गई है।

खुशी केवल वही आदमी महसूस कर सकता है, जो घोर परिश्रम करना जानता है, जिसे यह पता है कि पसीना और थकावट क्या हैं। बचपन निरा खुशियों का मेला नहीं होना चाहिए—अगर बच्चे यथाशक्ति परिश्रम नहीं करते, तो वे यह भी कभी नहीं जान पाएंगे कि श्रम की खुशी क्या है। श्रम-शिक्षा में सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चों में श्रम के प्रति ऐसा रुख पैदा किया जाए, जैसा मेहनतकश लोगों का होता है। मेहनतकश जनता के लिए श्रम एक ऐसी आवश्यकता ही नहीं है, जिसके बिना मानव-अस्तित्व असम्भव है, बल्कि यह व्यक्तित्व की आत्मिक सम्पदा, आत्मिक जीवन की बहुविध अभिव्यक्ति का भी क्षेत्र है। श्रम में ही मानव-सम्बन्ध उजागर होते हैं। अगर बच्चे को इन सम्बन्धों के सौन्दर्य की अनुभूति नहीं हुई है, तो उसके मन में श्रम के प्रति प्रेम नहीं जगाया जा सकता। श्रम-गतिविधियां ही मेहनतकश जनगण के लिए आत्म-अभिव्यक्ति और आत्म-पुष्टि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन हैं। एक जन-सूक्ति है—श्रम के बिना मनुष्य शून्य के समान हो जाता है। शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्यभार यह है कि प्रत्येक छात्र में आत्म-सम्मान और आत्म-गौरव की भावना श्रम के क्षेत्र में प्राप्त सफलता पर आधारित हो।

अपने स्कूली जीवन के पहले वसंत में सभी बच्चों ने 'मां की बगिया' लगाई—एक-एक सेब का पेड़ और एक-एक अंगूर की बेल। मैंने उनसे कहा, 'बच्चो, यह हमारी माताओं के लिए बाग होगा। तीन साल बाद इन पेड़ों और बेलों पर पहले फल लगेंगे। पहले सेब और अंगूर के पहले गुच्छे माताओं को हमारा उपहार होंगे। उन्हें हम यह खुशी प्रदान करेंगे। याद रखो, तुम्हारी माताओं के सिर पर बड़ी चिन्ताएं हैं। आओ, हम उन्हें इन चिन्ताओं के बदले खुशियां लुटाएं।'

'मां की बगिया' में श्रम इस स्वप्न से प्रेरित था कि यह बड़ों के लिए, माता-पिता के लिए हर्ष की बात होगी। कुछ बच्चे अभी इस उदात्त मानवीय भावना—मां के प्रति

प्रेम—की पूरी गहराई से नहीं जानते थे। मेरी चेष्टा यह थी कि हर बच्चे के मन में यह भावना जागे। गाल्या ने अपनी सौतेली मां के लिए पेड़ लगाया, साश्को ने नानी के लिए, वीत्या ने मौसी के लिए। कोई भी यहां उदासीन मन से काम नहीं करता था। वसंत और गर्मियों में बच्चे पौधों को पानी देते थे, हानिकारक कीड़ों को नष्ट करते थे। तीसरी साल में पेड़ों पर पहले फूल आए, फल लगे। हर कोई चाहता था कि उसके पेड़ पर फल पहले पक जाएं।

मेरे लिए यह परम हर्ष की बात थी कि तोल्या, तीना और कोल्या के मन में उमंग थी—उनके पेड़ों पर मोटे-मोटे सेब पक रहे थे, बेलों पर अंगूर के भारी-भारी गुच्छे लटक रहे थे। पके फल तोड़कर बच्चे अपनी मां के लिए ले जाते थे। बच्चों के जीवन में अविस्मरणीय दिन थे। मुझे याद है जब कोल्या ने मां के लिए पेड़ से सेब तोड़े, तो उसकी आंखों में कितना स्नेह छलक रहा था।

दूसरी कक्षा में पढ़ते बच्चों ने अपने-अपने घर के अहाते में माता-पिता, नाना-नानी, दादा-दादी के लिए फलों के पेड़ लगाए। इन्हें देखकर उन्हें गर्व होता था। साश्को ने अपनी माता और पिता की याद में पेड़ लगाए; गाल्या और कोस्त्या अपनी माताओं की याद में पेड़ उगा रहे थे, अपनी सौतेली माताओं को भी वे नहीं भूले थे। उनके लिए भी उन्होंने सेब का पेड़ लगाया।

इन पेड़ों की देखभाल बच्चे जितने स्नेह से करते थे, वैसे शायद और कोई काम वे नहीं करते थे। सब बड़ी उत्सुकता से उस दिन का इन्तजार करते थे, जब पेड़ों पर फूल खिलेंगे। पेड़ों पर पहले सेब लगने की प्रतीक्षा करना, उन्हें तोड़ना, मां को देना—यह सब साधारण कार्य नहीं हैं, जो बच्चा एक के बाद एक करता है। यह नैतिक विकास की सीढ़ियां हैं, जिस पर चढ़ते हुए बच्चे अपने काम के सौन्दर्य को अनुभव करते हैं।

मानव जीवन में सबसे पावन और सुन्दर है मां। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि बच्चे उस श्रम के नैतिक सौन्दर्य को अनुभव करें, जिससे मां को खुशी मिलती है। धीरे-धीरे हमारे स्कूल में एक अनुपम परम्परा बनी—मां का शरद उत्सव। इस दिन हर बच्चा मां को वह भेंट करता था, जो उसने अपने श्रम से पाया, जिसका वह सारी गर्मियां या कई बरसों तक ही सपना देखता रहा था—सेब, फूल, गेहूं की बालियां, जिन्हें बच्चे घर पर कुछ क्यारियों में उगाते थे। बच्चों को इस उत्सव के लिए तैयार करते हुए हम उनके मन में यह बात बिठाते थे, 'अपनी माताओं का ध्यान रखो !' बच्चा मां के लिए श्रम में जितनी अधिक आत्मिक शक्ति लगाता है, उतनी ही अधिक उसके हृदय में मानवीयता होती है।

हम मां का वसंती उत्सव भी मनाने लगे। जंगल में हमें घने पेड़ों के बीच एक

छोटा-सा मैदान मिला, यहां गर्मियों में ढेर सारी स्ट्राबेरियां होती थीं। यहां बिताए क्षण बच्चों के लिए अत्यंत हर्षमय होते थे। उनके मन में यह इच्छा जागी कि वे अपनी यह खुशी माताओं के साथ बांटें। उन्होंने यह तय किया कि वसंत में धरती पर उगने वाला पहला फूल मां को भेंट किया जाए। इस तरह मां का वसंती उत्सव मनाया जाने लगा। बच्चे इस दिन वसंत के पहले कोमल जंगली फूल ही नहीं, तापघर में उगाए फूल भी भेंट करते थे। माताओं को समर्पित उत्सवों में कोई आडम्बर, कोई दिखावा नहीं होना चाहिए। हमारी चेष्टा यह थी कि मां का सम्मान करना एक पारिवारिक, आत्मीय उत्सव हो। यहां भारी-भरकम शब्द नहीं, गहरी भावना महत्व रखती है।

मां के लिए भलाई करने की अपेक्षा मानवजाति से प्रेम करना कहीं अधिक आसान है। अगर मन में अपने सगों से लगाव नहीं है, तो इन्सानियत कहां से आएगी ? लोगों से प्रेम के शब्द प्रेम नहीं हैं। परिवार में ही बच्चा आत्मीयता, हार्दिकता और संवेदनशीलता का सच्चा पाठ पढ़ता है; माता-पिता, दादा-दादी, भाई-बहन के प्रति रुख मानवीयता की कसौटी है।

बच्चों को श्रम सौन्दर्य का सृजन होना चाहिए—यह नैतिक और सौन्दर्यबोधात्मक शिक्षा के बीच सामंजस्य की मांग है। स्कूली जीवन के पहले शरद में स्कूल के बाग के एक कोने में हमने जंगली गुलाब बोए। पौधे जब कुछ बड़े हो गए, तो उनमें सफेद, गुलाबी, लाल और पीले गुलाब की कोंपलों की आंखें लगाईं। इस तरह हमने अपनी 'गुलाब-वाटिका' बनाई। पहले फूल खिले, तो बच्चे खुशी से फूले न समाए। बच्चे पौधों को हाथ लगाते डरते थे कि उन्हें कोई नुक्सान न पहुंचा दें। मैंने बच्चों को बताया कि अगर पौधों की ठीक तरह से कटाई की जाए तो सारी गर्मियों फूल खिलेंगे। हर कोई अपनी माता को गुलाब भेंट करना चाहता था। बच्चे इस बात पर बहुत खुश थे कि शरद उत्सव पर वे सेबों के साथ मां को गुलाब के फूल भी दे सकते थे।

पहले वसंत में हमने बहुत सारे फूल उगाए। उसकी निरन्तर देख- रेख करने की जरूरत थी। सिंचाई का काम सबसे कठिन था। बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने उन्हीं दिनों पानी की टंकी बनाई। फूलों की क्यारियों के पास ही नल लगा दिया, इससे बच्चों का काम आसान हो गया। अब नन्हा दान्को भी आधे घण्टे तक में सारे फूलों का पानी दे लेता था।

मैं चाहता था कि हर बच्चे के मन में फूल उगाने का शौक जागे। मेरे विचार में गुलाबों की देख-रेख से बढ़कर ऐसा और कोई भी श्रम नहीं है, जो बाल-हृदय को इतना उदात्त बनाता हो, जिसमें सौन्दर्य, सृजन और मानवीयता का ऐसा सुमेल हो। धीरे-धीरे सभी बच्चे अपने घर पर गुलाब उगाने लगे।

अपने जीवन अनुभव से मेरा यह विश्वास बना है कि अगर बच्चे ने सौन्दर्य का रसपान करने के लिए गुलाब उगाया है, अगर उसके श्रम का एकमात्र पुरस्कार सौन्दर्य पर विमुग्धता और दूसरों के हर्ष और सुख के लिए सौन्दर्य का सृजन ही है, तो ऐसे बच्चे में दुष्टता, नीचता, निष्ठुरता कभी नहीं होगी। यह नैतिक शिक्षा का एक अत्यंत जटिल प्रश्न है। सौन्दर्य में कोई जादुई शक्ति नहीं होती, जो मनुष्य को उदार, सहृदय बनाए, उसमें आत्मिक उदात्तता विकसित करे। सौन्दर्य केवल तभी नैतिक शुद्धता और मानवीयता के गुण विकसित करता है, जबकि उस श्रम में, जो सौन्दर्य का सृजन करता है, उच्च नैतिक आदर्श साकार होते हों, वह मनुष्य के प्रति आदर की भावना से ओत-प्रोत हो। लोगों के लिए सौन्दर्य का सृजन करने वाले श्रम में ये आदर्श जितनी अधिक तरह मूर्तिमान हुए हैं, उतना ही अधिक मनुष्य में आत्म-सम्मान होता है, कोई भी अनैतिक कार्य उसके लिए उतना ही अधिक असहनीय होता है।

हम अध्यापकों ने मिलकर नैतिक शिक्षा में सौन्दर्य की भूमिका पर विचार-विमर्श किया। हम छात्रों के आत्मिक जगत पर प्रभाव डालने के एक साधन के रूप में सौन्दर्य को बहुत महत्वपूर्ण समझते थे, लेकिन साथ ही हमें यह आशंका भी थी कि कहीं हम इस प्रभाव की भूमिका का अतिमूल्यांकन न करें। किन परिस्थितियों में सौन्दर्य शैक्षिक प्रभाव हो जाता है ? मनोवैज्ञानिक गोष्ठी में हमने इस प्रश्न पर विचार किया। इसका उत्तर हमें शिक्षण प्रक्रिया की नियमसंगतियों के सामान्य अनुभव से प्राप्त हुआ। अपने अनुभव से परिचित कराते हुए तथा प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर कक्षाओं के छात्रों के आत्मिक जगत पर शिक्षक के प्रभाव की विधियों और साधनों का विश्लेषण करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कोई ऐसी एकमात्र, सर्वशक्तिशाली विधि नहीं हो सकती, जिससे सफलतापूर्वक बच्चों का चरित्र-निमाण किया जा सके और साथ ही, जो शैक्षिक प्रभाव के दूसरे क्षेत्रों की कमियों को भी पूरा करे।

ऐसा हो सकता है कि सौन्दर्यबोधात्मक शिक्षा तो बहुत अच्छी तरह दी जा रही है, परन्तु अगर छात्र के कम्युनिस्ट चरित्र-निर्माण के दूसरे तत्वों और अंशों में कमियां हैं, तो सौन्दर्य का शैक्षिक प्रभाव क्षीण पड़ जाएगा, यहां तक कि नहीं के बराबर रह जाएगा। बच्चे के आत्मिक जगत पर प्रत्येक प्रभाव केवल तभी शिक्षण की दृष्टि से कारगर होता है, जबकि उसके साथ-साथ और भी ऐसे ही महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ रहे हों। निश्चित परिस्थितियों में यह भी सम्भव है कि कोई व्यक्ति बड़े प्रेम से फूल उगाता है, उनके सौन्दर्य पर विमुग्ध होता है, किन्तु, दूसरी ओर, वह लोगों के प्रति उदासीन और निष्ठुर है। यह सब इस बात पर निर्भर होता है कि मानव व्यक्तित्व पर जिस प्रभाव को हम शिक्षक निर्णायक समझते हैं, उसके साथ उस पर और कौन-से

प्रभाव पड़ रहे हैं।

ये सत्य शनैः-शनैः हमारे शिक्षक समुदाय की आस्थाओं का रूप ग्रहण करते जा रहे थे। निश्चित छात्रों के जीवन-मार्ग पर विचार-विमर्श करते हुए हमारे सामने शैक्षिक प्रभावों के समन्वय की समस्या खड़ी हुई। मेरे विचार में यह बाल-शिक्षा की, चरित्र-निर्माण की एक मूलभूत नियम-संगति है। मैं यह कदापि नहीं कहना चाहता कि हमारे स्कूल के व्यवहारिक कार्य में इस समस्या को सुलझा लिया गया है, पर हां, इसका गहन अनुसंधान करने तथा इसे हल करने के लिए काफी कुछ किया गया है। शिक्षण प्रक्रिया की एक आधारभूत नियमबद्धता के सार को व्यक्त करने वाली इस समस्या को इन शब्दों में सूत्रबद्ध किया जा सकता है—व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने का हर साधन शिक्षण की दृष्टि से कितना कारगर रहेगा, यह इस बात पर निर्भर है कि प्रभाव के दूसरे साधन कितनी अच्छी तरह सोच-समझकर निर्धारित किए गए हैं और वे कितने कारगर हैं। शिक्षण साधन के रूप में सौन्दर्य की शक्ति इस बात पर निर्भर होती है कि कितनी अधिक दक्षता के साथ बच्चों को श्रम की शक्ति दिखायी जाती है, कि उनकी बुद्धि और भावनाओं का विकास कितनी गहराई से और कितनी सूझ-बूझ के साथ किया जाता है। शिक्षक के शब्दों का बाल-हृदय पर केवल तभी प्रभाव पड़ता है, जबकि वे बड़ों के उदाहरण से प्रभावित हो रहे हों, जबकि शैक्षिक प्रभाव के सभी दूसरे साधन नैतिक शुद्धता और उदात्तता से ओत-प्रोत हों।

शैक्षिक प्रभाव हजारों रूपों में एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, परस्पर निर्भर होते हैं। शिक्षण की, चरित्र-निर्माण की कारगरता अंततोगत्वा इस बात पर निर्भर होती है कि इन सम्बन्धों का कितना ध्यान रखा जाता है, या यह कहना अधिक उचित होगा कि किस तरह व्यावहारिक कार्य में ये साकार होते हैं। मेरे विचार में शिक्षाशास्त्र पर यह आरोप, जिसे सुनते-सुनते सब तंग आ गए हैं, कि वह जीवन से पिछड़ा हुआ है, यह आरोप इस तथ्य को नजरंदाज करने का ही नतीजा है कि व्यक्तित्व पर कोई भी प्रभाव तब तक नाकाम होता है, जबकि सैकड़ों दूसरे प्रभाव न पड़ रहे हों। शिक्षाशास्त्र उसी हद तक पिछड़ा हुआ है, जिस हद तक उसमें व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने के साधनों के बीच दसियों और सैकड़ों परस्पर सम्बन्धों, अन्योन्याश्रयों का अध्ययन नहीं किया जाता। शिक्षाशास्त्र तब तक एक यथातथ्य विज्ञान, सच्चा विज्ञान नहीं बन पाएगा, जब तक कि उसमें शैक्षिक परिघटनाओं के बीच सूक्ष्मतम और जटिलतम परस्पर सम्बन्धों, अन्योन्याश्रयों का अध्ययन नहीं किया जाएगा, उनको समझाया नहीं जाएगा।

....हम फूलों के त्यौहार मनाने लगे। पहला त्यौहार वसंती फूलों का था। उस दिन बच्चे अपने स्कूल के बाग में ट्यूलिप के और लिलक के कुछ फूल तोड़ते थे।

लिलक की झाड़ियां बच्चों ने पहली कक्षा में लगाई थीं। हर बच्चा एक छोटा-सा गुलदस्ता बनता था और हर कोई रंगों का अद्वितीय मेल ढूंढने की कोशिश करता था। ये गुलदस्ते बच्चे अपनी माताओं को, आन्द्रेई दादा और ओल्गा दादी को देते थे। बच्चे अपने नन्हे-मुन्ने मित्रों को भी त्यौहार में भाग लेने के लिए बुलाते थे, उनके लिए गुलदस्ते बनाते थे।

दूसरा गुलाबों का त्यौहार था। इस दिन बच्चे स्कूल की 'गुलाब वाटिका' से और अपने घर से गुलाब लेकर गुलदस्ते बनाते थे। सबसे सुंदर गुलदस्ते हम आन्द्रेई दादा और ओल्गा दादी को देते थे।

तीसरा त्यौहार खेतों-मैदानों और चरागाहों में उगने वाले जंगली फूलों का था। यह बच्चों के लिए सबसे हर्षमय उत्सव था। हम सुबह तड़के फूल लेने निकलते थे—सुबह के वक्त फूलों का सौन्दर्य अपने पूरे निखार पर होता है। जंगली फूलों का सुन्दर गुलदस्ता बना पाना भी एक कला है। गुलदस्ते बनाकर हम स्कूल लाते थे, यहां आराम करते थे। बच्चे चाहते थे कि स्कूल के आस-पास भी जंगली फूल उगें। हम उन जगहों को याद रखते, जहां सबसे सुन्दर फूल खिलते होते और फिर शरद ऋतु में वहां बीज इकट्ठे करते, जड़ें खोदते और स्कूल के आस-पास लगाते थे। इस तरह वहां सफेद, नीले, पीले फूल खिलने लगे।

शरद ऋतु के गुलदाउदी का त्यौहार होता था। यह गर्मियों से विदाई का उदासी भरा दिन होता था। उसे जहां तक हो सके देर से मनाने के लिए बच्चे बड़ी मेहनत करते थे। वे गुलदाउदी के पौधों की ठण्डी हवाओं से बचाते थे। शरद ऋतु में रातों को हल्का-हल्का पाला पड़ने लगता है, उससे बचाने के लिए पौधों को कागज के 'टोपों' से ढकते थे। शरद के त्यौहार के बाद गुलदाउदी के पौधों को तापघर में ले जाकर रखते थे।

बच्चे तीसरी कक्षा में थे, जब हमने पहले वंसती फूलों—स्नोड्राप—का पर्व मनाया। जंगल में अभी भी कहीं-कहीं हिम पड़ा हुआ था, पर धरती शीत निद्रा से जाग रही थी। मैदानों में स्नोड्राप के सफेद और नीले-बैंगनी घण्टीनुमा फूल खिल आए थे। इनके छोटे-छोटे गुलदस्ते बच्चों ने अपनी माताओं को दिए।

मैं चाहता था कि बच्चे श्रम में आत्मिक हर्ष का स्रोत देख पाएं। वे समझ लें कि इन्सान रोटी, कपड़ा पाने, घर बनाने के लिए ही श्रम नहीं करता, बल्कि इसलिए भी कि उसके घर के पास सदा फूल खिलें, जो उसे भी और दूसरे लोगों को भी खुशियां लुटाते हैं। बच्चों को छोटी उम्र से ही खुशी के लिए श्रम करना सिखाना चाहिए।

सभी बच्चे अपने घर पर फूल उगाने लगे थे। गुलाब तो प्रायः सभी के घर में थे। इसके अलावा हर बच्चे के अपने प्यारे फूल थे। वार्या, लीदा, पाव्लो, सेर्योझा,

कात्या, लरीसा और कोस्त्या को गुलदाउदी के फूल पसंद थे। सान्या, जीना, ल्यूबा, ल्यूदा और साश्को कार्नेशियन और ट्यूलिप उगाते थे। वान्या, वीत्या और पेत्रिक ने लिलक की कुछ झाड़ियां लगाईं। मैं बच्चों को यह बताता था कि फूलों की देख-रेख कैसे करनी चाहिए, कैसे पौध बनानी चाहिए और फूलों के लिए सही जगह चुननी चाहिए।

फूलों से प्रेम कोल्या और उसकी मां के बीच झगड़े का कारण बना। कोल्या को तापघर में काम करना अच्छा लगता था। मैंने उसे गुलदाउदी के तीन पौधे दिए और यह बताया कि वह उन्हें कैसे लगाए। उन्हीं दिनों हम बच्चों में टमाटर की अच्छी किस्मों की पौध भी बांट रहे थे। गुलदाउदी के साथ कोल्या टमाटर के दसेक पौधे घर ले गया। मां ने टमाटर लगाए और बेटे ने फूल। लगभग दो सप्ताह बाद मां की नजर गुलदाउदी के पौधों पर पड़ गई, उन्होंने अच्छी तरह जड़ पकड़ ली थी। मां ने पौधे उखाड़कर फेंक दिए। उखड़े हुए पौधे देखकर कोल्या को रुलाई आ गई, वह भागा-भागा मां के पास पहुंचा। वह हंस पड़ी, 'अरे, वाह, फूल न हुए, बड़ी सौगात हो गई ! क्या करना है हमें फूलों का ? आज तक तो कभी हमारे घर में किसी ने उगाए नहीं, अब तुझे ही उगाने की पड़ी है।' कोल्या ने चुपके से घर के पीछे एक कोने में पौधे लगा दिए।

कुछ समय बाद वह आसमानी फूलों का छोटा-सा गुलदस्ता लेकर मां के पास आया, बोला, 'मां देखो, कितने सुन्दर फूल हैं'। इन शब्दों के पीछे बच्चे के मन के न जाने कितने जटिल भाव छिपे हुए थे। शायद वह कहना चाहता था, 'मां, मैं चाहता हूं कि हमारे परिवार का जीवन भी इन फूलों जैसा सुन्दर हो।'

'चिड़ियों के अस्पताल' में बच्चे बड़ी सहृदयता के साथ काम करते थे।

आंधी-पानी के बाद हम जंगल में जाते थे और वहां सदा घोंसलों में से गिर पड़े नन्हें पंछियों को पाते थे। 'चिड़ियों के अस्पताल' में काफी देर तक बच्चों की आवाजें सुनाई देती रहती थीं। जाड़ों में जब तेज पाला पड़ता होता, तो बच्चे खिड़की के बाहर चिड़ियों के लिए कद्दू के बीज डालते थे। ढेर सारे टोमटिट पंछी यहां उड़ आते थे। अगर दाना कम पड़ जाता, तो चिड़ियां चिचियाती थीं। बच्चे कमरे में खिड़की के पास मेज पर दाना डालते थे, टोमटिट खिड़की के एक कोने में खुले हुए छोटे से दरवाजे में से अन्दर उड़ आते थे और दाना चुगते थे। धीरे-धीरे वे बच्चों के आदी हो गए, ज्यादा देर तक कमरे में रहने लगे, रात को अगर बहुत तेज पाला पड़ रहा होता, तो वे कमरे में ही रह जाते थे। चिड़ियां चहचहाती थीं, बच्चों के कंधों, हाथों और सिर पर बैठ जाती थीं। जब धूप निकली होती, तो चिड़ियां दाना चुगने आतीं और तुरन्त ही उड़ जातीं। बच्चों का मन होता था कि चिड़ियां ज्यादा देर तक उनके पास रहें।

लगता था मानो चिड़ियां यह समझती हों—उनकी चीं-चीं में बच्चों को यह अनुरोध सुनाई देता था—माफ करना, आज हम ज्यादा देर नहीं ठहर सकतीं।

कोल्या, यूरा, साश्को, कोस्त्या, पाव्लो, कई-कई घण्टे 'चिड़ियों के अस्पताल' में काम करते रहते थे। मैंने बच्चों को सलाह दी कि वे अपने-अपने घर पर भी चिड़ियों को दाना डालें। जाड़ों में खिड़की के पास बच्चों ने लकड़ी की छोटी-छोटी तख्तियां लगा दीं और उन पर वे दाना डालते थे। पाव्लो ने तो चिड़ियों के लिए छोटा-सा घर ही बना दिया।

पहली नजर में ये सब बातें मामूली-सी लग सकती हैं, जिनका चरित्र-निर्माण प्रक्रिया के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु वास्तव में नन्हें जीवों की चिन्ता ही सहृदयता, संवेदनशीलता जैसे गुणों के विकास का साधन है।

तीसरी कक्षा से भरत पंछी त्यौहार, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, श्रम और कलात्मक सृजन का त्यौहार भी हो गया। बालिकाएं मैदा गूंधकर उससे भरत पंछी बनाती थीं। हर बच्ची अपनी इस सरल सी कृति में भरत पंछी की तेज उड़ान को मूर्तित करने का प्रयास करती थी। यह अपने ढंग का अनोखा कलात्मक सृजन था। बच्चियां एक दूसरे को अपने बनाए भरत पंछी दिखाती थीं, वे उनमें गति ही नहीं, गीत भी देखती थीं। 'तेरा पंछी तो चुप है, मेरा गा रहा है,' इन दिनों ऐसी बातें सुनी जा सकती थीं।

बच्चे जब बड़े हो जाएंगे, तो वे खेतों में, डेरी फार्म में काम करेंगे। कोई हल चलाएगा, कोई फल-सब्जियां उगाएगा और कोई गाएं दोहेगा। यह नितांत आवश्यक है कि छोटी उम्र में ही बच्चे धरती पर इस साधारण श्रम के सौन्दर्य को अनुभव कर लें, कि खेती के ये आम काम बच्चों को खुशियां प्रदान करें। ऐसा तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि उनके श्रम में खेल का तत्व न हो, उनमें श्रम की सामूहिक प्रेरणा न जागे, बाल-समुदाय में मैत्री और परस्पर सहायता के सम्बन्ध न हों। मेरे सभी छात्र साझे काम में गहरी दिलचस्पी लेते थे, उसके परिणाम के बारे में सोचते थे।

वसंत के आरम्भ में पशुपालन फार्म में गए, जहां तान्या के पिता काम करते थे। पशुशाला में हमें एक कोना दिया गया, यहां चार मेमने रखे गए—तान्या के पिता ने सबसे कमजोर मेमने चुने। 'बच्चो, हम इन नन्ही जानों की देखभाल करेंगे। हम इन्हें दूध और घास का 'शोरबा' पिलाएंगे, जब तक ये मेमने हट्टे-कट्टे नहीं हो जाते, हम रोज इनकी टहल करेंगे,' मैंने बच्चों को कहा।

प्रायः ऐसा सुनने में आता है—कई बच्चे तो ऐसे आलसी होते हैं कि किसी भी चीज में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं होती; ऐसे निष्ठुर हृदय होते हैं कि उन पर किसी बात का कोई असर ही नहीं पड़ता। यह ठीक नहीं है। छोटे बच्चों को (किशारों को

नहीं; 11-12 साल की उम्र में कुछ नहीं किया जा सकता) मेमनों की देखभाल जैसे किसी श्रम की प्रेरणा दीजिए, उनके साथ महीना-दो महीना काम कीजिए, और आप देखेंगे कि उदासीन से उदासीन बच्चों में भी काम के प्रति रुचि जाग उठेगी। बच्चे सब सामूहिकतौर पर श्रम के सौन्दर्य से प्रोत्साहित होते हैं, तो यह उन्हें मेहनती बनाता है। हमारी कक्षा में एक भी बच्चा उदासीन या आलसी नहीं था और यह बच्चों को साधारण श्रम से प्राप्त प्रेरणा का परिणाम था।

हमने अच्छी-सी सूखी घास ढूंढी, उसे बारीक-बारीक कूटकर मेमनों के लिए 'शोरबा' उबाला। हम उन्हें दूध पिलाते थे। जब मेमने हरी घास खाने लगे, तो बच्चे उनके लिए तापघर से जौ और जई की हरी चरी लाने लगे। जब मैदानों में घास उगने लगी, तो मेमनों के लिए हरी-हरी नरम-नरम घास के ढेर लग गए। तान्या के पापा ने पशुशाला के बाहर एक छोटा-सा बाड़ा बना दिया। यहां मेमने सारा दिन घास चरते थे। यह हमारा 'भेड़ फार्म' था।

स्कूली जीवन के तीसरे साल में बच्चों ने बछड़ों की देखभाल करनी चाही। यह अधिक गम्भीर काम था। हमें गोशाला में एक कोना मिल गया। जाड़ों भर बच्चों ने तापघर में चरी के लिए जौ और जई उगाए। गर्मियों में वे घास सुखाते थे, जो जाड़ों में कुट्टी के काम आती थी। कई लड़के-लड़कियां प्रायः हर दिन गोशाला जाते थे।

वसंत जब अपने पूरे निखार पर गया, तो भेड़ों-मेमनों को दूर की चरागाह में रखा गया। बच्चे अपने नन्हे जीवों के बिना उदास होने लगे। उनका मन होता कि कम से कम एक दिन वे भी चरागाह में रहें। रविवार को हम चरागाह जाते थे, भेड़ों और मेमनों को चराते थे, गड़रियों द्वारा काटी घास के ढेर लगाते थे, वसंत की पहली घास तो मेमनों के लिए जीवनदायी चारा होती है। गर्मियों में, स्कूल की पढ़ाई खत्म होने पर बच्चे रोजाना ही चरागाह में जाते थे। जीवन-अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि इन्सान अगर बचपन में दैनंदिन कार्य के सौन्दर्य से प्रोत्साहित नहीं हुआ, तो उसे खेती का साधारण श्रम कभी भी पसन्द नहीं आएगा।

स्कूल के प्रायोगिक खेत में भी बच्चों का काम रोमांच का पुट लिए हुए था। पहली कक्षा में ही हमें 0.1 हैक्टर जमीन का टुकड़ा दे दिया गया था। बड़ी कक्षाओं के छात्रों के साथ मिलकर बच्चों ने यहां एक मकान बनाया—ईंट की दीवारें, खपड़े का छाजन, लकड़ी का फर्श, छोटी-सी अंगीठी, पानी का नल और बिजली। सब कुछ असली मकान जैसा ही था, फर्क इतना था कि यहां सब कुछ छोटा था। बच्चों ने इस इमारत का नाम रखा 'हरा घर'। यहां पर वे प्रकृति के बारे में कहानियां पढ़ते और सुनते थे। बाद में, जब बच्चे तीसरी में थे, तो हम यहां बीजों के साथ प्रयोग करने लगे।

छोटे से घर का निर्माण बच्चों के लिए खेल भी था और श्रम भी। जब काम पूरा हो गया, तो बच्चे अपने हाथों बनाई इस इमारत की बड़ी देखभाल करते थे। वे भली-भांति समझते थे कि यह उनके अपने श्रम का परिणाम है। स्वयं अपने जीवन के अनुभव से उनके मन में जो यह बात बैठी थी, वह किन्हीं भी लम्बे-चौड़े व्याख्यानों से नहीं बिठाई जा सकती।

बच्चा सामाजिक श्रम की रक्षा करे, संभाल करे, इसके लिए उसे सामाजिक निर्माण का पहला अनुभव प्राप्त होना चाहिए, भले ही वह आरम्भ में मामूली-सा हो। मनुष्य भौतिक मूल्यों के सार को केवल तभी समझता है, जबकि वह सामाजिक वस्तु की भी अपनी व्यक्तिगत वस्तु की भांति कद्र करता है। यह गुण बचपन में ही विकसित किया जाना चाहिए। अध्यापकों के मुंह से प्रायः यह शिकायत सुनने को मिलती है कि किशोर सामाजिक सम्पत्ति के प्रति लापरवाही बरतते हैं। इसका क्या कारण है ? अगर आप चाहते हैं कि किशोरावस्था और यौवन के आरम्भ में इन्सान में आत्मानुशासन की भावना हो, कि सामाजिक हितों के बारे में उसकी चिन्ता दिखावे की न हो, बल्कि उसके मन में सचमुच ही सामाजिक वस्तुओं की संभाल करने की इच्छा हो, तो कुछ ऐसा कीजिए कि बचपन में सामाजिक हित का कार्य बच्चे के लिए उसके अपने सुख, अपनी खुशियों के साथ जुड़ जाए।

'हरे घर' के पास ही एक छोटा-सा खेत था, जहां हम गेहूं, जौ, बाजरा, मकई, सूरजमुखी उगाते थे। 'हरे घर' में बच्चे बीज चुनते थे, फसल रखते थे और खाद तैयार करते थे। बच्चों के लिए यह श्रम कुछ नया जान पाने के रोमांच के साथ जुड़ा हुआ था। बच्चे सोचते हुए काम करते थे और काम करते हुए सोचते थे। उनके सम्मुख प्रकृति के रहस्य और नियम खुल रहे थे। मेरी चेष्टा यह थी कि बच्चे स्वयं अपने अनुभव से यह देख लें कि ज्ञान मनुष्य के लिए प्राकृति शक्तियों के उपयोग में सहायक होता है और वह केवल श्रम की प्रक्रिया में ही प्राप्त होता है। मैंने बच्चों को गेहूं के दाने की कहानी सुनाई, यह बताया कि किस तरह मनुष्य का श्रम उसके जीवन को संचालित करता है। बच्चों के सम्मुख मिट्टी का आश्चर्यजनक जीवन सजीव हो उठा। हम खेत में खाद डालते थे और देखते थे कि मिट्टी अधिक उपजाऊ हो रही है। बच्चों ने गेहूं के सौ-सौ दाने बोए और बड़ी दिलचस्पी से यह देखा कि पौधे कैसे उगते हैं। बच्चे खेत की मिट्टी को ऐसे 'पोषित' करना चाहते थे, ताकि बालियों में मोटे-मोटे दाने भर जाएं। हर बच्चे की यह इच्छा थी कि वह अपने पौधों को खूब खाद दे। यह सचमुच ही सृजनात्मक कार्य था, जो बच्चों के मन में उमंगें भरता था और उन्हें सभी मामूली काम करने की प्रेरणा देता था। बड़े ध्यान से बालियां काटकर बच्चों ने दाने गिने, उन्हें तौला, जिसकी फसल ज्यादा थी, यह गर्व से फूला

न समाता था, दूसरे अधिक अच्छी तरह काम करने की चेष्टा करते थे।

मुझे यह देखकर बड़ी खुशी होती थी कि बच्चों को पौधों से गहरा लगाव होता जा रहा है, वे मिट्टी के जीवन को अनुभव करते हैं। तीसरी और चौथी में बच्चों ने जो गेहूं के दाने उगाए, वे आमतौर पर खेतों में उगाए जाने वाले दानों से दुगने बड़े थे।

'हरे घर' और तापघर में हम पोषक घोलों की सहायता से खीरे और टमाटर उगाते थे। जाड़ों में ही बच्चे कम्पोस्ट और काली मिट्टी मिलाने लगते थे, वसंत आने पर यह खाद खेत में डालते थे और शरद ऋतु में यहां आलू और टमाटर की खूब अच्छी फसल बटोरते थे।

कुछ बच्चे 'हरी प्रयोगशाला' में भी काम करते थे, वैसे तो यह बिचली कक्षाओं के छात्रों के लिए थी। यहां बच्चे अपने बड़े साथियों की देख-रेख में वनस्पति विज्ञान के रोचक प्रयोग करते थे। यहां मैंने बच्चों को यह बताया कि किस तरह फलों के जंगली पेड़ों पर अच्छी किस्मों की कलमें लगाई जाती हैं। दूसरी कक्षा में ही सब बच्चे यह बारीकी का काम सीख गए। उन्होंने प्रत्यक्षतः यह देखा कि प्रकृति पर ज्ञान की कितनी बड़ी सत्ता है, सिद्धान्त और व्यवहार में कैसी एकता है।

बच्चे बड़ी अधीरता से वसंत आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उनकी कलमों में से कोपलें फूटीं, तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। हमने तय किया कि हम अपनी नर्सरी बनाएंगे और वह हर साल पौध तैयार करेंगे। बच्चों के लिए यह काम की एक और मनपसन्द जगह हो गई। तीसरी कक्षा के बाद गर्मियों की छुट्टियों में जंगल में घूमते हुए बच्चों को आलूबुखारे का एक जंगली पौधा दिखा। हम उसे नर्सरी में लाए। सब बच्चों ने इस पर कलमें लगाईं—किसी ने आलुबुखारे की, किसी ने खूबानी की और किसी ने आड़ू की। सब कलमें लग भी गईं। बच्चे आश्चर्यचकित हो एक ही तने पर तरह-तरह के फलों की शाखाओं को बढ़ते देखते थे। 2 साल बाद यहां फल लगे।

पहले भी कहा जा चुका है कि प्रकृति चिन्तन का, सृजनात्मक बुद्धि का समृद्ध स्रोत है। प्रकृति की नियमसंगतियों को जानते-समझते हुए बच्चा इन्सान बनता है, क्योंकि धीरे-धीरे वह समझने लगता है कि वह प्रकृति के विकास की लम्बी सीढ़ी के शिखर पर स्थित है। परन्तु प्रकृति में ऐसी कोई चमत्कारी शक्ति नहीं है कि वह आप से आप ही बच्चे की नैसर्गिक शक्तियों और उसकी बुद्धि का विकास करे, उसके चिन्तन को समृद्ध बनाए। सक्रिय प्रयासों के बिना, परिश्रम किए बिना प्रकृति के रहस्यों को नहीं खोला और समझा जा सकता। जब मनुष्य सचेत रूप से प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग करने के लिए पहला कदम उठाता है, केवल तभी प्रकृति उसे पुरस्कृत करती है—आरम्भ में तो थोड़ा-सा ही, परन्तु ज्यों-ज्यों मनुष्य

प्रकृति को जानने-समझने और साथ ही सृजन करने के लिए अधिकाधिक प्रयास करता जाता है, त्यों-त्यों वह उसे अधिक उदारतापूर्वक पुरस्कृत करती है। बच्चे जितना अधिक परिश्रम करते हैं, प्रकृति के उतने ही अधिक रहस्य उनकी चेतना के सम्मुख खुलते जाते हैं और उतनी ही अधिक नई तथा समझ में न आने वाली बातें वे अपने चारों ओर देखते हैं। परन्तु जितनी अधिक ऐसी अबोध्य बातें होती हैं, उतनी ही सक्रियता से दिमाग काम करता है; इन्सान को आश्चर्यचकित कर देना, उसके चिन्तन को 'भड़काने' का सबसे सीधा रास्ता है। गेहूं के बीजों को भुरभुरी जमीन में बोने से लेकर फसल की कटाई तक बच्चों के दिमाग में दो सौ से अधिक सवाल उठे—क्यों ? कैसे ? प्रकृति से सम्बन्धित कार्यों का शायद ही ऐसा दूसरा कोई क्षेत्र होगा, जो इस तरह विचारों को जगाता हो, चिन्तन की प्रेरणा देता हो, जैसे कि पेड़-पौधे, अनाज आदि उगाने का काम।

मैं यह चेष्टा करता था कि बच्चों के श्रम में विविधता हो, वह उनकी रुचियों और रुझानों को मुखरित करने में सहायक हो। स्कूल के वर्कशाप के बगल में ही हमने बच्चों के लिए एक कमरा बनाया। यहां मेजें रखीं, उन पर शिकंजे लगाए। बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने दो छोटी-छोटी खरादें और एक बरमा मशीन लगाई। आल्मारी में छोटे-छोटे रंदे, आरियां और धातु की वस्तुएं बनाने के लिए औजार तथा धातु की पतरियां और तारें आदि रखे हुए थे—यह सब मॉडल और डिजाइन बनाने के लिए चाहिए। कई लड़के-लड़कियों को यहां काम करना अच्छा लगता था, धीरे-धीरे उनकी एक मंडली बन गई।

दोपहर के खाने के बाद हम यहां आते थे और कई चीजों के मॉडल बनाते थे—जैसे कि पवन-बिजलीघर, मंड़ाई और गहाने की मशीनें, सचमुच के घर जैसा एक छोटा-सा घर भी यहां हमने बनाया। एक मेज और छोटे-छोटे औजारों के लिए आल्मारी बनाई। सब बच्चे मिल-जुलकर लकड़ी तथा लोहे के पुर्जे बनाते थे। मॉडल जितना छोटा होता, उसे असली चीज जैसा बनाना जितना अधिक कठिन होता, उतनी ही अधिक दिलचस्पी से बच्चे काम करते थे।

बच्चों को इस काम में लगाने का मेरा सबसे बड़ा उद्देश्य यह था कि बच्चों की क्षमताएं और प्रवृत्तियां विकसित हों, उन्हें सृजन की खुशी प्राप्त हो, वे ऐसे काम करने की योग्यता और अभ्यास पा लें, जिनकी उन्हें भविष्य में आवश्यकता पड़ सकती है। मैं अपने उदाहरण से बच्चों में शौक जगाने की कोशिश करता था—उन्हें दिखाता था कि कैसे औजारों से काम लेना चाहिए, लकड़ी और धातु की चीजें बनानी चाहिए। शिक्षक का कौशल वह चिनगारी है, जो बच्चों में किसी काम के प्रति रुझान की ज्वाला भड़काती है, उन्हें प्रेरणा देती है। इस कार्यशाला में सबसे पहले मैंने बच्चों को

गुड़िया के लिए एक पलंग बनाकर दिखाया। ज्यों-ज्यों पलंग सचमुच के पलंग जैसा होता जा रहा था, त्यों-त्यों बच्चों की आंखों में चमक बढ़ती जा रही थी—वे इस काम में हिस्सा लेना चाहते थे। कई बच्चे मेरी मदद करने लगे—वे पलंग के अलग-अलग हिस्सों को रंदने और चिकना करने लगे। जब हम पवन-बिजलीघर का मॉडल बनाने लगे, तब तक कई बच्चे केवल मेरी सहायता ही नहीं करते थे, बल्कि स्वयं बहुत कुछ बनाने लगे थे। यूरा, वीत्या और मीशा ने काफी जल्दी ही औजारों से काम लेना सीख लिया। सभी काम करना चाहते थे, इसलिए हम एक-साथ कई चीजों के मॉडल बनाने लगे।

यहां मैं एक बात की ओर पाठकों को ध्यान दिलाना चाहूंगा। बच्चों की क्षमताओं और प्रतिभा का स्रोत उनकी उंगलियों के सिरों पर होता है। कहा जा सकता है कि उंगलियों के सिरों से ऐसी सूक्ष्म धाराएं निकलती हैं, जो सृजनशील विचार के स्रोत को पोषित करती हैं।

बच्चे के हाथों में जितना हुनर होता है, उतना ही वह बुद्धिमान होता है। लेकिन यह हुनर किसी अन्तःकरण से नहीं आ जाता। वह बच्चे की बौद्धिक और शारीरिक शक्ति पर निर्भर होता है। ज्यों-ज्यों हुनर निखरता जाता है, त्यों-त्यों बौद्धिक शक्ति बढ़ती है। उधर हुनर भी दिमाग से ही निखरता है। मैं यह कोशिश करता था कि बच्चों के लिए अपने चारों ओर के संसार का संज्ञान उनके हाथों और परिवेश की सक्रिय अन्योन्यक्रिया हो, कि वे केवल आंखों से ही नहीं, बल्कि हाथों से भी प्रेक्षण करें, कि वे केवल प्रश्नों द्वारा ही नहीं, बल्कि श्रम द्वारा भी अपनी जिज्ञासा व्यक्त और विकसित करें।

'खुशियों के स्कूल' के पहले दिनों से ही मेरे छात्र तरह-तरह के पेड़-पौधों के बीजों और लकड़ी के नमूने इकट्ठे करने लगे। बच्चे विभिन्न वस्तुओं का प्रेक्षण करते हुए उनके गुणों का अध्ययन करते ही थे, साथ ही हाथ में हथौड़ी, चाकू, कैंची और छेनी जैसे सीधे-सादे औजर लेकर वे तरह-तरह की सामग्री के साथ काम करते हुए भी उसके गुणों का ज्ञान पाते थे। पहली और दूसरी कक्षा में बच्चों ने छोटे से चाकू से काम लेना सीखा। वे अलग-अलग किस्म की लकड़ी (एश, बलूत, चीड़, नाशपाती, चैरी, पाप्लर आदि) की पतली-पतली पतरियां काटते थे, उन्हें घिस-घिसकर चिकना करते थे और कागज पर चिपकाते या सीते थे। बच्चे इन पतरियों को मजबूत तथा दूसरे गुणों की दृष्टि से तुलना करते थे। एश वृक्ष के तनों पर होने वाली अपवृद्धि से, जो एक बहुत लचीला पदार्थ है, बच्चे अक्षर तथा पशु-पक्षियों की आकृतियां बनाते थे। हमारे गांव से थोड़ी दूर एक ग्रेनाइट की गुफा है। हम यहां तरह-तरह के पत्थरों के नमूने लेने आते थे। बच्चे अपनी छोटी-छोटी हथौड़ियों से अबरक के टुकड़े तोड़ते

थे, रंग-बिरंगे पत्थर इकट्ठे करते थे। चिकनी मिट्टी से बच्चे छोटी-छोटी ईंटें बनाकर उन्हें धूप में सुखाते थे और फिर उनसे खिलौने के घर बनाते थे। गर्मियों में फसल की कटाई के समय हम रई और गेहूं के तीर जैसे सीधे डण्ठल काटकर उनसे टोपियां और दूसरी चीजें बुनते थे।

इस सबका उद्देश्य बच्चों की तकनीकी काम करना सिखाना ही नहीं था। बच्चों के हाथों का हुनर बढ़ाते हुए मैं उनकी बुद्धि विकसित करता था। जब हम पवन-बिजलीघर का मॉडल बना रहे थे, तो बच्चों ने यह सुझाया कि इसके लिए पंख लोहे की पतरी की जगह लकड़ी के क्यों न बनाए जाएं। सेर्योझा ने कहा, 'बहुत हल्की और मजबूत लकड़ी भी तो है। उससे ऐसे पंख बनाए जा सकते हैं, जो जरा-सी हवा से घूमने लगेंगे....'

प्राथमिक विद्यालय में चार साल तक पढ़ते हुए बच्चों ने 30 क्रियाशील मॉडल बनाए, इनकी संरचना प्रायः उतनी ही जटिल थी, जितनी पवन-बिजलीघर के मॉडल की थी, जो एक छोटे-से जनरेटरे को चलाता था। वर्ष-प्रतिवर्ष बच्चों के रुझान और प्रवृत्तियां मुखरित होते जा रहे थे। शूरा, वीत्या, मीशा, सेर्योझा और यूरा तो लोहे और मशीनों पर लट्टू थे। वे घण्टों खराद और शिकंजों के पास खड़े काम करते रह सकते थे। कितना वक्त बीत गया इसकी तो उन्हें कोई खबर ही नहीं रहती थी और कई बार तो बड़ी मुश्किल से उन्हें घर भेजना पड़ता था। लड़कों को शिकंजों और खरादों पर लकड़ी और धातु के छोटे-छोटे पुर्जे बनाते देखकर मुझे याद आया कि कैसे 'खुशियों के स्कूल' और पहली कक्षा में ही बच्चों ने लकड़ी के अक्षर काटने सीखे थे। लड़कों के इन शौकों में उनके भावी व्यवसाय के कोई पूर्वलक्षण देखना भोलापन होगा। जीवन अनुभव यह दिखाता है कि हुनर में, कौशल में अनेक जटिल रूपांतरण होते हैं। विरले ही ऐसा होता है कि बड़ा होने पर आदमी वही बने, जिसका वह बचपन में सपना देखा करता था।

शारीरिक श्रम बौद्धिक विकास के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा होता है। हस्त-कौशल, हाथों का हुनर जिज्ञासु बुद्धि, समझ और सृजन-कल्पना का मूर्त रूप होता है। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि बचपन में हर बच्चा अपने मन में सोची किसी बात को हाथों से पूरा करे।

चौथी कक्षा में पढ़ते हुए बच्चों ने अपने लिए कुछ औजार बनाए—छोटे-छोटे पतले और मोटे रंदे। लड़के सबसे सीधे-सादे उपकरण के बारे में भी नहीं भूले—चाकू से वे अपने गुड़ियों के और छाया थियेटर के लिए तरह-तरह के पशु-पक्षियों, चुड़ैल और राक्षस की आकृतियां बनाते थे। सेर्योझा और मीशा ने दो मछलीघर बनाए—एक कक्षा में दूसरा 'कथा-लोक' में रखने के लिए।

एक और दिलचस्प काम बच्चों के लिए बहुत हर्षप्रद रहा—हमने आन्तरिक दहन के इंजन से चलने वाला एक छोटा-सा बिजलीघर बनाया। बिजलीघर में अल्प वोल्टता की बिजली बनती थी, जिससे बच्चों को कोई खतरा नहीं था।

तीसरी और चौथी में हर हफ्ते बच्चों के अपने मनपसन्द काम के दो पीरियड होते थे। कुछ बच्चे 'हरे घर' में जाते और कुछ कार्यशाला में, कुछ तापघर में और कुछ प्रायोगिक खेत में या बाग में काम करते। जिन्हें मेमनों और बछड़ों से प्रेम था, वे पशु-फार्म में जाते थे। हर छात्र इन पीरियडों में वह काम करता था, जो उसे सबसे ज्यादा पसंद था। मैं एक दिन एक जगह बच्चों के पास जाता और दूसरे दिन दूसरी जगह। हर ग्रुप में कुछ बच्चे ऐसे थे, जिनमें निश्चित कार्य के प्रति रुझान विशेष तीव्रता के साथ मुखरित हुआ था। वे अपने ग्रुप के नेता, संगठनकर्त्ता हो जाते थे, अपने उदाहरण से साथियों को प्रेरित करते थे। कार्यशाला में यूरा नेता था, खेती के शौकीनों में वान्या सबसे आगे था, बागवानी में वार्या और पशुपालन में साशा। मुझे यह देखकर बहुत खुशी होती थी कि ये बच्चे कुछ करना जानते हैं और इसका ज्ञान हमने हमउम्रों की अपेक्षा कहीं अधिक है। दूसरे बच्चे उनके जैसे बनने की कोशिश करते थे और इस तरह बच्चों का श्रम सृजन-क्षमता की प्रतियोगिता का रूप ले लेता था।

मेरे छात्रों के लिए श्रम शारीरिक और बौद्धिक शक्तियों का खेल था, आत्म-सम्मान की पुष्टि का साधन था, और इसी रूप में उसने उनके आत्मिक जीवन में अपना स्थान बनाया। यह बात बहुत मानी रखती है कि बचपन में हर इन्सान अपने मनपसन्द काम में उल्लेखनीय सफलता पा ले, कि वह अपनी सृजन क्षमताओं को मूर्तित होते हुए देखे, अपने मनपसन्द काम में हुनर हासिल कर ले—बेशक, यह हुनर बच्चों के लिए सम्भव स्तर तक ही हो सकता है। स्कूल में पढ़ते हुए कोई एक काम उसे बहुत अच्छी तरह और खूबसूरती से करना आ जाना चाहिए। अपने मनपसन्द काम में प्राप्त सफलता से बाल-हृदय में जो गर्व की भावना उठती है वह आत्मचेतना का पहला स्रोत होती है, ऐसी पहली चिनगारी होती है, जो बाल-आत्मा में सृजन-प्रेरणा की ज्वाला जलाती है। इस प्रेरणा के बिना, हर्षमय उत्तेजना और जीवन की पूर्णता की अनुभूति के बिना तो मनुष्य मनुष्य नहीं हो सकता, यह विश्वास नहीं हो सकता कि वह जीवन में अपना उचित स्थान पा लेगा। मैं यह प्रयत्न करता था कि स्कूल में एक भी बच्चा ऐसा न हो, जिसे श्रम में अपने व्यक्तित्व को मुखरित न किया हो।

अपने हर छात्र के बचपन को याद करते हुए मैं उसकी हर्षमय आंखें देखता हूं, जिनमें श्रम में प्राप्त सफलता पर गर्व की चमक है।

मेरे स्मृति-पटल पर कुछ ऐसे चित्र भी उभरे हैं—हाथ में छोटा-सा रेडियो लिए

सेर्योझा खड़ा है। चौथी कक्षा में उसने यह रेडियो बनाया था—3 महीने के अथक परिश्रम के पुरस्कारस्वरूप उसे यह अपार हर्ष मिला। फेद्या आड़ू के खिलते पेड़ के पास खड़ा है—उसने आलूबुखारे के जंगली पौधे पर आड़ू की कलम लगाई थी। उसके यत्नों से इस पेड़ पर फूल खिले और फल लगे। वाल्या मेरी स्मृति में उस क्षण अंकित हुई, जब वह गोद में नन्हे मेमने को उठाए पशु-फार्म में से निकली थी। बच्ची ने मरियल से मेमने की देख-रेख करके उसे हृष्ट-पुष्ट बनाया था। तीना नीले गगन तले धूप में खिलते गुलाब के फूलों को देखकर मुस्कराती है—उसने जंगली गुलाब में लाल गुलाब की आंखें लगाईं और उनसे गुलाब का अतिसुन्दर पौधा उगा। जब कोई साश्को का नाम लेता है, तो मुझे काली आंखों वाला बालक दिखता है, जो हाथों में गेहूं का पूला उठाए है; तीन वर्ग मीटर जमीन पर उसने जो गेहूं उगाया था, उसे तौलकर हमने देखा कि इतने बड़े दानों में एक हैक्टर पर अस्सी क्विंटल फसल होती। स्कूल के कुएं के पास सेब का एक छतनारा पेड़ है। हर साल वसंत में जब उस पर फूल आते हैं, तो मैं मंत्रमुग्ध-सा उनकी अनुपम गुलाबी छटा को देखता हूं और मुझे लगता है अभी एक छोटी-सी बच्ची, बालों में सफेद रिबन बांधे भागी-भागी आएगी और मुस्कराकर कहेगी, 'यह तो मेरा पेड़ है।' पहली बार जब इस पेड़ पर फूल खिले थे, तब कात्या ने यही कहा था। कोस्त्या उदास खड़ा है, नन्ही सी बछिया को वह छाती से लगाए है, पर बछिया उसके लाड़-प्यार का जवाब नहीं देती—वह बीमार है।

इस तरह मुझे सब बच्चे याद आते हैं—सभी बच्चों के मन में किसी न किसी काम की लगन है। परन्तु मैं ऐसा कदापि नहीं सोचता कि यह लगन बच्चों के भावी जीवन मार्ग को किसी हद तक पूर्वनिर्धारित करती है। अगर बच्चा सजीवन प्रकृति के जीवन पर मुग्ध है, अगर बाग में या खेत में काम उसे खुशियां प्रदान करता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह जरूर ही बागबान या कृषि विशेषज्ञ बनेगा। बच्चों की क्षमताएं, रुचियां, रुझान गुलाब के पौधे की भांति होते हैं—एक फूल खिलकर झड़ रहा है और उधर दूसरी कली की पंखुड़ियां खुल रही हैं। हर बच्चे के कुछेक शौक थे, इसके बिना तो उनके समृद्ध आत्मिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पर हां, किसी एक काम में उनकी योग्यता विशेषतः मुखरित होती थी। जब तक बच्चा किसी एक काम में महत्वपूर्ण सफलता नहीं पा लेता था, तब तक वह एक व्यक्तित्व के रूप में स्मृति-पटल पर अंकित नहीं होता था। परन्तु जैसे ही श्रम से बच्चे को गहरा व्यक्तिगत हर्ष प्राप्त होने लगता, उसी क्षण में एक मानव व्यक्तित्व प्रकट होने लगता।

वह श्रम, जिसमें इन्सान उच्च कौशल पा लेता है, वह व्यक्तित्व की पुष्टि

करता है और चरित्र-निर्माण का सशक्त स्रोत होता है। अपने को सृजनकर्त्ता अनुभव करते हुए मनुष्य जैसा वह है, उससे भी अधिक अच्छा बनने का यत्न करता है। निस्सन्देह, यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि बचपन में ही, किशोरावस्था की दहलीज पर मनुष्य अपनी सृजन क्षमता और शक्ति की चेतना पा लेता है। इस चेतना में व्यक्तित्व के गठन का सार निहित है।

यहां पर एक बार फिर शैक्षिक प्रभावों में सामंजस्य की उस समस्या की ओर ध्यान दिलाना चाहूंगा, जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। लक्ष्यबद्ध शैक्षिक प्रभाव के रूप में श्रम अनेक अन्योन्याश्रयों और सम्बन्धों द्वारा दूसरे शैक्षिक प्रभावों से जुड़ा होता है और अगर इन सम्बन्धों को कार्यान्वित नहीं किया जाता, तो श्रम सिर पर थोपी गई निरर्थक जिम्मेवारी बनकर रह जाता है, उससे न मस्तिष्क को कुछ मिलता है और न मन को ही कोई सन्तुष्टि होती है। हम अपनी मनोवैज्ञानिक गोष्ठी में श्रम तथा दूसरे शैक्षिक प्रभावों के बीच सामंजस्य की समस्या पर विशेष ध्यान देते थे। बौद्धिक विकास में हाथों की भूमिका पर हुआ विचार-विमर्श अत्यंत रोचक रहा। हमारे शिक्षक समुदाय में श्रम और दूसरे शैक्षिक प्रभावों के बीच अन्योन्याश्रयों और परस्पर सम्बन्ध की समस्या का अध्ययन अभी तक जारी है।

तुम देश के भावी स्वामी हो

पहली कक्षा में ही मुझे एक सहायिका मिल गई, यह छठी कक्षा की बारह वर्षीया छात्रा ओल्या थी। उसने स्कूल के पायोनियर दल की समिति से अनुरोध किया कि उसे नन्हे-मुन्नों की पायोनियर संगठन में शामिल होने के लिए तैयार करने का काम सौंपा जाए। ओल्या को बच्चों से बड़ा प्रेम था और यही सबसे बड़ी बात थी। (हमारे स्कूल में पायोनियर लीडर नियुक्त नहीं किए जाते; बच्चों के साथ वही काम करता है, जिसके मन में इसकी चाह हो और जिसे बच्चों से गहरा लगाव हो।) ओल्या कई कामों में मेरी सहायता करती थी—वह बच्चों के साथ तरह-तरह के खेल खेलती थी, उन्हें जंगल और खेतों-मैदानों में घुमाने ले जाती थी, उन्हें वीर पायोनियरों के बारे में, महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में सोवियत लोगों के पराक्रम के बारे में बताती थी।

ओल्या ने स्कूल में वह काम आरम्भ किया, तो अब पिछले पन्द्रह साल से जारी है और बच्चों की विचारधारात्मक शिक्षा में बहुत बड़ी भूमिका अदा करता है। मेरे परामर्श पर उसने महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के वीरों की बच्चों के साथ भेंटें आयोजित कीं। वीरों की कहानियां इतनी रोचक थीं कि ओल्या ने उन्हें लिख लिया। धीर-धीरे इन कहानियों की एक डायरी बन गई, जिसका नाम बच्चों ने रखा, 'वीरों की कहानियां'। ओल्या ने और फिर दूसरे पायोनियरों ने इसमें सौ से अधिक कहानियां लिखीं। डायरी

में वीरों की छविचित्र भी लगाए गए। अब इस डायरी में 600 से अधिक कहानियां हैं। यह मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना जगाने का ज्वलंत, अमूल्य स्रोत है।

ओल्या के लिए हमेशा बच्चों के साथ रहना कोई उस पर थोपा गया कर्तव्य नहीं था, बल्कि यह तो उसकी आत्मा की चाह थी। इस चाह को मैं एक विलक्षण प्रतिभा समझता हूं—मानवीयता की प्रतीभा। जिस व्यक्ति में यह गुण होता है, वह सच्चा शिक्षक बनता है और अपने श्रम से परम आनन्द पाता है। स्कूल में बच्चों को अगर आप ध्यान से देखें, तो बहुत से ऐसे लड़के-लड़कियों को पाएंगे, जो अपने नन्हें मित्रों के लिए कुछ किए बिना नहीं रह सकते। लड़कों में यह चाह अक्सर शरारतें, नटखटी और चालाकीभरी चालों के रूप में व्यक्त होती है। बालक सरदार बनना चाहता है, वह अपने साथियों की रहनुमाई करना चाहता है, लेकिन उसे यह नहीं पता होता कि अपनी शक्ति किस काम में लगाए। अध्यापकों को मेरा परामर्श है—बच्चों के जोश को ठण्डा मत कीजिए। चंचल, नटखट लड़के आपके सहायक हो सकते हैं। आप उन्हें अपने निकट लाइए और उनकी शक्ति, उनके जोश को आवश्यक दिशा प्रदान कीजिए।

मेरी कोशिश यह थी कि पायोनियर संगठन में शामिल होने की तैयारी तथा बाद में पायोनियर दल का जीवन भी ऐसा हो कि उससे बच्चों के मन में हमारी पवित्र धरती के प्रति प्रगाढ़ प्रेम की भावना जागे, उस धरती के प्रति, जो मुक्ति और स्वतंत्रता के सेनानियों के खून से रंगी हुई है। बच्चा अपने चारों ओर के जिस सौन्दर्य पर विमुग्ध होता है, जिसका वह रसपान करता है, जो उसकी आत्मा का एक अंश बन जाता है, वही मातृभूमि के प्रति प्रेम का पहला अंकुर है। ओल्या और मैं यह जतन करते थे कि बच्चे अपने आस-पास की प्रकृति के तथा उस सबके सौन्दर्य को देखें, जो सोवियत मानव के हाथों निर्मित हुआ है।

हम स्तेपी में टीले पर जा बैठते थे, दूर-दूर तक लहलहाते गेहूं के खेतों को निहारते थे, फूलों से लदे बागों को मन्त्र-मुग्ध हो देखते थे, सुघड़ पाप्लर वृक्षों, नीले गगन और भरत पंछी के गीत का रसास्वादन करते थे उस धरती के सौन्दर्य पर मोहित होना, जहां हमारे दादा और परदादा रहते थे, जहां हमें भी अपना जीवन बिताना, अपनी सन्तान में जीवन को आगे बढ़ाना और जिस मिट्टी ने हमें जन्म दिया, उसी में मिल जाना बदा है—यह मातृभूमि के प्रति प्रेम का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोत है। संसार में ऐसे देश भी हैं, जहां की प्रकृति हमारे खेतों-मैदानों से अधिक रंग-बिरंगी और विविधतापूर्ण है, परन्तु अपनी जन्मभूमि का सौन्दर्य हमारे बच्चों के लिए सबसे अधिक प्रिय होना चाहिए। बच्चे मात्र यह देखें ही नहीं कि कैसे वसन्त में वृक्ष फूलों का श्वेत परिधान ओढ़ लेते हैं, कैसे उन पर मधुमक्खियां मंडराती हैं,

कैसे सेबों में रस भरता है और टमाटर लाल होते हैं—इस सब में उनके मन में हर्ष की, अपने आत्मिक जीवन की पूर्णता की अनुभूति होनी चाहिए। अच्छा है कि उन्हें बचपन ज्वलन्त बिम्बों के रूप में याद आए—फूलों का श्वेत परिधान ओढ़े बाग, कूटू के खेत पर मधुमक्खियों का अनुपम गुञ्जन, शरद के गहरे नीले आकाश में क्षितिज पर उड़ते सारसों के डारें, तपी हवा में दूर कहीं थरथराते नीले टीले, लोहित सूर्यास्त, तालाब के दर्पण पर टहनियां झुकाए खड़े वृक्ष, सड़क के किनारे सुघड़ पाप्लर—अच्छा है कि बचपन में जीवन के सौन्दर्य के रूप में, जी-जान से भी प्यारी यादों के रूप में इस सबकी छाप हृदय से बनी रहे।

परन्तु इस सौन्दर्य के साथ-साथ इस विचार को भी बाल-हृदय में स्थान बनाने दीजिए कि अगर जाड़ों की एक सुबह को 19 वर्षीय जवान अलेक्सान्द्र मत्रोसोव ने दुश्मन की मशीनगन पर गिरकर अपनी छाती से अपने साथियों के रास्ते को गोलियों की बौछार से न बचाया होता, अगर निकोलाई गस्तेल्लो ने अपना आग की लपटों से घिरा विमान दुश्मन के टैंकों पर न गिराया होता, अगर वोल्गा से एल्बा तक हजारों-हजार वीरों ने अपना खून न बहाया होता, तो यह खिलता बाग, यह मधुमक्खियों का गुंजन, मां की लोरी और सुबह तड़के के मीठे सपने, जब मां बड़े स्नेह से तुम्हारे पैरों पर रजाई ओढ़ती है—यह सब कुछ न होता। यही विचार हम बच्चों की चेतना में उस क्षण बिठाते हैं, जबकि वे अपने चारों ओर के संसार और स्वयं अपने होने की, अर्थात् अपने अस्तित्व की खुशी अनुभव कर रहे होते हैं। मैं बच्चों को यह बताता हूं कि किस प्रकार यहां हमारे गांव में, इन खेतों में, इन पेड़ों तले सोवियत सैनिक हमारी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए लड़े थे।

अस्तित्व की खुशी—व्यक्तित्व की आत्मचेतना की एक सबसे ज्वलंत अभिव्यक्ति मात्र ही नहीं है, बल्कि बच्चा अपने इर्द-गिर्द जो देखता है, उसके प्रति उसका सक्रिय रुख और उसके द्वारा संसार का मूल्यांकन भी है। समाजवादी समाज का जीवन-तर्क ऐसा है कि चारों ओर के संसार के सौन्दर्य को हमारे छात्रों के लिए बचपन की खुशियों का, अस्तित्व की खुशी का एक सबसे महत्वपूर्ण स्रोत होना चाहिए। इसलिए शिक्षक को यह कोशिश करनी चाहिए कि हर फूल, हर घास-पात बच्चे को खुश करे। परन्तु क्या बच्चों को उनके चारों ओर के संसार से केवल इसीलिए अनुराग हो जाएगा कि वह सुन्दर है ? आखिर अस्तित्व की खुशी तो कुछ ऐसे आनन्द मात्र ही हैं, जो बच्चों को बड़ी पीढ़ियों से मिलते हैं। नन्हे इन्सान को अपने इर्द-गिर्द के संसार से तभी अनुराग होता है, जबकि वह मातृभूमि की स्वतंत्रता और मुक्ति के लिए दादाओं और परदादाओं द्वारा बहाए गए खून, पसीने और आंसुओं को देखता और अनुभव करता है। लिथुआनियाई कवि मार्त्सिंक्याविचुस ने अपनी कविता 'खून और राख' में अस्तित्व की खुशी और

नागरिक भावनाओं के सामंजस्य को बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है—

देशप्रेम का वरदान दें, माताएं,
बच्चों को अपने,
उदात्त ये भावनाएं, बनाएं
साहसी और पावन हृदयों को उनके।
कान में फूंक दो उनके यह बात
अर्द्धरात्रि की ताराप्रभा में गगन हमारा
हो न चाहे अधिक ऊंचा, अधिक सुन्दर
पर न है वह औरों जैसा।
भावनाएं जिनमें ये हैं संचारित,
होंगे वे सभी बच्चों को प्रिय।

जिन लोगों ने सौन्दर्य की रक्षा की है, उनके सम्मुख उत्तरदायित्व की भावना जब अस्तित्व की खुशी में मिल जाती है, तभी मातृभूमि जी-जान से भी प्यारी होती है। इस मिलन में ही युवा पीढ़ी की नैतिक और सौन्दर्यबोधात्मक शिक्षा का सामंजस्य व्यक्त होता है। अस्तित्व की खुशी ऐसी नहीं होनी चाहिए कि बच्चा कुछ सोचे-विचारे ही नहीं, उसे कोई चिन्ता ही न हो। कुछ अध्यापकों को यह सोचना बिल्कुल गलत है कि समाजवादी समाज का स्वाधीन नागरिक होने के सुख के लिए झेले गए दुखों, यातनाओं के बारे में, बाप-दादाओं के बलिदानों के बारे में कहानियां सुनना बचपन की खुशियों में कड़ुवाहट घोलना है।

शरद के आरम्भ का धुपहला दिन है, सेबों से लदी टहनियां झुकी जाती हैं, अंगूर के बड़े-बड़े गुच्छे लटक रहे हैं, फार्म में गेहूं के ढेर लगे हुए हैं, पारदर्शी वायु में रुपहले तार तैरते हैं। ओल्या के साथ हम बच्चों को गांव के बाहर ले जाते हैं। यहां एक ऊंची टीला है, जहां से अत्यन्त रमणीय दृश्य दिखाई देता है—नीचे खेत में हरे-हरे तरबूज, खेत के आगे बाग और बाग के पीछे सुघड़ पाप्लरों की कतारें, उनके आगे स्तेपी में पतझड़ में बोए हुए गेहूं के लहलहाते खेत और क्षितिज पर नीले झुटपुटे में खड़े टीले। बच्चों के लिए ये अविस्मरणीय क्षण हैं। वे अनुभव करते हैं कि इस अनुपम छटा में उनके सुखी बचपन का एक अंश है—इन दूर-दूर तक फैले खेतों से शाम को माता-पिता लौटते हैं, उनकी आंखों में स्नेह भरा होता है। हम टीले पर बैठ जाते हैं, मैं बच्चों को एक कहानी सुनाता हूं, जिसमें भलाई और बुराई का संघर्ष है, भलाई की विजय पर बच्चे खुश होते हैं।

एक हफ्ते बाद हम फिर यहां आते हैं, प्रकृति के इस मनोहर दृश्य में बच्चे बहुत कुछ नया देखते हैं—शरद ऋतु ने अपनी कूंची से लाल, पीला, कत्थई रंग भर

दिया, सेब और पाप्लर वृक्षों की पत्तियां सुनहरी हो गई हैं, पतझड़ में बोए हुए गेहूं के खेतों की हरियाली और भी चमकीली हो उठी है, आकाश की नीलिमा और भी गहरी हो गई है। इस प्रकार हम हर सप्ताह एक ही समय पर अपने इस स्थान पर आते हैं, प्रकृति के सौन्दर्य को निहारते हैं, लोक कथाओं में भलाई और बुराई के संघर्ष पर उत्तेजित होते हैं, शरद स्तेपी का संगीत सुनते हैं, निर्मल स्वच्छ वायु में सांस लेते हैं और ये सपने देखते हैं कि कैसे हम वसंत में यहां भरत पंछी का गीत सुनेंगे। स्तेपी का यह कोना बच्चों के आत्मिक जीवन में अपना स्थान बना लेता है, उन्हें इससे लगाव हो जाता है। यह मातृभूमि का पहला ज्वलंत बिम्ब है, जो बाल-हृदय में सदा के लिए अंकित हो जाता है।

जब तक बच्चे ने अपने चारों ओर के संसार के सौन्दर्य को ग्रहण नहीं किया है, उसे उसकी गहरी अनुभूति नहीं हुई है, तब तक उसके हृदय में मातृभूमि की भावना भी नहीं बिठाई जा सकती। बच्चों को यह बताने से पहले कि बड़ी पीढ़ियों ने उनके सुखी बचपन के लिए क्या कुर्बानियां दी हैं, उन्हें अपने जन्म-स्थल की प्रकृति का सौन्दर्य देखना चाहिए। अच्छा है कि बच्चे के हृदय में जीवनभर के लिए बचपन के एक कोने की यादें समा जाएं, कि इस कोने के साथ उसके लिए महान मातृभूमि का बिम्ब जुड़ा हो।

शरद के एक सुहावने दिन को मैं बच्चों को टीले के शिखर पर एक गड्ढे का निशान दिखाता हूं, कहता हूं—

'बच्चो, यह गड्ढा देख रहे हो न। वक्त ने इसे प्रायः भर ही दिया है, इसमें घास उग आई है।....आज के जैसा ही एक धुपहला दिन था। इस रास्ते पर हमारी फौजें द्नेप्र के पार हट रही थीं। एक बिल्कुल नौजवान सैनिक अपनी मशीनगन लिए इस टीले पर आया। उसे दुश्मन को यहीं रोके रखना था, द्नेप्र की ओर नहीं बढ़ने देना था। सड़क पर दुश्मन के मोटरसाइकिल सवार सैनिक दिखाई दिए। जवान ने उनका खात्मा कर दिया। फासिस्ट तोपें टीले पर गोले बरसाने लगीं। देखो, दक्षिण की ओर से टीला खुदा हुआ-सा लगता है। यहां कि मिट्टी में जानलेवा लोहा भरा हुआ है। धमाके बन्द हुए, सड़क पर फिर मोटरसाइकिल सवार फासिस्ट बढ़े, और टीला फिर से जी उठा—सोवियत सैनिक की गोलियां दुश्मन के छेद-छेदकर रही थीं। फासिस्टों ने टीले की ओर एक टैंक भेजा। वहां, उन पेड़ों के पास खड़ा होकर वह टीले पर आग बरसाने लगा। टैंक शान्त हुआ और सड़क पर फिर दुश्मन के सिपाही बढ़े और फिर से टीला जी उठा। नौजवान बुरी तरह से घायल हो गया था, उसकी बांह, सिर और छाती से खून बह रहा था, पर वह दुश्मन से जूझे जा रहा था। उसकी आंखों में खून भरा रहा था, वह जानता था कि वह आखिरी बार अपनी मातृभूमि के ऊपर यह नीला

आकाश देख रहा है। मशीनगन के पास ही जब एक गोला आकर फटा, तभी उस नौजवान के दिल की धड़कन बन्द हुई। शाम को गांव के लोग यहां आए, यह गड्ढा खोदकर उसमें उन्होंने खून से लथपथ देह को दफना दिया। जब तक सोवियत सेना ने हमारे गांव को दुश्मन से आजाद नहीं कराया, तब तक उस वीर की अस्थियां यहीं रहीं। नौजवान के सैनिक मित्र टीले पर आए, उन्होंने उसकी अस्थियां निकालीं और उन्हें गांव में ले जाकर आदर-सम्मान के साथ शहीदों की साझी कब्र में दफनाया। हम उस वीर का नाम नहीं जानते, न उसकी मां ही जानती है कि उसका बेटा कहां दफनाया गया है।'

बच्चों के हृदय में टीस उठती है। बच्चों के लिए जीवन का, अपनी जन्मस्थली के इस कोने का सौन्दर्य और भी अधिक प्रिय हो जाता है। बच्चे संसार को जीव की नजरों से देखते हैं। उस नौजवान ने अपने प्राणों की आहुति दी, ताकि वे आज निश्चिन्त, सुखी रह सकें, ताकि आकाश में तारे टिमटिमाएं, धरती पर फूलों और सेबों की सुरभि फैले, स्तेपी पर टिड्डियों का मधुर गीत गूंजे, ताकि नववर्ष की रात को मां हिम-बाबा का उपहार सिरहाने तले रख दे।....बच्चे चुपचाप खड़े हो जाते हैं, रक्त-सिंचित धरती को देखते हैं। वे यहां के हर ढेले को, घास-पात को सहलाना चाहते हैं।

उस शाम को शायद मेरे कई छात्र देर तक सो नहीं सके होंगे। उनकी आंखों के सामने स्तेपी रही होगी—कभी धूप में चमकती और कभी लड़ाई के धुएं से भरी। दिल में टीस उठी होगी—वह वीर कभी उस सौन्दर्य को नहीं देख पाएगा, जो उन्होंने आज देखा था, कल भी देखेंगे और सालभर बाद भी देखेंगे और इस विचार से फिर आंखें भर आई होंगी, और नींद में मां के हाथ ने उन्हें सहलाया होगा।

अगले दिन सुबह पढ़ाई शुरू होने से पहले वार्या स्कूल आती है। वह अपनी कविता सुनाती है, जो उसने पिछली शाम को लिखी थी—

असीम स्तेपी में बढ़ती है राह।
राह किनारे खड़ा है टीला।
चलती हैं हवाएं,
चमकता है सूरज,
छाता है कोहरा
बरसों से यहां।
धरती पर हमारी क्रूर शत्रु ने
किया आक्रमण।
नौजवान एक, मां का लाल,

जा खड़ा हुआ टीले पर—
दुश्मन का रास्ता रोक।
इस प्राचीन टीले पर शहीद हुआ वीर।
फटी छाती गोले से,
धरती पर छटपटाता था
खून से लथपथ दिल।
नीले आकाश पर छा गया अन्धेरा,
मुंह छिपा लिया सूरज ने
काले बादल में।
नहीं, हम नहीं भूलेंगे तुम्हें कभी,
प्राणों की दी आहुति तुमने
जीवन-दान दिया हमें।
गिरा जहां था हृदय तुम्हारा
लगाया है हमने बलूत वृक्ष वहीं।

एक हफ्ते बाद हम फिर टीले पर जाते हैं। बच्चे जानना चाहते हैं कि वह वीर कौन था ? उसका जन्म कहां हुआ ? कहां वह पढ़ा ? क्या उसकी मां जीवित हैं ? बच्चे जो कुछ देखते और सुनते हैं, उसे वे मातृभूमि के लिए प्राण न्योछावर करने वाले वीर की नजरों से ग्रहण करते हैं। बच्चे अपनी भावनाएं व्यक्त करने के लिए कुछ करना चाहते हैं। जब पेड़ों से पत्तियां झड़ गईं, तो हम एक छोटा-सा बलूत वृक्ष टीले पर लाए। बाल-हृदयों में जब नेक भावनाएं हिलोरें ले रही हों, तो कुछ भी कहने की जरूरत नहीं। बच्चे जो काम कर रहे हैं, उसमें उनकी भावनाएं गुंथी हुई हैं—हम कोई पेड़ ही नहीं लगा रहे, ताकि टीले के शिखर पर हरियाली हो, हम तो वीर का सजीव स्मारक स्थापित कर रहे हैं।

टीले पर बलूत उगाना बहुत मुश्किल होता है, बच्चे यह जानते हैं, परन्तु वे मुश्किलों से नहीं डरते। जाड़ों में हम ठण्डी हवाओं से अपने वृक्ष की रक्षा करते हैं, उस पर ढेर सारा हिम डालते हैं। वसंत में जब टीले पर हरी-हरी घास उग आती है, तो बच्चे रोजाना वहां देखने जाते हैं—कोंपलें फूटीं कि नहीं। यह केवल पेड़ की चिन्ता ही नहीं है, बल्कि वीर सैनिक से भेंट है। बलूत का छोटा-सा पेड़ हरा-भरा हो गया, उसकी हर पत्ती बच्चों को उस भयानक दिन की याद दिलाती है। गांव के जिन बड़े-बूढ़ों के सैनिक को दफनाया था, उनसे हम यह पता लगाते हैं कि वह किस दिन शहीद हुआ। यह दिन हमारे लिए पावन स्मृति, शोक और वीरों के यश का दिन बन जाता है। बच्चे सुबह तड़के स्कूल आते हैं, सबके हाथों में फूल हैं। जिस स्थान पर

अनाम रक्षक ने वीरगति पाई थी, वहां वे फूल चढ़ाते हैं।

टीले के शिखर पर धरती का छोटा-सा टुकड़ा बच्चों के लिए बड़ी पीढ़ियों की वीरता का प्रतीक बन गया, इन पीढ़ियों ने ही देश की स्वतंत्रता की रक्षा की थी। मैं बच्चों के मन में यह विचार बिठाता हूं, 'तुम बड़ी पीढ़ियों के खून से सिंची धरती के स्वामी हो। तुम्हें इस बात की चिन्ता करनी चाहिए कि हमारी मातृभूमि शक्तिशाली और समृद्ध हो।'

एक दिन ओल्या और मैं बच्चों को 'वीरों के उपवन' में ले गए। इस स्थान पर युद्ध से पहले हमारे सामूहिक फार्म के फलों का बाग था। 1941 में फासिस्टों का कब्जा हो जाने पर उन्होंने बाग को काटकर यहां युद्ध-बन्दियों का शिविर बना दिया। फासिस्टों ने सोवियत सेना के 6 हजार भूखे, नंगे, घायल युद्ध-बन्दियों को कंटीले तारों के पीछे खुले आसमान तले मौत का ग्रास बनाने के लिए रख छोड़ा। बन्दियों को पीने के लिए पानी तक नसीब न था। ठण्डी रातों में जमीन पर जम जाने वाले तुषार से वे अपनी प्यार और घास से भूख मिटाते थे। रोजाना दसियों युद्ध बन्दी दम तोड़ रहे थे। फासिस्ट पाशविक निर्ममता के साथ उस दिन का इन्तजार कर रहे थे, जब सब मर जाएंगे, ताकि वे शिविर के पास हवाई बमों के भंडार में विस्फोट करके सोवियत सेना पर आरोप लगा सकें कि उसने अपने ही लोगों पर बम गिराकर उन्हें मार डाला।

सोवियत देशभक्तों ने शिविर में अपना गुप्त संगठन बनाया और बड़ी संख्या में बन्दियों को भगाने की तैयारी करने लगे और फिर एक रात को, जब हजारों लोग हवा और पानी के थपेड़े खाते ठण्ड से ठिठुर रहे थे, 20 स्थानों पर सोवियत सेना के बन्दी सैनिक और अफसर रेंगते हुए कंटीले तारों की ओर बढ़ने लगे। वे मौत का आलिंगन करने जा रहे थे—वे वीर तारों पर जाकर लेट गये और उनके शरीरों पर से होकर अनेक युद्ध-बन्दी स्तेपी में भाग निकले। उस रात को आस-पास के किसानों ने 4 हजार से अधिक लोगों को छिपाया, न गेस्टापो के जल्लाद और न ही फासिस्टों की पुलिस बन बैठे देश-द्रोही उनका कोई पता लगा सके। 400 वीरों ने उस रात को अपने प्राणों की बलि दी, ताकि 4 हजार सोवियत सैनिक और अफसर फासिस्टों की मौत की गिरफ्त से छूटकर फिर से हथियार उठा लें और अपनी मातृभूमि की रक्षा करें।

गांव को जब फासिस्टों से आजाद करा लिया गया, तब स्कूल के छात्रों ने फैसला किया—यह पावन स्थली एक फलता-फूलता स्थल, वीरों का सजीव स्मारक होगी। उन्होंने इस उजाड़ पड़ी धरती को साफ किया, गड्ढे भरे और 400 बलूत लगाए—उन वीरों के 400 सजीव स्मारक, जिन्होंने अपने साथियों की खातिर मौत

को गले लगाया। बलूत के पेड़ बड़े हो गए, स्कूल में आने वाले सभी नए [illegible] यह सच्ची वीर-गाथा सुनाई जाती थी। कुछ वर्ष पश्चात् छात्रों की नई पीढ़ी ने पायोनियर बनते हुए इस बलूत उपवन के पास ही अपनी ओर से भी बलूत बनाए। उस स्थान पर, जहां कंटीले तारों पर वीरों का खून जमा, जहां हृदयों की भस्म मिट्टी में मिली, वहां सबसे दीर्घजीवी वृक्ष उगे। हर पायोनियर ने अपना पेड़ लगाया। फिर यह परम्पर वन गई—पायोनियर बनते हुए हर छात्र 'वीरों के उपवन' में बलूत लगता है।

हम भी अपने बच्चों के साथ यहां आए। ओल्या ने बच्चों को वीरों के पराक्रम की कहानी सुनाई, अपना बलूत वृक्ष दिखाया। बच्चे बड़ी उत्सुकता से यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब उनके भी पायोनियर बनने का समय आयेगा।

वसंत आ गया। 22 अप्रैल को लेनिन के जन्मदिन पर, जो उनके स्मृति दिवस के तौर पर मनाया जाता है, हमारे स्कूल के पायोनियर दल की रैली होती है, जिसमें नये बच्चे पायोनियर संगठन के सदस्य बनते हैं। इस उत्सव से कुछ दिन पहले हम फिर वीरों के उपवन में गए, हर बच्चा बलूत का पौधा, बेलचा और टोकरी भर कम्पोस्ट लाया था। हमने पेड़ लगाए, उन्हें सींचा। यहां, इस पावन स्थन पर 22 अप्रैल को बड़े साथियों ने बच्चों के गले में पायोनियरों का रूमाल बांधा। यहां किशोर पायोनियरों ने शपथ ग्रहण की कि वे अपनी समाजवादी मातृभूमि के सच्चे देशभक्त होंगे।

हम साल में कई बार 'वीरों के उपवन' में जाते थे। वसन्त के आरम्भ में पेड़ों से सूखी टहनियां काटते थे, पाला खा गए पेड़ों की जगह नए पेड़ लगाते थे। शरद के उस दिन, जब वीरों ने यहां अपने प्राणों की आहुति दी थी, हम यहां अपने पायोनियर दस्ते की रैली करते थे। कंटीले तारों की दीवार की जगह अब सुघड़ बलूत वृक्ष उग रहे हैं। मौन धारण किए बच्चे वृक्षों की कतार की ओर बढ़ते हैं, पेड़ों तले फूल रखते हैं—उस स्थान पर जहां उस रात को धरती खून से लाल हो गई थी, अब लाल-लाल फूल रखे हुए हैं।

खुशी के मौकों पर—गर्मियों की छुट्टियां होने से पहले, लम्बी पद-यात्रा पर जाने से पहले भी हम इस उपवन में जाते थे। इस पावन स्थल पर सदा खामोशी छाई होती है। यहां कोई भागता-दौड़ता नहीं, शोर नहीं मचाता, यहां तो बस प्राकृतिक सौन्दर्य का रसपान किया जा सकता है, चुपचाप आराम किया जा सकता है। यहां लड़के-लड़कियां आते हैं, जिनके पिता महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में शहीद हुए। यहां बेटा अपने पिता की कब्र के सामने सिर झुकाता है, जो कहीं दूर—उत्तर ध्रुवीय महासागर के तट पर कार्पेथियाई पर्वतों में है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी उन वीरों की यशगाथा सुनाई जाती है, जिन्होंने अपने बलिदान में सोवियत जनता के लिए

सूरज, फूल और स्वाधीन श्रम की रक्षा की।

टीले पर बलूत वृक्ष ऊंचा ही ऊंचा होता जा रहा है। नीले आकाश की ओर टहनियां बढ़ाए इस गर्वीले वृक्ष को कोई वयस्क देखता है और उसके हृदय की धड़कन तेज हो जाती है, जन्मभूमि उसके लिए और भी अधिक प्रिय हो जाती है।

दशाब्दियां बीतेंगी, इतिहास के इस अभूतपूर्व युद्ध में भाग लेने वाले नहीं रहेंगे, नई-नई पीढ़ियां विस्मय और कृतज्ञता के साथ उन लोगों को याद करेंगी, जिन्होंने मानवजाति को फासिस्ट दासता से बचाया।

युद्ध की अनगिनत मुसीबतें और विभीषिकाएं, आगों की लपटें, बमों के फटने से मौत का शिकार बन रहे लोगों की कराहें, फासिस्ट जर्मनी में बेगार के लिए खदेड़कर ले जाए जा रहे लोगों का रुदन, मोर्चे पर जा रहे पिताओं का आलिंगन, पति, पिता की वीरगति का समाचार पाने वाली स्त्रियों का क्रंदन—यह सब हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।....युवा पीढ़ी को शहीद वीरों की स्मृति को अमर बनाना चाहिए। इस स्कूल में, जहां हम पढ़ते हैं, यहां पर फासिस्टों ने जर्मनी खदेड़ कर ले जाए जा रहे सोवियत युवक-युवतियों को रखने के लिए जेल बनाई थी। बच्चो, यह बात तुम्हें कभी भी नहीं भूलनी चाहिए। तुम बड़े हो जाओगे, तुम्हारे भी बच्चे होंगे—उनके मन में भी मातृभूमि के शत्रुओं के प्रति तीव्र घृणा की पावन भावना जगाना।

युद्ध से पहले हमारे गांव में 5,100 लोग रहते थे। हमारे 837 गांववासी, जिनमें 785 पुरुष और 52 स्त्रियां थीं,,मोर्चों पर शहीद हुए। इनके अलावा हमारे गांव के 69 निवासी फासिस्टों के मृत्यु-शिविरों में मारे गए—उन्हें भूखा रखकर, अमानवयी यातनाएं पहुंचाकर, सता-सताकर मार डाला गया और फिर भट्ठियों में जला दिया गया। फासिस्टों हत्यारे इन्हीं की राख का सौदा करते थे, तुम्हारे भाइयों और बहनों, पिताओं और माताओं की राख ही फासिस्ट शिविर बुखेन्वाल्द से थोड़ी दूर स्थित वेइमार के आस-पास की जमीन में खाद की तरह डाली जाती थी। बच्चो, हमारे भाइयों और बहनों, पिताओं और दादाओं, की यह राख तुम्हारे अन्तःकरण की आवाज बने ! कभी मत भूलना कि हमारे गांव के 276 किशोर-किशोरियों को फासिस्ट जर्मनी खदेड़ ले गए थे, उनमें से 194 मारे गए—भूख से, कमरतोड़ मेहनत से, कुछ को तो जीते जी भट्ठियों में जला डाला गया। पाव्लो के भाई को फासिस्ट बोहुम नगर में ले गए थे, वहां तोड़-फोड़ के लिए तपी सलाखों से उसकी आंखें फोड़ दीं, और फिर उसे जीते जी कीलों के खम्भे पर लटका दिया। तान्या की बहन को नाजियों ने जिन्दा ही जमीन में गाड़ दिया, क्योंकि वह कम्युनिज्म के उच्च आदर्शों की बातें करती थी। कोस्त्या के मामा को लोहे के पिंजड़े में बन्द कर दिया गया, जहां वह भूखे-नंगे कई दिन तड़प-तड़पकर मर गए। यूरा के मौसेरे भाई ने भागने की कोशिश की थी, उसे

पकड़कर जीते जी शिकारी कुत्तों के सामने डाल दिया गया। वाल्या की चचेरी बहन के गोद के बच्चे को फासिस्ट अफसर ने छीन लिया और मां की आंखों के सामने ही उसका सिर पत्थर पर दे पटका। ल्यूस्या की 26 वर्षीया बुआ को फासिस्टों ने उसके दो बच्चों—4 चार की बेटी और 3 साल के बेटे—के साथ ओस्वेन्त्सीम मृत्यु-शिविर में भेज दिया। वहां बच्चों को उससे छीन लिया गया। जब मां ने विनती की, 'ये बीमार हैं, इन्हें मेरे साथ रहने दीजिए,' तो फासिस्ट चिल्लाया, 'अच्छा, ये बीमार हैं, तो अभी हम इनका इलाज कर देते हैं....' और बौखलाई मां की आंखों के सामने ही नंगे बच्चों को पत्थरों पर फेंक दिया और उन्हें अपने ऊंचे नालदार बूटों से रौंद डाला।....

'हमें यह सब कभी नहीं भुलाना है, हमें खुद ही इसे याद नहीं रखना, बल्कि सभी आने वाली पीढ़ियों तक भी मानव अन्तःकरण की यह आवाज पहुंचानी है,' मैं बच्चों को कहता था। हमने यह निश्चय किया कि हम अपनी सोवियत मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए शहीद हुए वीरों के छविचित्रों को एक कमरे में सजाएंगे। तीसरी कक्षा के अन्त और चौथी के आरम्भ में बच्चे गांव के सभी घरों में गए।

माताओं ने हमें शहीदों के और फासिस्ट मृत्यु-शिविरों में मौत का ग्रास बने सम्बन्धियों के फोटो दिए। इन फोटो के आधार पर हमने छविचित्र बनाए और उन्हें 'यश एवं शोक कक्ष' में रखा। इस तरह हमने शहीदों का एक स्मारक बनाना आरम्भ किया, जिसे स्कूल छात्रों की भावी पीढ़ियों को पूरा करना था। मैंने बच्चों से कहा—यह हमारा कर्तव्य है, हमें इसे निभाना है, ताकि धरती पर फिर कभी भी युद्ध न हो, ताकि जनगण भाई-भाई बनकर रहें, ताकि बच्चों का जन्म शान्ति और सुख के लिए हो, न कि युद्ध में मौत का ग्रास बनने के लिए। यह सारे संसार के जनगण के सम्मुख हमारा कर्तव्य है—हमें कुछ भी भुलाना नहीं, माफ नहीं करना है, ताकि फिर कभी भी फासिज्म की विभीषिका संसार को न देखनी पड़े।

अपनी एक पद-यात्रा के समय हमने द्नेप्र नदी के ऊंचे तट पर रात बिताई। बच्चे कई बार नीचे खड्ड के चश्मे का पानी लेने गए, हर बार उन्हें चक्कर लगाना पड़ता था, क्योंकि पगडण्डी पर एक बड़ा पत्थर पड़ा हुआ था।

'यह पत्थर यहां क्यों पड़ा हुआ है ? लोग इसका चक्कर लगाकर क्यों जाते हैं? इसे झाड़ियों में हटा क्यों नहीं देते ?' बच्चे हैरान हो रहे थे। उन्होंने पत्थर को एक ओर ढकेलकर रास्ता साफ कर दिया। अगले दिन सुबह एक बूढ़ा मछेरा हमारे पास आया। उसने पूछा कि पत्थर कहां है। बच्चों को आशा थी कि वह उन्हें शाबाशी देगा, लेकिन बूढ़े बाबा ने सिर हिलाकर कहा, 'बरसों से यह पत्थर यहां पड़ा हुआ है, यहीं इसकी जगह है....' और फिर उन्होंने हमें सोवियत गुप्तचरों के पराक्रम की कहानी सुनाई। द्नेप्र पर घमासान लड़ाई हो रही थी; तीन सोवियत सैनिक गुप्तचरों ने अपनी

सबमशीनगनों के साथ नदी पार की और यहां पत्थर के पीछे छिपकर चौबीस घण्टों तक फासिस्टों से जूझते रहे। फासिस्ट तोपों और मोटरगनों से उन पर गोले बरसाने लगे, कई घण्टों तक गोलाबारी होती रही, लेकिन यह चट्टान तो मानो अभेद्य दुर्ग ही बन गई थी। रात को सोवियत सैनिक नदी पार करके उस ओर आ गए। तीनों सैनिक पत्थर के पीछे गोलियों और गोलों के टुकड़ों से घायल, खून से लथपथ पड़े हुए थे, लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी थी। घायलों को नदी पार अस्पताल में भेज दिया गया, कोई उन वीरों को नाम नहीं जानता, बस ग्रेनाइट का यह विशाल शिला ही उनके पराक्रम की याद दिलाती है। बच्चे पत्थर के पास गए, देर तक वे उसके सामने खड़े रहे, उसे ढकेलकर झाड़ियों से बाहर निकाला और जहां वे पहले पड़ा हुआ था, वहीं रख दिया। अब उन्होंने देखा कि इस पत्थर पर गोलियों और गोलों के टुकड़ों के निशान हैं। आस-पास की जमीन में बच्चों को पत्थर के कई छोटे-छोटे टुकड़े मिले, हर बच्चे ने याददाश्त के तौर पर एक टुकड़ा ले लिया।

तब से किशोर पद-यात्री सदा उस पत्थर के पास होकर जाने लगे। टीले के ऊपर लगे बलूत के पेड़ और 'वीरों के उपवन' की ही भांति यह ग्रेनाइट की शिला भी उस पराक्रम के सौन्दर्य का प्रतीक बन गई, जो बाल-हृदयों में देश-भक्ति की पवित्र भावनाएं जगाता है।

बचपन में पिताओं-दादाओं के पराक्रमों के प्रति इन्सान का क्या रवैया होता है, इसी पर उसका नैतिक स्वरूप, सामाजिक हितों के प्रति, मातृभूमि के हित में श्रम के प्रति उसका रुख निर्भर होता है। मेरी चेष्टा यह थी कि इस विचार से बच्चे के हृदय की धड़कन तेज हो जाए कि आज धरती के जिस टुकड़े पर हम काम कर रहे हैं, यहां पर वीरों ने अपना खून बहाया है। ऐसा होने पर भावनाएं इस विश्वास की पुष्टि करती हैं—जन्मभूमि पर देश के हित में श्रम परम सुख है, जिसके लिए लोग रणक्षेत्र में कूदे। बाल-हृदय में अन्तःकरण का स्वर उठता है—तुम स्वच्छ नीले गगन तले चल रहे हो, खिली धूप को देख रहे हो केवल इसीलिए कि धरती की गोद में वे वीर चिरनिद्रा में सोए हुए हैं, जिन्होंने तुम्हारे लिए प्रकाश और जीवन की रक्षा की। यह स्वर बच्चों को यह याद दिलाता है कि वे अपनी मातृभूमि के भावी स्वामी हैं। बड़ी पीढ़ियों द्वारा निर्मित भौतिक और आत्मिक सम्पदाओं का स्वामी होने की भावना में ही नागरिक परिपक्वता की जड़ निहित है।

ओल्या और मैं यह सोचते थे कि कैसे बच्चों को शहीदों के प्रति कर्तव्य के नाम पर काम करने की प्रेरणा दी जाए। एक दिन बच्चे अपने खेत पर आए—हमें एक बंजर टुकड़े पर कुछ क्विंटल कम्पोस्ट डालना था, ताकि उस जमीन पर जहां पहले कुछ भी उगता था, वहां अब गेहूं का खेत लहलहाने लगे। यह काफी कठिन

और नीरस काम था। काम शुरू करने से पहले ओल्या ने बच्चों को 1943 में स्तालिनग्राद के भयानक लड़ाई में उक्राइनी युवक मिखाईल पनिकाको के पराक्रम के बारे में बताया।

19 वर्षीय नौजवान शत्रु के टैंकों के मार्ग से बनी खंदक में खड़ा था। फासिस्ट टैंक खंदक की ओर बढ़ता जा रहा था। सैनिक ने आग लगाऊ घोल वाली बोतल टैंक पर फेंकने के लिए हाथ ऊपर उठाया ही था कि एक गोली से बोतल टूट गई। घोल जल उठा और आग की लपट कपड़ों पर होती हुई सैनिक के मुंह की ओर बढ़ने लगी। अपने पीछे आग और धुएं की पूंछ छोड़ती हुई जीती-जागती मशाल खंदक से बाहर निकली और टैंक के पास पहुंच गई। मिखाईल के दूसरे हाथ में आखिरी बोतल थी। वह टैंक पर चढ़ गया और उसके ऊपर बोतल तोड़ डाली—टैंक में आग लग गई, वह उसी जगह चक्कर खाने लगा। टैंक के फटने से क्षण भर पहले मिखाईल तनकर खड़ा हो गया, लपटों में घिरे हाथ को ऊपर उठाकर वह चिल्लाया। सैनिकों ने हमले का आह्वान सुना और अपनी खंदकों में से निकलकर उन्होंने दुश्मन का सफाया कर दिया—सड़क अब उनके हाथों में थी।

कहानी सुनकर बच्चे अवाक् खड़े रह गए। इस क्षण वह अमर शहीद मानो उनके पास ही खड़ा था और कह रहा था, 'हमारी पावन धरती के ऐसे ही एक टुकड़े के लिए मैंने अपने प्राणों की बलि दी। क्या इस बात की ओर से उदासीन रहा जा सकता है कि इस पर क्या उगेगा—झाड़-झंखाड़ या गेहूं ?' बच्चों का अन्तःकरण कह उठता है—नहीं, हम उदासीन नहीं रह सकते।

मेरे कहने का अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि हर बार कोई काम करने से पहले बच्चों की वीरतापूर्ण कहानी सुनानी चाहिए। बच्चों के मन में यह बात नहीं बिठानी चाहिए—अगर तुमने कोई काम करने में आलस दिखाया है, काम ठीक तरह से नहीं किया, तो तुम मातृभूमि के सम्मुख अपने कर्तव्य को उचित रूप से नहीं निभा रहे हो। कर्तव्य की भावना एक पावन भावना है और बच्चे को उसे अपने हृदय में संजोकर रखना चाहिए। साथ ही यह बात भी बहुत मानी रखती है कि वीरों के पराक्रम बच्चों को जीना सिखाएं, उनकी चेतना से पहले नागरिक विश्वासों, आस्थाओं को जन्म दें। मैंने ओल्या की मिखाईल पनिकाको के पराक्रम के बारे में बच्चों को सुनाने को कहा था और यह परामर्श दिया था कि इस कहानी का, बच्चे जो काम करने जा रहे हैं, उससे कोई सम्बन्ध न जोड़े, कहानी को उपदेश न बनाए, कहानी सुनकर बच्चे स्वयं ही अपनी मातृभूमि के इस टुकड़े को एक नागरिक की दृष्टि से देखेंगे।

पायोनियर संगठन

1955 के वसंत में, तीसरी कक्षा समाप्त करने से कुछ समय पहले बच्चे लेनिन पायोनियर संगठन में शामिल हुए। स्कूल की कोम्सोमोल समिति ने ओल्या को हमारी कक्षा के पायोनियर दस्ते का पायोनियर लीडर चुना। वह आठवीं में पढ़ती थी।

स्कूल के पायोनियर दल की रैली परम्परा के अनुसार ही लेनिन स्मृति दिवस—22 अप्रैल—को हुई। इससे कई दिन पहले ओल्या अपने साथियों के साथ बच्चों को पायोनियर बनने के लिए तैयार करने लगी। आठवीं के छात्र-छात्राओं ने हमारे देश की कम्युनिस्ट पार्टी, कोम्सोमोल और पायोनियर संगठनों के वीरतापूर्ण इतिहास के बारे में बताया।

'तुम अपने दस्ते का नाम उस व्यक्ति के नाम पर रखो, जिसका पराक्रम तुम्हें सबसे अधिक प्रेरित करता है,' ओल्या ने बच्चों से कहा। बच्चों ने एकमत से फैसला किया—उनके दस्ते का नाम होगा मिखाईल पनिकाको दस्ता। दस्ते का आदर्श-वाक्य होगा, 'लेनिन की भांति संघर्ष करना और विजयी होना', चिह्न होगा—बलूत की पत्तियां और फल, जो प्रकृति की रक्षा के लिए हमारे संघर्ष का प्रतीक होगा।

पायोनियर रैली में केवल छात्र ही नहीं आए, बल्कि उनके माता-पिता, दादा-दादी भी आए। कई लोग ऐसे थे, जिन्होंने महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति और गृहयुद्ध में भाग लिया था, छापामार रहे थे, जिन्होंने 1919 में गांव में युवा कम्युनिस्टों का संगठन—कोम्सोमोल—बनाया था, उसके पहले सदस्य थे।

रैली एक बड़े, हरे-भरे मैदान में हुई। आठवीं कक्षा का पायोनियर दस्ता और तीसरी कक्षा के छात्र—भावी पायोनियर एक दूसरे के सामने खड़े थे। आठवीं कक्षा के दस्ते के पायोनियर लीडर ने कहा कि उनके दस्ते का कार्यभार अब तीसरी कक्षा के पायोनियरों को सौंपा जाता है।

हमारे स्कूल की परम्परा के अनुसार आठवीं कक्षा का पायोनियर दस्ता नया पायोनियर सदस्यों को अपने लाल रूमाल देता है। लड़के-लड़कियां अपने लाल रूमाल उतारकर छोटे बच्चों के गले में बांध रहे थे। हर छात्र ने अपना रूमाल उस बच्चे को दिया, जिससे उनकी दोस्ती हो गई थी। आठवीं और तीसरी के छात्रों में भाई-बहन भी थे—एक सबसे प्रिय परिवारिक स्मृति-चिह्न के रूप में बड़े छोटों को अपना रूमाल दे रहे थे। लाल रूमाल पाकर बच्चों ने पायोनियरों की शपथ ग्रहण की। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि वे मिखाईल पनिकाको की भांति ही निडर और साहसी देशभक्त होंगे, 'लेनिन की भांति संघर्ष करने और विजयी होने' के अपने आदर्श-वाक्य को पूरा करेंगे। पायोनियर बनने की स्मृति में हर बच्चे को उपहार मिला—महान सेनानी के जीवन और संघर्ष के बारे में पुस्तक।

इस रैली की मेरे छात्रों के हृदयों पर जीवनभर के लिए अमिट छाप पड़ी। पायोनियर बनने के समारोह में सबसे बड़ी बात यह है कि पायोनियर का लाल रूमाल एक पीढ़ी से दूसरी को मिलता है। क्रांतिकारी संघर्ष के प्रतीक लाल रूमाल को बच्चे संभालकर रखते हैं। उसे हर रोज नहीं, केवल उत्सवों, समारोहों और पायोनियर रैलियों में ही पहना जाता है—यह हमारे पायोनियर दस्ते की परम्परा है।

लेनिन की भांति संघर्ष करना और विजयी होना

लेनिन ने हमें सिखाया है—कम्युनिज्म के लिए संघर्ष हर दैनन्दिन कार्य में, रोजमर्रा के साधारण श्रम में ही है। ओल्या और मैं यह सोचा करते थे कि हम क्या करें ताकि बच्चों के चारों ओर जो कुछ घटता है उसके प्रति वे उदासीन न रहें, कि बच्चे जनता की भौतिक सम्पदा के बारे में चिन्ता करें। ओल्या के पायोनियर दस्ते में किशोर प्रकृति रक्षकों की एक टुकड़ी बनाई। बच्चों ने खेतों की रक्षा के लिए स्कूल से थोड़ी दूर लगी जंगल पट्टी को अपने संरक्षण में लेने का निश्चय किया। पेड़ों को देखते हुए बच्चों ने पाया कि कुछ पेड़ों पर जड़ के पास छाल कटी हुई है। प्रत्यक्षतः, कोई चाहता था कि पेड़ सूख जाएं, तब वह उन्हें काट सकेगा; सूखे पेड़ क्यों लगे रहें ? बच्चों को गुस्सा आ रहा था—यह क्या बात हुई—हम तो पेड़ लगाते हैं और कोई उन्हें काट ले जाता है ? पता लगाना चाहिए कि किसने यह काम किया।

उस दिन से किशोर प्रकृति रक्षक सक्रिय हो गए। शाम को बच्चे जंगल पट्टी में जाकर बिन बुलाए मेहमानों का इन्तजार करते थे। कुछ दिनों बाद दोषी लोगों को रंगे हाथ पकड़ लिया गया—दो किसान आरी लेकर पेड़ काटने आए थे। पेड़ों को नष्ट करने वाले लोगों की सूचना फार्म के संचालक बोर्ड को दी गई। अपराधियों से एक नष्ट हुए पेड़ की जगह दस नए पेड़ लगवाए गए। बच्चे खुश थे—सच्चाई की जीत हुई थी। नैतिक शिक्षा की यह अनिवार्य शर्त है। कम्युनिस्ट आदर्शों का संघर्ष तभी उदात्त भावनाओं का स्रोत बनता है, जबकि किशोर न्याय की जीत देखते हैं। विजय प्रोत्साहित करती है, नई कठिनाइयों को पार करने के लिए नए बल का संचार करती है।

किशोर प्रकृति रक्षकों को एक खेल बहुत अच्छा लगा, जो सौन्दर्य और उद्यम के लिए संघर्ष पर आधारित था। बच्चों ने देखा कि कुछ लोगों के घरों के अहातों में झाड़-झंखाड़ उग रहे हैं। बच्चों ने इन लोगों को सेब के पौधे लाकर दिए और कहा कि वे झाड़-झंखाड़ साफ करके फलों के पेड़ लगाएं। तीन लोग ऐसे निकले, जिन्हें यह करने में भी आलस लगा। तब बच्चों ने इन लोगों के नाम 'किशोर प्रकृति रक्षकों के चेतावनी पत्र' लिखे जिनमें कहा गया था, 'हम, किशोर प्रकृति रक्षकों को यह देखकर

दुख होता है कि आपका अहाता झाड़-झंखाड़ का पौधघर बना हुआ है। इस झाड़-झंखाड़ में तो जल्दी ही भेड़िए आ बसेंगे। आप इस 'जंगल' में कैसे रहते हैं ? हमारा अनुरोध है—झाड़-झंखाड़ साफ करके यहां सेब और अंगूर लगाइए, फूल उगाइए। हम आपके घर के पास सेव के पांच पौधे और अंगूर की तीन बेलें छोड़े जा रहे हैं। कुछ सुबह पेड़ लगा दीजिए। पेड़ लगाइए और उन्हें अच्छी तरह पानी दीजिए। अगर आपको यह करने का आलस है, तो हम खुद आकर झाड़-झंखाड़ साफ कर देंगे और पेड़ लगा देंगे। अहाते में बाग होगा, पर वह आपका नहीं, हम पायोनियरों का होगा।'

'चेतावनी पत्र' खिड़कियों में से चुपके से मेज पर रख दिए गए और शाम को अंधेरे में ताकि कोई देखने न पाए, इन घरों के आगे पौधे गाढ़ दिए। बच्चे बड़ी उत्सुकता से अगले दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे—ये आलसी लोग क्या करेंगे ? अगले दिन पाठों के बाद उन्होंने गांव का चक्कर लगाया, अहातों का कायाकल्प हो गया था—जहां पहले झाड़-झंखाड़ उग रहा था, वहां अब पेड़ लगे हुए थे।....हमारी प्रकृति रक्षक टोली के बारे में शीघ्र ही सारे स्कूल को पता चल गया। स्कूल के पायोनियर दल की ओर से भी प्रकृति रक्षक टोलियां बनाई गईं। फार्म के संचालक मण्डन ने बड़े पायोनियरों से अनुरोध किया कि वे शहतूत के पेड़ों को अपने संरक्षण में ले लें—कुछ लोग बड़ी बेरहमी से टहनियां तोड़ ले जाते थे। पायोनियरों की कुछ गश्तों के बाद टहनियों का तोड़ना बन्द हो गया।

गर्मियों में हमारे पायोनियर दस्ते ने नई किस्म परखने की प्रायोगिक खेत के लिए गेहूं के 20 किलोग्राम चुनिंदा बीज तैयार करने का वचन दिया। बच्चों ने सबसे अच्छी बालियां चुनीं, स्कूल की इमारत में एक सूखी जगह ढूंढ़कर उन्हें जाड़ों भर के लिए वहां रख दिया, वसन्त आने पर बालियों की मंड़ाई करके दाने फार्म के कृषि विशेषज्ञ को सौंप दिए। इस श्रम से बच्चों की इतनी चिन्ताएं और उद्विग्नताएं जुड़ी हुई थीं कि जब बुआई शुरू हुई, तो वे खेत पर गए—यह देखने कि उनके बीज कैसे बोए जाएंगे। बच्चे तब चौथी कक्षा में पढ़ते थे। खेत जब लहलहाए, तो बच्चों ने फिर अपनी मेहनत का फल दिखाना चाहा। कटाई के दिनों में उन्होंने फसल बटोरने में बड़ी कक्षाओं के छात्रों का हाथ बंटाया। मुझे यह देखकर खुशी हो रही थी कि किस तरह बच्चे अपने चारों ओर जो कुछ होता है, उसके प्रति अधिक संवेदनशील हो गए थे। एक दिन हम खेत से लौट रहे थे, बच्चे बहुत खुश थे, उनके बोए बीज अच्छी तरह उग रहे थे। फार्म के बाग के पास से गुजरते हुए हमने देखा—सेब के एक छोटे से पेड़ पर सूंड़ियां थीं। बच्चे चिन्तित हो उठे। इस वक्त उनके मन में समाज के प्रति अपने कर्तव्य की बात नहीं आई थी, वे तो बस इस बात की ओर से उदासीन नहीं रह सकते थे कि पेड़ को खतरा था। बच्चों ने बाग में जाकर सूंड़ियां नष्ट कर दीं, सेब के

पेड़ की रक्षा की और आस-पास के पेड़ों को ध्यान से देखा कि उन पर कोई हानिकारक कीट तो नहीं हैं।

अपनी जन्मभूमि के स्वामी की भावना सबसे महती देशभक्तिपूर्ण भावना है, जिसे हमें बच्चों के दिलों में जगाना चाहिए। सच्चा देशभक्त वही होगा, जिसे बचपन, किशोरावस्था और यौवन के दिनों में सार्वजनिक खेत की हर बाली, सामाजिक बाग के हर पेड़, सामूहिक फार्म में अन्न भण्डार में अनाज के हर दाने की उतनी ही चिन्ता होती है, जितनी अपने खिलौनों, अपनी प्यारी किताबों की। जो सामाजिक है, वह बच्चे के लिए केवल तभी व्यक्तिगत हो जाएगा, जबकि वह अपना मन उस श्रम में लगाएगा, जिससे लोगों के लिए कुछ बनता है, जबकि उसके अपने हाथों से निर्मित भौतिक सम्पदा से उसे गहन व्यक्तिगत हर्ष की अनुभूति हो, जबकि इस हर्ष के मार्ग में चिन्ताएं, उद्विग्नताएं, असफलताएं रही हों। मैं सदा यह देखता था कि बच्चे को जो अनुभूतियां होती हैं उनके स्रोत क्या हैं। उसके मन को क्या उद्वेलित करता है—केवल वही बातें, जो उसकी अपनी खुशी, अपने कल्याण से सम्बन्धित हैं, या वह सब भी, जिसका अन्य लोगों के हितों से वास्ता है ? इस प्रश्न का उत्तर मेरे लिए सदा बच्चों के नैतिक गुणों का मापदण्ड रहा है। मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई थी कि कोल्या और वाल्या स्कूल के प्रायोगिक खेत पर बारिश से गेहूं के डण्ठलों को झुके देखकर दुखी हो रहे हैं। जब तक बच्चे के मन में यह दुख, यह पीड़ा नहीं जागी है, तब तक शिक्षक निश्चिन्त नहीं रह सकता, क्योंकि उसका छात्र एक उदासीन प्रेक्षक के रूप में जीवन में प्रवेश कर सकता है।

स्वार्थी वही बनता है, जिसने बचपन दूसरों की चिन्ता के बिना जिया हो, जो केवल खुशियों का उपभोग ही करता रहा हो। मैं यह देखकर परेशान था कि वोलोद्या और स्लावा के लिए इस बात का बहुत बड़ा खतरा है। इनके परिवारों में इन्हें जी भरकर खुशियों का 'भोग' कराने के लिए सब कुछ किया जाता था। बच्चों को सिर्फ इसी बात का अफसोस होता था कि मां-बाप ने उन्हें कोई नई, अच्छी चीज नहीं खरीद दी। उनके इन स्वार्थपरक दुखों के मुकाबले दूसरी किस्म के दुख और परेशानियां—लोगों के लिए भौतिक और आत्मिक सम्पदाओं की चिन्ता—रखने की आवश्यकता थी।

गर्मियों के उमस भरे दिनों में मैंने देखा कि 'खुशियों के स्कूल' के दिनों में हमने जो लिंडन वृक्ष लगाया था वह सूख रहा है। मैं वोलोद्या और स्लावा को बाग में ले गया यह कहकर कि उन्हें एक दिलचस्प चीज दिखाऊंगा और गर्मी से सूखते पेड़ की ओर उनका ध्यान दिलाया। मैंने कहा, 'लिंडन को हमारी मदद चाहिए, और अगर हम चाहें तो उसकी मदद भी कर सकते हैं। इस किस्म के पेड़ों को, खासतौर पर छोटे पेड़ों को नम हवा, नमी और ठण्डी छाया की जरूरत होती है। आओ, हम अपने इस

मित्र की सहायता करें। वहां थोड़ी दूर पर जो नल है न, उससे हम एक पतला पाइप यहां तक ले आएंगे, उसे पेड़ की ओर लगाकर बारिश करेंगे, पेड़ को हमेशा ठण्डक मिलती रहेगी।' पहले तो लड़के अनमने-से मेरी बातें सुनते रहे, लेकिन जब मैंने कहा कि हम बारिश करेंगे, तो उनकी आंखों में कौतूहल की चमक आई। यह श्रम बच्चों को दिलचस्प खेल लगा, और भला कौन ऐसा बच्चा है, जो खेलना न चाहता हो ? और दोनों लड़के खेलने लगे। हम पेड़ तक पाइप ले आए, उसके सिरे पर फौहारा लगा दिया, और बस पेड़ के ऊपर छोटी-छोटी बूंदों का बादल-सा बन गया। तपती दुपहरी में बच्चे बारिश चालू करते थे और दिन ढले बन्द कर देते थे। धीरे-धीरे बच्चों के मन में पेड़ के भाग्य की चिन्ता जागी—बारिश तले पेड़ को कैसे लगता है ? यह देखकर बच्चे खुश हुए कि पेड़ की टहनियां सीधी हो गई हैं और उन पर नई-नई कोमल पत्तियां निकल आई हैं। इस तरह बच्चों के जीवन में एक ऐसी रुचि जागी जो उनके अपने व्यक्तिगत सुख से सम्बन्धित नहीं थी।

लेकिन यह तो शुरुआत ही थी। जिस तरह जौहरी हीरे को तराशते हुए यह देखता है कि और किधर से उसे तराशा जाए, ताकि हीरा जगमगा उठे, वैसे ही शिक्षक को भी यह सोचना पड़ता है कि किस तरह बाल-हृदय की अन्तरंग गहराइयों तक पहुंचा जाए। वोलोद्या को साथ लेकर मैं कई बार जंगल गया। वहां हमने जंगली गुलाब के सबसे बड़े फल ढूंढ़कर बटोरे , फिर उनमें से बीज निकालकर बोए, हरे अंकुर को सींचा। जब कलमें लगाने का समय आया, तो हमने सफेद गुलाब की कोंपलें ढूंढीं और जंगली गुलाब के पौधों में उनकी आंख लगाई। यह मात्र श्रम ही नहीं था, बल्कि बाल-हृदय का सर्तकता से किया गया स्पर्श भी था। धीरे-धीरे मैं इस बात में सफल हो गया कि वोलोद्या के लिए उसकी अपनी रुचियां ही नहीं, बल्कि चारों ओर का संसार खुशियों और निराशाओं का स्रोत बन गया।

स्लावा की ओर भी बहुत ध्यान देना पड़ा। ओल्या के साथ उसने एक बीमार बछिया की देख-रेख की, उसे भला-चंगा कर दिया। पहले तो नन्हे जीव की चिन्ता बच्चों का एक खेल थी और फिर धीरे-धीरे इसने काम की लगन का रूप ले लिया। मुझे जाड़ों का वह दिन कभी नहीं भूलेगा, जब स्लावा आंखों में आंसू भरे मेरे पास आया। लड़के को यह शिकायत थी कि उसकी प्यारी बछिया को जई की हरी-हरी चरी अच्छी लगती है, पर तापघर में केवल जौ उगाया जाता है। अब वह क्या मुंह से लेकर अपनी बछिया के पास जाए ? तब तापघर में जई भी उगाई जाने लगी।

जो बातें अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं से सम्बन्धित नहीं हैं, उनकी चिन्ता बच्चों की स्वार्थपरकता का सबसे अच्छा उपचार है। अगर बच्चे में ऐसी व्यक्तिगत रुचि जाग उठती है, जो सामाजिक हित की चिन्ता से सम्बन्धित है, तो उसके हृदय

में वह अवगुण कभी जड़ नहीं पकड़ेगा, जिसे अपने पर तरस कहा जा सकता है। यह स्वार्थमय भावना उन्हीं बच्चों में होती है, जिनके जीवन में खुशियां और सुख नहीं, अपने अहं पर ही केन्द्रित रहे हैं।

निडर और साहसी

मेरे छात्रों के शारीरिक और आत्मिक विकास का वह काल आ गया, जब उनमें जो शक्ति हिलोरें ले रही थी, वह अब रुकी नहीं रह सकती थी, बाहर निकलना चाहती थी, ऐसी अजीब हरकतों का रूप ले रही थी, जो पहली नजर में समझ में नहीं आतीं। मेरे देखते-देखते ही तेज परिवर्तन हो रहा था—भीरु बच्चे दुस्साहसी हो रहे थे, शर्मीले-साहसी और दृढ-् निश्चय वाले।

एक दिन हम खेत में यह देखने गए कि कैसे किसान और बड़ी कक्षाओं के छात्र पुआल के बड़े-बड़े गांज लगा रहे हैं। बच्चों को यह बड़ा दिलचस्प लगा कि ट्रैक्टर के पीछे लोहे का मोटा तार बांधकर उससे पुआल के बड़े ढेर को गांज के ऊपर ले जाया जाता है। तार कस जाता है और कोई पन्द्रह मीटर ऊंचा उठ जाता है। गांज से हम कम्बाइन की ओर चल दिए। दूसरे से मैंने देखा—एक लड़का तार पर लटका हुआ ऊपर ही ऊपर उठता जा रहा है। अपने आस-पास नजर दौड़ाई—शूरा गायब था। अच्छा, तो यह शूरा 15 मीटर की ऊंचाई पर लटक रहा है। बच्चों ने शूरा को देख लिया और गांव की ओर दौड़ चले। वे खुशी से चिल्ला रहे थे, शायद हर काई इतना ऊंचा उठने का आनन्द पाना चाहता था। गांव के ऊपर से फिसलता हुआ शूरा आखिर नीचे पहुंच गया। मैं नहीं जानता था कि क्या करूं—इन अनोखी 'यात्रा' के सफल अन्त पर खुश होऊं या बच्चों को जल्दी से जल्दी यहां से दूर ले चलूं।

बड़ी मुश्किल से मैंने दूसरे को ऐसी 'यात्रा' करने से रोका। लेकिन मैं देख रहा था कि बच्चों को मेरी यह सावधानी बिल्कुल भी अच्छी नहीं लग रही। मेरे मन ने कहा—बच्चों की यात्रा को सुरक्षित बनाना चाहिए, उन्हें मना नहीं करना चाहिए। तार के तले हमने पुआल बिछा दिया और फिर एक-एक करके सभी बच्चों ने—पहले लड़कों ने और फिर लड़कियों ने यह यात्रा की।

उस जमाने में हमारे गांव में बिजली का स्थाई स्रोत नहीं था, एक्युमुलेटरों को चार्ज करने के लिए बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने पवन-बिजलीघर बनाया। इसकी मोटर 12 मीटर ऊंची मीनार पर लगी हुई थी। मीनार के ऊपर लकड़ी का चबूतरा था, उसके बीचोंबीच एक छेद बना हुआ था, जिसके नीचे से मैकेनिक मोटर तक पहुंचता था। एक दिन बच्चे पतंग उड़ा रहे थे। हर कोई चाहता था कि उसकी पतंग सबसे ऊपर उड़े। वान्या ने कहा, 'मेरी पतंग सबसे ऊपर होगी।' वह मीनार के ऊपर चबूतरे पर

चढ़ गया और उसकी बाड़ पर झुककर डोर छोड़ने लगा। यह देखकर मेरे प्राण सूख गए कि चबूतरे के छेद का ढकना, जिसे वान्या ने ऊपर चढ़ते हुए हटा दिया था, चबूतरे के सिर पर खिसक आया और नीचे गिर गया। बच्चा खुले छेद के इर्द-गिर्द दौड़ रहा था, पैरों तले क्या है, इसकी उसे कोई होश ही नहीं थी—उसकी आंखें तो पतंग पर लगी हुई थीं। संयोग ही समझिए कि उस दिन कोई दुर्घटना नहीं हुई।

ऊंचाई का आकर्षण बच्चों के लिए अदमनीय होता है। ऊंचाई की मधुर अनुभूति से बच्चों को खुशी मिलती है और हम शिक्षकों को बच्चों के ये आवेग कितना बेचैन करते हैं। बच्चों की प्रायः सभी हरकतें जिनसे मैं परेशान हुआ, ऊंचाई के आकर्षण से सम्बन्धित थीं।

स्कूल से थोड़ी दूर एक पुराना गिरजा था। उसके 20 मीटर ऊंचे घण्टाघर के ऊपर एक गोल गुम्बद था। वसन्त के एक धुपहले दिन मेरी नजर यों ही गुम्बद पर पड़ी, तो वहां सलीब के पास 3 बच्चे दिखे। यह सेर्योझा, कोल्या और शूरा थे। मेरा तो कलेजा ही मुंह को आ गया। बच्चों ने मुझे देख लिया और गुम्बद के एक सिरे से दूसरे को भागते हुए छिपने की कोशिश करने लगे। बच्चों को बुलाने में कोई तुक नहीं थी। इससे उल्टे नुक्सान ही हो सकता था। मैंने स्कूल जाकर अध्यापकों से कहा कि वे सभी बच्चों को चुपके से बाहर ले जाएं—किसी कक्षा को जंगल में घुमाने, किसी को खेत में, बड़ों की छुट्टी कर दें, संक्षेप में, ऐसे करें कि गुम्बद पर चढ़े बच्चों की ओर किसी का ध्यान न जाए और कोई खलबली न मचा दे। खुद मैं वर्कशाप में चला गया, जहां से घण्टाघर अच्छी तरह दिखाई देता था और सिर थामकर बैठ गया। शायद पुआल ने गांव के पास उस खेल से मैंने बच्चों में ऊंचाई के आनन्द की अनुभूति पाने की कामना जगा दी थी ? थोड़ी देर बाद मैंने देखा कैसे बच्चे लोहे के जंग लगे पाइपों के सहारे, जो कहीं-कहीं तो मुश्किल से अटके हुए थे, गुम्बद पर से नीचे उतरे।

गर्मियों में एक दिन तेज बारिश हुई। तालाब पर बने पुल के नीचे झरना बन गया। एक बूढ़ी औरत हांफती हुई स्कूल आई और बोली—जाओ, देखो तुम्हारे बच्चे तालाब पर क्या कर रहे हैं। मैं वहां गया। पुल पर कोई भी नहीं था, पुल के नीचे से बच्चों की किलकारियां सुनाई दीं। तोल्या और वीत्या ने पुल की रेलिंग पर लम्बे रस्से बांधकर झूला बना लिया था, तेज झरने के ऊपर झूलते हुए वे खुशी से किलकारियां भर रहे थे।

पेत्रिक, वीत्या और कोल्या तालाब के ऊंचे कगार पर कहीं से लकड़ी का एक छोटा ड्रम ले आए थे, जिसका तला टूटा हुआ था। बारी-बारी से—कोई भी अपनी बारी छोड़ना नहीं चाहता था—एक लड़का ड्रम में घुस जाता था और बाकी दो उसे धीरे से

ढलान पर लुढ़का देते थे। ड्रम तालाब की ओर लुढ़कता जाता था और पानी से कुछ मीटर दूर ही रुकता था। आज तक मेरी समझ में नहीं आता है कि कैसे कोई दुर्घटना नहीं हो गई। ऐसे मामलों में सुखद अन्त शायद बच्चों के साथ ही होता है।

एक बार जंगल में घूमते हुए हमने लकड़हारे को काम करते देखा, जो सामूहिक फार्म के निर्माण कार्य के लिए ऊंचे-ऊंचे पेड़ काट रहे थे। बच्चे कटे हुए पेड़ों को नीचे गिरते देख रहे थे और उनसे नजर नहीं हटा पा रहे थे। घर लौटते हुए बच्चों ने ख्याल नहीं किया कि शूरा और दान्को पीछे रह गए। हम मैदान में बैठे आराम कर रहे थे, जब एक बूढ़ा लकड़हारा दोनों लड़कों को पकड़कर लाया। उसने बताया कि शूरा और दान्को एक पेड़ पर चढ़ने की कोशिश कर रहे थे, ताकि जब वह नीचे गिरे, तो वे भी उसकी टहनियों पर नीचे उड़ आएं।

ये सब घटनाएं तीसरी-चौथी में कोई छह महीनों के अन्दर-अन्दर घटीं। मैं यह महसूस कर रहा था कि बच्चों को ऐसी हरकतें न करने देना, यह ख्याल रखना कि कहीं कोई दुर्घटना न हो जाए, यही सही रास्ता नहीं है। बच्चों में हिलोरें लेती शक्ति को केवल सक्रिय कार्यकलापों की ही आवश्यकता नहीं होती। बच्चा खतरे के सम्मुख अपनी निडरता सिद्ध करना चाहता है। साहसी कार्यों की यह अदमनीय इच्छा इस बात की साक्षी थी कि साहस का रोमांच बच्चों के जीवन द्वार पर दस्तक दे रहा था। मैं समझ रहा था कि मुझे बच्चों की शक्ति को सही दिशा प्रदान करनी चाहिए।

पाठकों का ध्यान इस बात की ओर गया होगा कि ये दुस्साहसपूर्ण हरकतें मुख्यतः लड़के ही करते थे। एक भी लड़का ऐसा नहीं था, जिसने मुझे सोच में न डाला हो। यहां तक कि वह दान्को, जिसे मैं सबसे ढुलमुल और डरपोक समझता था, उसने भी 1955 के शरद में मुझे हैरत में डाल दिया। तालाब पर अभी बर्फ की काफी पतली परत ही जमी थी, उसी पर उसने तालाब पार कर लिया। बर्फ के टूटने के खतरे को कम करने के लिए उसने अपना बस्ता आगे रख दिया और उसे आगे खिसकाता हुआ बढ़ता जाता था। बर्फ चरमराई, नीचे दबी, सबसे गहरी जगह पर तो उसके ऊपर पानी भी आ गया, पर इसे चमत्कार ही समझिए कि टूटी नहीं और लड़का सही-सलामत दूसरे किनारे पर पहुंच गया। उसके बाद तीसरी कक्षा के दो लड़कों ने भी ऐसे ही तालाब पार करना चाहा, परन्तु सौभाग्यवश किनारे के पास ही उनके पैरों के तले बर्फ टूट गई।

बच्चों को दुर्घटनाओं से बचाया जाए ? बेशक, यह बात बहुत जरूरी है, लेकिन यही सब कुछ नहीं है। साथ ही खतरे का सामना भी करना चाहिए, उस पर विजय पानी चाहिए।

तब हमने 'निडर और साहसी' टोली बनाई। सभी लड़के इसमें शामिल हुए

था, जिनमें दृढ़संकल्प, साहस और निडरता की आवश्यकता होती थी। तालाब के किनारे हमने एक काफी ऊंचा कगार ढूंढ़ा। मैंने तालाब के तल की जांच-पड़ताल की—सब ठीक था। जुलाई की तपती दुपहरी में बच्चे तालाब में नहाने आए। मैंने बच्चों को दिखाया कि कैसे ऊंचाई से कूदना चाहिए और नीचे गिरते हुए अपने शरीर को सन्तुलन में रखना चाहिए। मेरे फौरन बाद ही शूरा, सेर्योझा, कोल्या, वीत्या और फेद्या तालाब में कूदे। दूसरे दिन यूरा, कोस्त्या और पेत्रिक ने पहली बार छलांग लगाने की हिम्मत की। तीसरे दिन तोल्या, मीशा, साश्को और वान्या भी कूदे। चार लड़के—पाव्लो, वोलोद्या, दान्को और स्लावा रह गए, जो साहस नहीं जुटा पा रहे थे।

उनके साथी उनका मजाक उड़ाते थे। तालाब में थोड़ी दूर पर लड़कियां नहा रही थीं, वे भी इन लड़कों को उकसाने लगीं। तीना ऊंचे कगार पर आई। वह भी छलांग लगाना चाहती थी। वह कूदी, उसकी छलांग सुन्दर थी। लरीसा और वार्या भी उसके पीछे-पीछे कूदीं। अब लड़के शर्मिंदा हुए। आखिर पाव्लो, दान्को और स्लावा ने अपने डर पर काबू पा लिया।

अकेला वोलोद्या ही हिम्मत नहीं कर पा रहा था। मैं देख रहा था कि वह मन ही मन अपने डर पर दुखी है, परन्तु साथ ही उस रेखा को भी पार नहीं कर पाता है, जिसके आगे मनुष्य को साहसपूर्ण कार्य के गर्व की अनुभूति होती है। वोलोद्या के लिए कम ऊंचा कगार ढूंढ़ना पड़ा। वहां से वह लड़कियों के साथ कूदता था, पर पहले वाले ऊंचे कगार से कूदने की हिम्मत नहीं कर पाया। बाद में मुझे उसे साहसपूर्ण कार्यों के लिए प्रेरित करने में बहुत जतन करने पड़े। वसन्त में जब बच्चे लकड़ी के मैनाघर बनाकर पेड़ों पर टांग रहे थे, तो मैंने वोलोद्या को एक ऊंचे पेड़ पर चढ़ने को राजी कर लिया। यह डर पर उसकी पहली विजय थी। बच्चों ने मुझे चुपके से बताया कि वोलोद्या अकेला ही ऊंचे कगार पर गया था, कपड़े उतारकर काफी देर बैठा रहा, कई बार दौड़ता हुआ सिरे तक गया, पर तालाब में कूदने का साहस नहीं कर पाया।

तीन सबसे साहसी लड़कियों के बाद वाल्या भी ऊंचे कगार से कूदी। किसी को इसकी उम्मीद न थी। वाल्या ने ऐसा करने पर वोलोद्या झेंपा। आंखें मूंदकर वह पानी में कूद पड़ा। वाल्या के बाद नीना, गाल्या, ल्यूस्या, जीना, कात्या और साशा भी हिम्मत करके कूदीं। फिर सभी लड़कियां कूदने लगीं। मैंने देखा कि लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा इच्छाबल अधिक होता है, वे अधिक साहस के साथ भय और हिचकिचाहट पर विजय पा लेती हैं और कोई निडरतापूर्ण काम कर लेने पर वे लड़कों की तरह खुशी से उछलती नहीं हैं।

तीसरी कक्षा के बाद प्रकृति की गोद में छुट्टियां बिताते हुए हमने ध्रुवयात्रियों

का खेल सोचा। खेल की शर्तों के अनुसार एक वीरान, झाड़ियों से भरे टापू—चारों ओर से पानी से घिरे हिमखंड—पर कुछ ध्रुवयात्री थे, जिनका जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। हमें उन्हें खाने-पीने का सामान पहुंचाना था। टापू और हमारे बीच छोटी-सी झील थी। खेल की शर्तों के अनुसार रसद 'ध्रुवीय' रात के अंधकार में पहुंचाई जानी थी।

'निडर और साहसी' टोली के कुछ वीर इस काम के लिए आगे आए। बच्चों को थोड़ा-थोड़ा डर भी लग रहा था—सुना था कि कभी किसी ने टापू पर भेड़िए का भट देखा था। लेकिन शूरा और सेर्योझा रात को झील पार करने को तैयार हो गए। चीड़ के मोटे फट्टे पर रोटी, आलू, माचिस और चर्बी की गठरी बांधी गई। दो ट्यूबों को फुलाकर पानी में उतारा—खेल के अनुसार यह मोटर बोट थी ! सूरज डूब गया, टापू पर कोहरा छा गया, आसमान में तारे निकल आए। लड़कों ने कपड़े उतारकर उन्हें फट्टे से बांधा, धीरे-से वे चल दिए। मिनटभर बाद वे दिखाई देने बन्द हो गए, कुछ देर तक पानी की छप-छप सुनाई देती रही, फिर वह भी बन्द हो गई। सारी 'निडर और साहसी' टोली किनारे पर बैठी थी, हमारे साथ छोटा-सा कुत्ता त्राव्का भी था। एक घण्टा बीत गया, घुप्प अन्धेरा हो गया, न टापू दिखाई दे रहा था और न झील ही। अचानक अन्धेरे में मन्द-मन्द रोशनी दिखाई दी—यह हमारे किशोर ध्रुवयात्री थे, जो 'दुर्घटनाग्रस्त' यात्रियों के पास पहुंचे थे और संकेत भेज रहे थे कि अगला दल जा सकता है।

फिर से फट्टे पर आलू, प्याज, चर्बी, रोटी बांधी, ट्यूबें पानी में उतारीं। वीत्या और यूरा ने कपड़े उतारे। कोई लड़की कहने लगी कि किसी जमाने में इस झील में बड़ी-बड़ी पाइक मछली रहती थीं, शायद अब भी हों। कहानी का मकसद यही था कि वीत्या और यूरा डर जाएंगे। बेशक बच्चों को काले पानी में घुसते हुए डर लग रहा था, लेकिन अब तो वे किसी हालत में पीछे हटने वाले नहीं थे। जिस क्षण वीत्या और यूरा ने पानी में पैर रखा, उसी क्षण आगे कहीं छपाक हुई। यह कोई मछली ही थी, पर बच्चे तेज दांतों वाली पाइक की कहानी नहीं भूले थे। घण्टे भर बाद टापू पर दूसरी रोशनी जली और फिर दोनों एक साथ बुझ गईं—इसका मतलब यह था कि किशोर 'ध्रुवयात्रियों' के दोनों दल मिल गए। हम सोने के लिए लेट गए, लेकिन किसी को नींद नहीं आ रही थी।

टापू पर अलाव जला—बच्चे बैठे-बैठे रात काटेंगे, सुबह तक आंखें नहीं मूंदेंगे। पास-पास बैठकर वे अधीरता से पूरब की ओर देखेंगे—कब उजाला होने लगेगा ? अगले दिन, जैसे ही पेड़ों के शिखरों पर सूरज की पहली सुनहरी किरणें झिलमिलाएंगी, वे वापस रवाना हो लेंगे। जिन्होंने अभी भय पर विजय पाने का हर्ष अनुभव नहीं

किया है, उन्हें उनसे इर्ष्या होगी, जबकि वे पुरुषोचित ढंग से सहज ही कहेंगे, 'अरे नहीं, इसमें डरने की कोई बात ही नहीं है।'

बारी-बारी से सभी बच्चों ने रात को यह रहस्यमयी यात्रा की, वोलोद्या ने भी। अब खेल पूरे जोरों पर था, तो लड़कियां कहने लगीं कि सिर्फ लड़के ही क्यों जा सकते हैं, हम क्यों नहीं जा सकतीं ? मुझे उनके इस अनुरोध की उम्मीद थी। कोल्या के साथ तीना ने झील पार की और तोल्या के साथ वार्या ने। लड़कों ने झील पर सूखी घास ढूंढ़ ली और बच्चियों के लिए बिस्तर बिछा दिया।

रात, शान्ति, नीरवता, एकात—यह सब बच्चों को आकर्षित करता है, इस सब में वे कठिनाइयों पर विजय पाने का रोमांच देखते हैं। बच्चों ने एक और दिलचस्प खेल सोचा—भूविज्ञानियों का खेल। जंगल के सिरे से कोई 5 किलोमीटर अन्दर घने झुरमुट में लड़कियों ने टहनियों-पत्तियों की झोंपड़ी बनाई और दिन में वहां जा बैठीं—यह भूविज्ञानियों का प्रमुख अड्डा था। खेल यह था कि भूविज्ञानियों का एक दल, लड़के, अंधेरी रात में घने जंगल में से होता हुआ अपने अड्डे पर लौटता है। उनकी पीठों पर खनिजों के नमूनों से भरे सफरी थैले हैं। सूरज डूबने पर बच्चे स्कूल से निकलते हैं, घण्टेभर बाद वे जंगल के किनारे पहुंचते हैं। अन्धेरे में उन्हें ठीक-ठीक दिशा, निर्धारित करनी है, इसके अलावा उन्हें रास्ते में 'नदी' और 'पहाड़' पार करने हैं। लड़कियों को उन्हें किसी तरह से कोई इशारा करने की मनाही है। जंगल का रास्ता बच्चे लगभग दो घण्टे में पार करते हैं। आधी रात के करीब वे अपने 'अड्डे' पर पहुंचते हैं, थके-मांदे, पर बेहद खुश।

एक बार अगस्त में मूसलाधार बारिश के समय फार्म के झुण्ड में से 14 बछड़े भटक गए। वे दूर की चरागाहों में भाग गए थे। फार्म वाले काफी देर तक उन्हें खोजते रहे, पर बछड़ों का कुछ पता न चला। 'चलिए, हम उन्हें ढूंढ़ते हैं,' शूरा और वीत्या ने मुझे सुझाया। तब 'निडर और साहसी' टोली के 9 जने—6 लड़के और 3 लड़कियां मेरे साथ बछड़ों को खोजने निकले। हमने अपने साथ खाने-पीने का सामान, तम्बू, कुतुबनुमा और झील पार करने के लिए दो ट्यूबें लीं। बच्चे काफी उत्तेजित थे। हमने चप्पा-चप्पा करके सारी चरागाहें छानीं; कहीं-कहीं हमको 2-3 लोगों की टोलियां बनाकर बढ़ना पड़ता था। चार दिन बाद हमें 11 बछड़े मिले—वे जंगल में छोटे से मैदान में चर रहे थे। बाकी शायद बरसाती धार में बह गए थे। ये खोज के दिन बच्चों को सदा याद रहेंगे। खासतौर पर गाल्या, ल्यूस्या और सान्या को—ये लड़कियां अन्धेरे से, मेंढकों और घास के सांपों से डरती थीं और यहां उनका लोमड़ी से भी सामना हुआ और घुग्घू से भी।

चौथी कक्षा के बाद गर्मियों में हमने पर्वतारोहियों का खेल खेला। ऊंचे कगार

पर गहरे खड्ड में रस्से की सीढ़ी लटका दी। नीचे हमारा अड्डा था और हम पर्वतारोही थे। हमें सीढ़ी पर सीधी चट्टान पर चढ़ना था, कगार के ऊपर पहुंचकर सीढ़ी से ही वापस नीचे उतरना था। बहुत से लड़के अब ऊंचाई से नहीं डरते थे, तो भी इतनी ऊपर चढ़ने के लिए साहस जुटाने की आवश्यकता थी। वीत्या सबसे पहले ऊपर तक चढ़कर लौट आया, फिर शूरा और सेर्योझा गए। यूरा आधे रास्ते ही लौट आया। तब मैंने ऐसा कगार ढूंढ़ा, जिसकी ढलान इतनी खड़ी नहीं थी। कई दिनों तक हम यह खेल खेलते रहे। लड़कियां लड़कों का मुकाबला करती थीं। तीना, लरीसा और वार्या सबसे साहसी और निडर निकलीं। वे वोलोद्या और स्लावा की खिल्ली उड़ाती थीं—इन लड़कों को तीन मीटर की ऊंचाई पर ही चक्कर आने लगते थे। आखिर सभी लड़के-लड़कियां कगार पर चढ़ने में सफल रहे।

साहस और निडरता दिखा पाने पर बच्चों को हर्ष की गहन अनुभूति होती है। साहस और दृढ़ता—ये नैतिक एवं सांकल्पिक गुण असाधारण परिस्थितियों में ही नहीं, बल्कि दैनंदिन जीवन में, श्रम में भी हर मनुष्य के लिए आवश्यक होते हैं।

प्राथमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी होने में जितना कम समय रहता जा रहा था, उतना ही अधिक मुझे यह विचार व्यथित कर रहा था—बच्चे शीघ्र ही किशोरावस्था में पदार्पण करेंगे। अभी वे अपने बारे में विचार उनके मन में उठने लगे थे, लड़के-लड़कियां सोचने लगे थे, 'मैं कैसा हूं? मुझमें क्या अच्छाइयां हैं और कैसी बुराइयां ? मेरे साथी मेरे बारे में क्या सोचते हैं ?'

किशोरावस्था आ रही थी, जो आत्मशिक्षा की उम्र होती है। बच्चों के भविष्य के बारे में सोचते हुए, जबकि उनका अपना संकल्प और आग्रह ही सबसे बड़ी चरित्र-निर्माणकारी शक्ति होंगे, मैं बचपन में ही उनमें आत्मशिक्षा, आत्म-अनुशासन के प्रति रुचि जगाने की कोशिश कर रहा था। हर बच्चे की श्रम और विश्राम की अपनी दिनचर्या थी। बच्चे सुबह छह बजे उठते थे। कसरत करते थे, ठण्डे पानी में हाथ-पैर, धड़ धोते थे। और नाश्ता करके पढ़ने बैठ जाते थे। स्कूल जाने से पहले वे कम से कम एक घण्टा किताब लेकर काम करते थे। मेरी चेष्टा यह थी कि बच्चों के लिए दिनचर्या का पालन करना आत्म-अनुशासन का एक विषय बन जाए। वोलोद्या और स्लावा के सुबह उठना बहुत मुश्किल था। उनके माता-पिता को बच्चों को उठाते हुए उन पर तरस आता था और वे उन्हें जल्दी सोने पर भी मजबूर नहीं कर पाते थे। मैंने लड़कों से ही नहीं, उनके माता-पिता से भी बातचीत की। स्लावा के सम्मुख आत्म-अनुशासन का लक्ष्य रखकर उसे प्रोत्साहित करने में मैं सफल रहा। लेकिन वोलोद्या के साथ अभी यह नहीं हो पा रहा था। उसका परिवार उसे लाड़-प्यार से बिगाड़ रहा था।

गर्मियों से विदाई

चौथी के बाद मेरे सभी छात्रों—16 लड़के और 15 लड़कियों ने पांचवीं में दाखिला लिया। 12 छात्रों को सभी विषयों में 'पांच'-'पांच' अंक मिले थे, शिक्षक परिषद् ने उन्हें प्रशंसा पत्र दिए। 13 छात्रों को कुछ विषयों में 'चार' और कुछ में 'पांच' अंक मिले थे। 6 बच्चों को 'तीन', 'चार' और 'पांच' मिले थे।

अपने चरित्र-निर्माण कार्य की सबसे बड़ी सफलता मैं यह मानता था कि बच्चों ने मानवीयता की शिक्षा पाई थी, इन्सान को महसूस करना, उसके दुख-सुख में सरीक होना, लोगों के बीच रहना, अपनी मातृभूमि से प्रेम करना और उसके शत्रुओं से घृणा करना सीखा था। वे समझ गए थे कि श्रम में कैसी कायाकल्पकारी शक्ति है, अपनी मातृभाषा का उन्हें अच्छा ज्ञान हो गया था और पांच बड़ी बातें वे सीख गए थे—प्रेक्षण करना, सोचना, पढ़ना, लिखना, तथा अपने विचारों को शब्दों में व्यक्त करना। मुझे इस बात का विश्वास हो गया था कि बच्चों को 7 साल की उम्र से पहले ही, अर्थात् पहली कक्षा में जाने से पहले पढ़ना और लिखना सिखाया जा सकता है। अगर यह लक्ष्य पा लिया जाता है, तो बच्चे की आत्मिक शक्ति चिन्तन और सृजन के लिए मुक्त हो जाती है।

यह बात भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी कि बच्चे कठिन आयु—किशोरावस्था—में पदार्पण के लिए नैतिक और आत्मिक दृष्टि से तैयार थे। प्राथमिक कक्षाओं में मैं उस समय के बारे में सोचा करता था, जबकि बच्चे बचपन और किशोरावस्था के बीच की अदृश्य रेखा लांघेंगे। कुछ बच्चे तो इस संक्रमण की अवस्था में पहुंच गए थे। किशोरावस्था की कठिनाइयां चौथी कक्षा में ही सामने आने लगीं।

अगस्त की शान्त सन्ध्या को हम गर्मियों में विदाई लेने अपने सौन्दर्य विहार में आए।

सूरज की किरणें तरु-शिखरों का अन्तिम स्पर्श कर रही हैं, चार साल पहले हमने जो सेब का पेड़ लगाया था, उस पर सेब पक रहे हैं। अंगूर के गुच्छों पर भौंरा उड़ रहा है, खेत से ट्रैक्टर की गड़गड़ाहट आ रही है। लड़कियां गेहूं की पूली ले आती हैं, लाल बेरियों के गुच्छों को बालियों में गूंथती हैं। हम गर्मियों की शान्त सन्ध्या का गीत गाते हैं। गीत के अन्तिम स्वर सांझ की नीरवता में खो जाते हैं, बच्चे आकाश को निहारते हैं। प्रकृति का संगीत, गर्मियों की यादें—यह सब बाल-हृदय में प्रतिध्वनित होता है। हमारे चारों ओर का संसार—सन्ध्याकालीन गगन, सूर्यास्त की लाली, पीले-पीले सेब, अंगूर के गुच्छे, बेल की हरी दीवार, गुलदाउदी के सफेद फूल, भौंरे का गुंजन—सारा संसार मानो एक अद्भुत वाद्य है, बच्चे इसके तारों का स्पर्श करते हैं और एक अनोखा संगीत गुंजायमान हो उठता है—शब्दों का संगीत। यह खुशी और उदासी का

संगीत है, मुझे भी खुशी होती है और उदासी भी। बच्चो, तुम अब किशोर हो, तुम्हारा जीवन कैसा होगा ? मैं हर दिन तुम्हारे साथ चलूंगा, तुम्हें यौवन की दुनिया में ले जाऊंगा। पांच वर्षों तक मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ तुम्हें बचपन की राह पर चलाया, अपना हृदय तुम्हें अर्पित किया। ऐसे क्षण भी आए, जब मैं थक जाता था। जब मेरा हृदय निश्शक्त होने लगता था, मैं जल्दी-जल्दी तुम्हारे पास जाता था। तुम्हारा हर्षमय कलरव मेरे हृदय में नई शक्ति संचारित करता था, तुम्हारी मुस्कानें नया उत्साह जगाती थीं, तुम्हारी कौतूहल भरी दृष्टि मेरे विचारों को आलोड़ित करती थी। मेरे प्यारे बच्चो, अपने सपनों में मैं तुम्हें वयस्क हो गए देखता हूं। तुम सबको मैं साहसी सोवियत देशभक्त, सुस्पष्ट बुद्धि और सच्चे, ईमानदार दिल वाला व्यक्ति बना देखता हूं।

●●●

विश्व के अनेक प्रगतिशील शिक्षाशास्त्री यह प्रयत्न करते आए हैं कि बच्चों की शिक्षा और उनका चरित्र-निर्माण—ये दोनों कार्य अंतर्गुंथित हों। विश्वप्रसिद्ध सोवियत संघ के शिक्षाशास्त्री सुखोम्लीन्स्की ने अपने व्यवहार और सिद्धांत में इस सपने कर सच किया। इन्होंने यह सिद्ध का दिखाया कि हर सामान्य बच्चे को आम स्कूल में ही माध्यमिक शिक्षा प्रदान की जा सकती है और वह भी बच्चों को 'योग्य' और अयोग्य वर्गों में बांटे बिना ही।

उन्होंने शिक्षाशास्त्र में, शिक्षण की विधियों में किसी नये सिद्धांत की खोज नहीं की, उन्होंने तो बस यह दिखाया कि किस प्रकार ज्ञात विधियों का ही दक्षता के साथ उपयोग करते हुए बच्चे को ज्ञान के पथ पर बढ़ाया जा सकता है। वह बच्चों में आत्मशिक्षा की तीव्र अभिलाषा जगाने को ही सबसे बड़ी बात मानते थे। इस उद्देश्य से वह अपने हर छात्र का अत्यंत बारीकी से अध्ययन करते थे, उनके माता-पिता और स्कूल के दूसरे अध्यापकों से विचार-विमर्श करते थे, अपने विचारों को अतीत के महान शिक्षकों के दृष्टिकोण से जनविवेक से मिलाते थे।

सुखोम्लीन्स्की की मान्यता थी कि बच्चों को शिक्षा देने के लिए सबसे पहले तो उन्हें प्यार करना चाहिए। बच्चों को प्यार करने के बाद ही शिक्षक उनमें मित्रता और मानवीयता की भावनाएं जगा सकता है। शिक्षक को बाल-हृदय की राह ढूंढनी चाहिए, केवल तभी वह बच्चों को अपने परिवार, स्कूल और देश से प्रेम करना सिखा सकेगा, उनमें ज्ञान पाने की अभिलाषा जगा सकेगा।